सूक्तिकुसुमांजलि का दार्शनिक
एवं
काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

[illegible]
[illegible]
संस्कृत विभाग
गया कॉलेज, गया (बिहार)
(मगध विश्वविद्यालय)

[illegible] पब्लिकेशन्स
[illegible]

स्तुतिकुसुमांजलि का दार्शनिक
एवं
काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

स्तुतिकुसुमांजलि का दार्शनिक
एवं
काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

●

डॉ० विद्यारानी अग्रवाल
एम० ए०, पी-एच्० डी०
संस्कृत विभाग
गया कॉलेज, गया (बिहार)
(मगध विश्वविद्यालय)



कञ्चन पब्लिकेशन्स
बोधगया

मगध विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच्०डी० उपाधिहेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

प्रकाशक :

श्री राजीव अग्रवाल

•

प्रथम संस्करण : १९८२

•

•

मूल्य : सत्तर रुपये मात्र

•

पुस्तक प्राप्तिस्थान :

कञ्चन पब्लिकेशन्स
४, शिक्षक आवास
मगध विश्वविद्यालय प्राङ्गण
बोधगया-८२४२३४

•

मुद्रक :

शोभा प्रिंटिंग प्रेस
नयाटोला, पटना-८००००४

'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'

करुणामयी ममतामयी पूजनीया

माँ

के पीयूष-प्रवाही श्रीचरणोंमें

सविनय सभक्ति निवेदित

—'विद्या'

प्राक्कथन

परमानन्दरसामृतमूर्त्ति भगवान् भूतभावन श्रीशंकर देवाधिदेव हैं। समुद्रमन्थन से निकले हुए कालकूट विषका स्वयं पान कर देवताओंको अमृत प्रदान करनेवाले भगवान् शंकर ही हैं। सचमुचमें राष्ट्रके नेता तथा कुटुम्बके स्वामीका यह परम कर्त्तव्य है कि वह उत्तम वस्तु राष्ट्र या परिवारके अन्य लोगोंको दे तथा त्याज्य वस्तुको अपने हिस्सेमें डाले। अमृत-पानकेलिए सभी उत्सुक रहते हैं परन्तु विष-पानकेलिए महापुरुष ही प्रस्तुत होता है। जो संसार के हितकेलिए विषपान कर सकता है वही वस्तुतः जगत् का ईश्वर है।

भगवान् सदाशिवका हृदय जीवोंके प्रति महती करुणासे परिपूर्ण है। वे जिसपर प्रसन्न हो जाते हैं उसके दुःप्रारब्ध को भी मिटा देते हैं। यही कारण है कि सात्त्विक प्रकृतिके देव और मनुष्य ही नहीं, राजस एवं तामस स्वभाव वाले दैत्य-दानव, यक्ष-राक्षस, भूत-प्रेत एवं नाग-सर्प आदि भी भगवान् सदाशिवकी आराधना करते हैं। भगवान्‌की इस अनुपम विलक्षणताके कारण ही पण्डितराज जगन्नाथने अपने 'रसगंगाधर'में कहा है :

अन्यैः समानममरैर्जगदन्तरात्मन्
ये चन्द्रशेखरतुलामधिरोपयन्ति।
ते किं न हन्त तुलयन्ति नभो-निभत्वं,
वातायनोदरगतैर्विवरान्तरालैः॥

भगवान् सदाशिव आशुतोष हैं। वह 'महादेव' का उच्चारण करनेवाले के प्रति ऐसे दौड़ते हैं जैसे वत्सला गौ अपने बछड़े के प्रति। जो पुरुष 'महादेव'का तीन बार उच्चारण करता है उसे वह एक नामोच्चारणके फलस्वरूप मुक्ति देकर शेष दो नामोच्चारणकेलिए उसके ऋणी हो जाते हैं:

महादेव महादेव महादेवेतिवादिनम्
वत्सं गौरिव गौरीशो धावन्तमनुधावति।
महादेव महादेव महादेवेति यो वदेत्
एकेन मुक्तिमाप्नोति द्वाभ्यां शंभू ऋणी भवेत्॥

शिव ऋग्वेदकालीन रुद्रका विकसित रूप है। ऋग्वेदमें रुद्रकी निम्न-लिखित उपाधियाँ हैं—गोघ्न, नृघ्न, क्षयद्वीर, कपर्दिन्, भिषक् एवं वृषभ आदि। अथर्ववेदमें रुद्रके पशुपति, महादेव, सहस्राक्ष, पिशाचहन्ता, नीलशिखण्ड, शर्व एवं भव आदि शताधिक नाम गिनाये गये हैं। आगे चलकर ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें रुद्रका और विकसित रूप सामने आता है और उन्हें पशुपति, ईशान एवं महादेव आदि नामों से अभिहित किया गया है। रुद्र का 'शिव' नाम प्रथम बार यजुर्वेदके शतरुद्रीय सूक्तमें आया है। श्वेताश्वतरोपनिषद, मैत्रायण्योपनिषद् एवं सूत्रग्रन्थोंके समयमें रुद्र शिवके रूपमें प्रतिष्ठित हो चुके थे। रुद्रका 'शंकर' नाम आश्वलायन गृह्यसूत्रके निम्नलिखित मंत्रमें उल्लिखित है—'पशुपतये शिवाय शंकराय पृषातकाय स्वाहेति।' सूत्रग्रन्थोंके पश्चात् भारतीय वाङ्मयमें पाणिनिके अष्टाध्यायीमें शिवको आदरका स्थान प्राप्त है। अष्टाध्यायी का तो आधार ही है माहेश्वरसूत्र। कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें दुर्गोंके भीतर स्थापित शिवका उल्लेख आया है। शिवका अद्यतन रूप रामायण और महाभारतमें विकसित हुआ है। इसी विकास-क्रम की अन्तिम कड़ी जगद्धरभट्टका प्रस्तुत स्तुतिकाव्य है।

दार्शनिक दृष्टिसे माहेश्वर सिद्धान्तके चार भेद हैं—पाशुपतदर्शन, शैवदर्शन, वीरशैवदर्शन तथा प्रत्यभिज्ञा (त्रिक्) दर्शन। स्तुतिकुसुमांजलिके विद्वान् एवं भक्त कवि ने इन सिद्धान्तोंकी काफी जानकारी अपने स्तोत्रोंमें दिखलायी है। विश्लेषणकी दृष्टिसे स्तुतिकुसुमांजलिमें वर्णित दर्शन प्रत्यभिज्ञादर्शन ही है। इस दर्शनको त्रिक् इसलिए भी कहा गया है कि इसमें शिवतत्त्वके अभेद, भेद एवं भेदाभेदरूपोंका वर्णन है। स्तुतिकुसुमांजलिके १९।१ में अभेद (रूपातीत), १९।२ में भेद (सगुणरूप) तथा १९।४ में भेदाभेदरूपका वर्णन आया है। कविने शिवको अद्वैत, द्वैत और द्वैताद्वैत तीनों रूपोंमें अंकित किया है। ठीक ही है, भावातिरेक की स्थितिमें भक्तकवि दर्शनकी बारीकियोंको तथा शिव, विष्णु तथा ब्रह्माके तथाकथित भेदोंको भूल गया है और एक ही मूलतत्त्व—जिसको विष्णु कह लें या शिव कह लें, मानता है। (स्तुति० ८।८)

कवि त्रिक् सिद्धान्तमें वर्णित शिवकी आठो मूर्त्तियोंकी उपासना करता है। इसी सिद्धान्तमें वर्णित छत्तीस तत्त्वोंमें एक तत्त्व शक्तितत्त्व है। विश्व इसी तत्त्वका उन्मेष मात्र माना गया है। शक्तिके साथ शिव सदा सम्पृक्त

रहते हैं। शक्ति ही अन्तर्मुखी होनेपर शिव और शिव ही बहिर्मुख होनेपर शक्ति हैं। स्तुतिकारने इस सामरस्य का अर्धनारीश्वर स्तोत्रमें सुन्दर चित्रण किया है।

प्रस्तुत पुस्तकका, जो पी-एच् डी० उपाधिकेलिए प्रस्तुत किये गये उनके शोधप्रबन्धका मुद्रित रूप है, विदुषी लेखिकाने बड़े ही परिश्रम एवं मनोयोग से प्रणयन किया है। वैदिक कालसे आरम्भ कर समस्त लौकिक संस्कृत साहित्यमें अविच्छिन्न रूपसे वर्त्तमान स्तुतिसाहित्यकी परम्पराके गवेषणापूर्ण निरूपण एवं स्तुतिकुसुमांजलिके उत्स-निर्धारण के क्रममें लेखिकाने जो सम्पूर्ण संस्कृत साहित्यका गहन अध्ययन किया है, वह वस्तुतः प्रशंसनीय है। शिवके देवत्वके विकासका निरूपण एवं उनके विभिन्न नामोंका विश्लेषण लेखिकाके वैदुष्यके परिचायक हैं। लेखिकाने स्तुतिकुसुमांजलिके दार्शनिक पक्षके साथ ही उसके साहित्यिक पक्षका गम्भीर अध्ययन प्रस्तुतकर अपनी साहित्य-मर्मज्ञताका भी पूर्ण परिचय दिया है। श्री जगद्धरभट्टने स्तुतिकुसुमांजलिकी रचना संस्कृतमें की है जिससे वह ग्रन्थ कुछ गिने-चुने लोगोंके लिए ही उपादेय हो सका है। लेखिकाने प्रस्तुत ग्रन्थ पर हिन्दीमें शोधात्मक पुस्तक लिखकर श्रीजगद्धरभट्टके उक्त ग्रन्थके विषयको सर्वजनग्राह्य बनाकर उसकी उपयोगिताको अत्यधिक वृद्धिंगत कर दिया है। उनका यह कार्य बहुजन-हिताय होनेके कारण सचमुचमें प्रशंसनीय है। मैं लेखिका डॉ० श्रीमती विद्यारानी अग्रवालको उनके इस सत्प्रयासकेलिए हृदयसे साधुवाद देता हूँ और उनके उज्ज्वल एवं प्रगतिशील भविष्यकी कामना करता हूँ।

रामावतार शुक्ल
एम०ए०, पी-एच०डी० (लन्दन)
अध्यक्ष,
बिहार अन्तर विश्वविद्यालय पर्षद्,
पटना

दिनांक
२८ मई, १९८२

आत्मनिवेदन

यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके,
भाल बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा,
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम् ॥

सुनती आयी हूँ भगवान् सदैवसे भावके भूखे रहे हैं। भगवान् कृष्णने विदुरके घर सूखा साग ग्रहण किया तथा मर्यादा पुरुषोत्तम रामने भी शबरीके जूठे बैर खाये। स्वयं विष खाकर संसारको अमृत प्रदान करनेवाले भूतभावन भगवान् सदाशिव तो इनसे कथमपि पीछे नहीं हैं। विश्वभरणपोषणकर्त्री भगवती अन्नपूर्णाके पति होते हुए भी वे सदा से भक्ति-भावके भूखे रहे हैं। मेरे विवेच्य कवि जगद्धरभट्टने उनके चरणोंमें स्तुतिरूपी कुसुमोंकी अञ्जलि समर्पित की है। पर मुझ अकिञ्चन, अलस एवं अल्पविद्य अबलाके पास न तो उनके समान वैदुष्य की ऊष्मा ही है और न रसों की सरसता ही। अतः मेरे लिए यह कहाँ सम्भव है कि मैं प्रभुके चरणोंमें पुष्पोंकी अञ्जलि समर्पित कर सकूँ। मैं तो मात्र यत्र-तत्र बिखरी पड़ी, बासी, कुम्हलायी, रूपहीन एवं गन्धहीन पंखुड़ियाँ ही बटोरकर इष्टदेवके चरणोंमें समर्पित करनेकेलिए लायी हूँ। हाँ, इतना अवश्य है कि ये भावभीनी हैं तथा श्रद्धा एवं भक्तितरल हृदयसे निःसृत वाष्पकणोंसे आर्द्र हैं। इतना जानती हूँ कि 'बाबा' उदार एवं आशुतोष हैं; वे अपने सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े स्तुतिकरते हुए भक्तको देखकर इतने करुणार्द्र हो जाते हैं कि उसे देरतक दीनभावसे अपने सम्मुख खड़ा नहीं देख सकते; उसकी पात्रतापर बिना विचार किए ही उसपर द्रवित हो जाते हैं—'देखि न सकत दीनकर जोरे।' अतः विश्वास है कि इस अकिञ्चना की इस तुच्छातितुच्छ भेंटको भी वे अवश्य स्वीकारेंगे।

अचिन्त्य, अलौकिक एवं अपरिमेयचरित भगवान् भूतभावन के विषयमें लेखिकाने अपनी सीमा, अल्पज्ञता एवं अपात्रतापर बिना विचारे भक्ति-विभोर होकर उल्टा-सीधा एवं कथनीय-अकथनीय जो कुछ कह दिया है उस 'बालवचन' को भी 'बाबा' प्रेमपूर्वक सुनेंगे, ऐसा विश्वास है—

जौ बालक कह तोतरि बाता।
सुनहिं मुदितमन गुरु पितु माता ॥

सर्वप्रथम लेखिका अपने परमादरणीय गुरुदेव स्वर्गीय आचार्य डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, एम० ए०, पी०-एच्० डी०, डी० लिट्० के प्रति प्रणति निवेदित करती है जिनके श्रीचरणोंमें बैठकर उसने प्रस्तुत शोधकार्य सम्पन्न किया था। यह ग्रन्थ मात्र उन गुरुदेव का ही प्रतिदिनका राशीभूत अनुग्रह है। तदनन्तर वह संस्कृत साहित्यके मूर्धन्य मनीषी आचार्य बलदेव उपाध्याय एवं स्वर्गीय डॉ० बेचन झाके प्रति हार्दिक आभार निवेदित करती है जिन्होंने शोध-प्रबन्धके परीक्षकके रूपमें अनेक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सुझावोंके द्वारा इस रचनाको परिष्कृत किया है।

लेखिका परमादरणीय गुरुदेव डॉ० रामावतार शुक्ल, अध्यक्ष, अन्तर विश्वविद्यालय पर्षद् की भी अनुगृहीत है जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर प्रस्तुत पुस्तकका प्राक्कथन लिखकर उसे गौरव प्रदान करने की कृपा की है तथा लेखिका का उत्साहवर्द्धन किया है। आदरणीया माँ एवं पूज्य पिताजी (डॉ० राममोहन दास, एम्० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०, प्रवाचक, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया) के प्रति आभार प्रकट करना तो छोटे मुँह बड़ी बात होगी; लेखिका जो कुछ भी है उनके ही आशीर्वाद से है।

लेखिका उन सभी विद्वानोंकी अत्यधिक आभारी है जिनकी रचनाओंका उसने प्रस्तुत ग्रन्थके लिखने के क्रममें लाभपूर्वक उपयोग किया है।

कञ्चन पब्लिकेशन्सके प्रोपराइटर श्री राजीव अग्रवाल भी हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं जिनके सक्रिय सहयोग से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका।

प्रस्तुत ग्रन्थ यदि एक भी पाठकको भा सका तो लेखिका अपनेको सौभाग्यशालिनी तथा अपने परिश्रम को सफल समझेगी।

इस ग्रन्थमें जो 'सार' है वह गुरुजनका है तथा जो 'थोथा' है वह लेखिकाका है।

गङ्गादशहरा,
जून १, १९८२

विद्यारानी अग्रवाल

विषय-तालिका

●

स्तुतिकुसुमांजलिका दार्शनिक
एवं
काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

प्रथम अध्याय

स्तुतिसाहित्य का प्रादुर्भाव एवं विकास

स्तुतिसाहित्य : स्वरूप और उसके तत्त्व

'स्तुति' शब्द √स्तुञ् + क्तिन् से बना है। आप्टे ने रघुवंश के 'स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते' उद्धरण को प्रस्तुत कर प्रशंसाकारक सूक्त अथवा गुणकीर्तनको स्तुति कहा है।[1] स्तुति की उत्पत्ति हृदय से होती है। भक्त हृदय स्वच्छन्दतापूर्वक अपने भावोंको इष्टदेवके सम्मुख प्रस्तुत करता है। हृदय आवरणरहित हो मुक्तरूपसे अपनी वास्तविक स्थितिमें उपस्थित हो जाता है। स्तोताकी भाषा विशुद्ध मानव हृदय की भाषा होती है, जिस पर बुद्धि और तज्जन्य प्रपंचोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मधुर अनुभूतियाँ स्वतः ही मधुरतम शब्दों में अभिव्यक्त होती जाती हैं। पावस में जिस प्रकार जीवनदायक पयोधरों की फुहार बीजो को अंकुरित कर देती है, उसी प्रकार हृदय की सघन अनुभूतियाँ मधुमय शब्दों में रससंचार करती हुई आराध्य के चरणों में स्वतः निवेदित हो जाती हैं। आशय यह है कि स्तुतियां भगवच्चरणारविन्द में आत्मसमर्पण को तो अभिव्यक्त करती ही हैं, साथ ही वे विभिन्न मनःस्थितियों को भी अभिव्यंजित कर देती है। अतः सुख और दुःख की अनुभूति का प्रकाशन स्तुतिसाहित्य में उन्मुक्तरूपसे होता जाता है।

भावातिरेक ही स्तुति काव्य का जीवन है। इसमें वस्तुतत्त्व तो नगण्य रहता है, पर भावतत्त्व की परिव्याप्ति प्रमुख रूप से पायी जाती है। गेयता और हृदयोद्गार सन्तुलित रूप में काव्य का सृजन करते हैं। 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'[2], 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'[3] आदि काव्य के लक्षण स्तुति साहित्य में घटित होते हैं। आशय यह है कि विशिष्ट आनन्दानुभूति को जगानेवाले अर्थ की अभिव्यंजना स्तुतिकाव्य में पायी जाती है। स्तोता या

---

१ संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ० ११३६.

२ साहित्यदर्पण, १।५

३ रसगंगाधर, १।१

भक्तका आत्मनिवेदन अपनेमें अनेक भावनाओं को समेटे रहता है। अतः वैयक्तिक अनुभूतियां एवं मर्मभेदी भाव वाणी के द्वारा अकृतिम रूप में अभिव्यक्त होते हैं। हर्ष-विषाद, राग-द्वेष, संयोग-वियोग प्रभृति शाश्वत मनोवृत्तियां स्तुतिकाव्योंमें भी सन्निविष्ट रहती हैं। प्रायः समस्त अनुभूतियां आत्माभिव्यंजन प्रधान होती हैं, अतः जीवन तत्त्वकी सघनता उनमें समाविष्ट रहती है। संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार ए० बी० कीथ ने स्तोत्रों को धार्मिक गीत या कविता कहा है। उन्होंने लिखा है—"... ... ... परन्तु स्वभावतः उच्चस्तर की कविता ने इस क्षेत्र को भी आक्रान्त कर लिया और दार्शनिकों द्वारा उन देवताओं के विषय में जिनकी वास्तविकता को व्यावहारिक दृष्टि से वे उतनी ही दृढ़ता से स्वीकार करते थे, जितनी दृढ़ता से पारमार्थिक दृष्टि से निषेध करते थे—स्तोत्र रचना में भाग लेने की प्रवृत्ति ने इस कला को और भी अधिक गरिमा प्रदान की [१]......।

दार्शनिक दृष्टि से स्तुति के अन्तरतम में प्रवेश करने पर अवगत होता है कि मनुष्य को कर्म की प्रेरणा भाव केन्द्र से प्राप्त होती है। भावना ही उसे वाह्यगोचर पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्रियाशील बनाती है। दृश्य पदार्थोंके ज्ञान और प्रयोग के पश्चात् उक्त भावना ही उसे अदृश्य और अलौकिक तत्त्वों के अनुसंधान में प्रवृत्त करती है। प्राकृतिक पदार्थों के मूल में किसी अप्राकृतिक एवं दिव्य विभूति का आभास प्राप्त कर मानव का भाव-केन्द्र स्पन्दित होने लगता है और उसमें ज्ञान एवं भाव का पूर्ण सामंजस्य स्थापित हो जाता है। ज्ञान से उस विभूतिके प्रति आदर और पूज्य भाव की और पूज्य भाव से प्रेम की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार श्रद्धा और प्रेम से मनुष्य के हृदय में एक ऐसी संयुक्त भावना का सृजन होता है जिसे आराध्य के प्रति भक्ति अथवा उनके गुणों में अनुरक्ति की संज्ञा दी जा सकती है। अनुरक्ति अथवा भक्ति के आवेग से स्तुति काव्य का प्रादुर्भाव होता है। अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा को स्तुति कहा जाता है। स्तुति में भक्ति, श्रद्धा, अनुराग एवं आत्मनिवेदन की भावना का रहना परम आवश्यक है। मानवमन अपनेको अशक्त और हीन समझ कर आराध्य के गुणों से प्रेरणा ग्रहण करता है। भगवान् की उदारता और उनके प्रेम का स्पर्श पाकर भक्त निहाल हो जाता है। अतः स्तुतिकाव्योंमें गीति-काव्य के प्रायः समस्त गुण

---

१ ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर—पृष्ट—२१०।

पाये जाते हैं। जॉन ड्रिंकवाटर ने लिखा है—"जब हम गीति काव्य की बात कहते हैं तो हमारा उद्देश्य कवित्व शक्ति के इसी गुण से होता है और हम समझते हैं कि विशुद्ध कवित्व शक्ति की अभिव्यक्ति तथा गीतिकाव्य एक ही वस्तु हैं ।[1]

वस्तुतः स्तुतिकाव्य में आत्माभिव्यंजन का अभिनिवेश उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और हृदयके विभिन्न भाव नादमाधुर्य से भावित होकर संगीत-ध्वनि के रूप में अभिव्यक्त होते हैं । इस काव्य में अनुभूति की सघनता और औचित्य तो अपेक्षित रहते ही हैं, भाव और भाषा का सामंजस्य भी विशेष रूप से वर्त्तमान रहता है। हडसन का कथन है कि गीति काव्य में भावों की सान्द्रता तो व्यक्त रहती ही है, कला का चमत्कार, पदलालित्य और शब्द तथा लय का सामंजस्य भी उसमें पाया जाता है ।[2] जब हम स्तुतिकाव्य के साथ गीतिकाव्य के तत्त्वों का अध्ययन करते हैं तो हमें अवगत होता है कि स्तुतिकाव्य गीतिकाव्य का ही एक रूप है। भावमयता, कल्पना का पुट एवं श्रद्धा का चित्रण इस विधा में पूर्णतया पाया जाता है । आत्म-निष्ठता और वैयक्तिकता भी स्तुतिकाव्य में गीतिकाव्य के समान ही उपलब्ध हैं। संक्षेप में स्तुतिकाव्यमें निम्नलिखित सात प्रमुख तत्त्व पाये जाते हैं—

(१) आत्माभिव्यक्ति, (२) भावसान्द्रता, (३) भावान्विति, (४) सहज अन्तः प्रेरणा, (५) सरल और स्वाभाविक अभिव्यक्ति, (६) आराध्य के प्रति समर्पणकी प्रवृत्ति, (७) संगीतात्मकता ।

आत्माभिव्यक्ति

स्तोता अपनी वैयक्तिक अनुभूतिको आराध्यके चरणों में उड़ेलकर अपने सुख-दुःखका भार उसी पर छोड़ देता है। अतएव आत्मानुभूतिकी सबसे अधिक प्रबलता इस काव्यविधामें पायी जाती है । यह आत्मानुभूति जब स्वाभाविक गतिमय स्वर लहरीमें निजी हर्षविषादकी अभिव्यंजना के लिये प्रस्तुत होती है और आराध्य से सहायता की अपेक्षा करती है तब स्तुतिकाव्य का प्रादुर्भाव होता है। विषय और विषयी दोनों की प्रेरणा का अस्तित्व इस कोटि की काव्यरचना में रहता है। विश्वात्मा अथवा किसी विशेष आराध्य के प्रति

---

१. दी लिरिक, पृष्ठ २९ ।
२ एन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑव इंगलिश लिटरेचर—पृष्ठ १२६-१२७ ।

आत्माभिव्यंजन की व्यापक प्रवृत्ति स्तुति या स्तोत्र को प्रादुर्भूत करती है। अतः स्तोत्रकाव्य में भावों का सघनतम व्यापार गेयता या लयात्मकता के साथ अभिव्यक्त होता है।

भावसान्द्रता

स्तुति या स्तोत्र में भावसान्द्रता अवश्य रहती है। कवि अपनी रागात्मक अनुभूति तथा कल्पना से आराध्य को भी भावात्मक बना देता है। जिस प्रकार सांसारिक वस्तुएँ स्वयं जीवन का साध्य नहीं, साधन हैं, उसी प्रकार स्तुतिकाव्य में भी वस्तु अथवा विषय अनुभूति का साधनमात्र है। जब भाव विगलित होकर आराध्य के गुणों का स्पर्श करता है, तो अनुभूति सान्द्र होती जाती है। यही कारण है कि अनुभूति के अनुसार एक ही आराध्य के प्रति विभिन्न स्तोताओं की मानसिक प्रतिक्रियाएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। आराध्य के अनन्त गुण स्तोता को आनन्दविभोर बनाते हैं। वह नाम, रूप अथवा गुणों के स्मरण, चिन्तन अथवा मनन से विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ अर्जित करता है।

भावान्विति

स्तुति का विषय अत्यल्प होने के कारण इसमें अभिव्यक्त अनुभूति एक ही मूलभाव से अनुप्रमाणित रहती है और उसका केन्द्रविन्दु भी यही मूलभाव होता है, जिसका विश्लेषण और विस्तार स्तोता स्तुति के कलेवर में करता है। आरम्भ में स्तोता अपने किसी विशेष भाव को उपस्थित करता है। तदनन्तर रागविस्तार, स्वर, तान, आलाप आदि साधनोंसे उसे व्यापक उत्कर्ष तक पहुँचाता है। यों तो स्तोता अपने आराध्यको अनेक रूपों में देखता है ; कभी उसे आराध्य हर्षित और पुलकित मुद्रा में लक्षित होता है तो कभी दुष्ट-संहारक और सज्जन-उद्धारकके रूपमें परिलक्षित होता है। आराध्यके अनेक रूप होते अवश्य हैं पर उनका मूल केन्द्र कोई एक ही भाव रहता है। जब सुखदुःखकी अनुभूति तीव्रतम होती जाती है और स्तोता अपने भावोंको अभिव्यक्त करने के लिए बाध्य हो जाता है, तब स्तुति-काव्य स्वतः निःसृत होता है। इस प्रकार एक ही भावानुभूतिसे ओतप्रोत होनेके कारण उसमें स्वतः पूर्णता एवं संवेद्यता समाविष्ट हो जाती है। आराध्य की आधारभूमि पर अंकुरित होकर तथा उससे रसग्रहण करके भी वह भावके

उन्मुक्त वातावरणमें विकसित हो अपने मधुर सौरभको विकीर्ण करता है। अतएव स्पष्ट है कि भाव की अन्विति स्तुतिकाव्य में अपना प्रमुख वैशिष्टय रखती है। यों तो इस काव्यमें अनेक रस रह सकते हैं, पर प्रधानतः किसी एक रसका ही अस्तित्व पाया जाता है। अतः स्तुतिकाव्य में भावान्विति नामक तत्त्व व्याप्त रहता है।

सहज अन्तःप्रेरणा

काव्यकी प्रत्येक विधा का जन्म ही अन्तः प्रेरणा से होता है। उसमें वस्तु या विषय का आधार तो नाम मात्र का होता है। कविता मात्र में ही अन्तः प्रेरणा निहित रहती है, पर स्तुतिकाव्य में इसका अस्तित्व सर्वाधिक रूप में वर्तमान रहता है। मनुष्यके मनको सांसारिक ऐश्वर्यों, भौतिक सुखों एवं ऐन्द्रियिक भोगोंकी ओर आकर्षित या उनसे विकर्षित करना भी स्तोताओं का एक लक्ष्य है। जो स्तोता आराध्य से कुछ प्राप्त करना चाहता है और उसकी अनन्त शक्तिका सम्बल प्राप्त कर जागतिक कार्योंमें विजय प्राप्त करना चाहता है, वह अपनी सहज अन्तः प्रेरणा से प्रेरित हो आराध्य के गुणों में लीन हो जाता है। यह लीनता या तल्लीनता ही सहज अन्तःप्रेरणा का प्रतिफलन है। चित्त की चंचलता और अनुभूतिकी प्रगाढ़ता भले ही क्षणपर्यवसायिनी हो, पर सहज अन्तः प्रेरणा का उच्छ्वसित रूप गीति काव्य में अवश्य पाया जाता है।

सरल और स्वाभाविक अभिव्यक्ति

स्तुतिकाव्य का कोमल कलेवर बोझिल शब्दाडम्बर को सहन करने में असमर्थ होता है, अतः भाषा की जटिलता को उसमें प्रोत्साहन नहीं मिलता। स्तुतिकाव्य में भावनाका उमड़ता हुआ प्रवाह शैली को सरल और सुबोध बनाता है। शाब्दिक चमत्कार और अर्थगाम्भीर्य को यहाँ उतना अवकाश नहीं मिलता जितना अवकाश प्रबन्ध काव्य में मिलता है। सरलता, सौन्दर्य और आवेग ये तीनों स्तुतिमें समवेत रहते हैं। कमसे कम शब्दों में भाव की पूरी पूरी अभिव्यक्ति कर हृदय को रसप्लावित कर देना स्तुतिका एक विशेष गुण है। यह सत्य है कि स्तुतिकाव्य में अनुभूतिकी द्रवणशीलता और कल्पना की उन्मुक्त उड़ान नहीं रहती, हर्ष विषाद आदि भाव संयत रूप में अभिव्यक्त होते हैं। अतः स्तोता सरल और संक्षिप्त शैली का अवलम्बन

ग्रहणकर अपने भावों को व्यक्त करता है। आराध्य का व्यापक सौन्दर्य उसके मानस को अभिभूत करता है, जिसके फलस्वरूप वह अपनी कल्पना शक्ति का प्रस्फुटन अनेक रूपों में अंकित करता है।

आराध्य के अनन्तगुणों का भावात्मक विवेचन भी संक्षिप्त शैली में प्रस्तुत रहता है। उपमान, प्रतीक और रूपकों का नियोजन किया अवश्य जाता है, पर उनका प्रस्तुतीकरण इतने सरल और स्वाभाविक रूप में होता है जिससे लीलागान, शृंगारिक चित्रण, विलास विवेचन एवं कथात्मक सन्दर्भ कम से कम शब्दावली में तथा सरलतम शैली में अभिव्यक्त होते हैं।

आराध्य के प्रति समर्पण की प्रवृति

भक्तिभावना का विकास ज्यों ज्यों प्रबलतम होता गया त्यों त्यों आराध्य देवों की स्तुति में स्तुतिकाव्यों का ग्रथन भी बढ़ता गया। उपास्य की लीला और महत्ता भी उपास्य के समान सुखद बन गयी। लोककल्याण और वैयक्तिक सुख-समृद्धि के माध्यम अदृश्य ईश्वरशक्ति ने समर्पण की प्रवृत्ति को जन्म दिया। परमात्मा की सत्ता के जो विविध रूप प्रादुर्भूत हुए उनके असीम सौन्दर्य, वैभव और शक्ति की कल्पना ने स्तोताओं को आत्मसमर्पण के हेतु प्रभावित किया। उपास्य के अंग-प्रत्यंगों एवं सौन्दर्य तथा व्यापार आदि का मनोरम वर्णन किया गया है। स्तोता अपनी समस्त चिन्ताओं का भार उस अदृश्य शक्ति पर डालकर निश्चिन्त हो जाता है। वह शान्ति, सन्तोष और आशा के सहारे जीवन के अस्पृहणीय क्षणों को भी स्पृहणीय बना लेता है। अतएव आराध्य के प्रति समर्पण की भावना स्तुति काव्य में अनिवार्य रूप से पायी जाती है। जबतक स्तोता या भक्त को अपनी शक्ति पर विश्वास रहता है और वह सर्वतोभावेन आत्मसमर्पण नहीं करता तब तक उसे आराध्य से पूर्ण शक्ति की प्राप्ति नहीं होती। सर्वतोभावेन समर्पण के पश्चात् ही भगवान् या अदृश्य शक्ति आराधक की सहायता में प्रवृत्त होती हैं। पौराणिक काल में रचे गये स्तोत्रों में आत्म-समर्पण की यह प्रवृति सर्वाधिक रूप में मुखरित है।

संगीतात्मक

गेयता गीतिकाव्य के किसी भी अंग का आवश्यक धर्म है। ओम प्रकाश अग्रवाल ने लिखा है—"संगीत गीतिकाव्य की अनिवार्य विशेषता है। ...... गीतिकाव्य में काव्य की अपेक्षा संगीत की ही मात्रा अधिक होती है, कारण यह है कि गीतिकाव्य का उद्देश्य आत्मकल्याण और परमानन्द की प्राप्ति करना है और इसका सर्वोत्कृष्ट साधन है संगीत।"[1]

स्पष्ट है कि स्तुतिकाव्य में भी संगीत का पाया जाना अनिवार्य है, यतः स्तोता भावविभोर होकर उपास्य या आराध्य के गुणों का गायन करता है, अतः प्रणय-निवेदन या भक्ति-निवेदन में संगीतात्मकता का पाया जाना स्वाभाविक है। यह संभव है कि शास्त्रीय संगीत स्तुतिकाव्य में न पाया जाय, पर गेयता का पाया जाना आवश्यक है। नाद-सौन्दर्य और भाव संगीत स्तुति के प्रवाह में स्वयमेव समाहित हो जाते हैं। जब हृदय की भावावस्था सहज संवेदन-शीलता का रूप धारण कर उपास्य की ओर अनुधावित होती है, तो स्तुतिकाव्य में संगीतमाधुर्य सहज में आ जाता है। अन्तर्वेग की तीव्रता को छन्द का वातावरण गेयता प्रदान करता है। यह सार्वजनीन तथ्य है कि स्तुतिकाव्य छन्दोहीन नहीं होता। छन्द की सरलता स्वयमेव गेयरूप में परिवर्तित हो जाती है। स्तोता स्तुतियों में शिखरिणी, वसन्ततिलका, उपजाति जैसे छन्दों का प्रयोग गेयता के सृजन के लिए ही करता है, क्योंकि जब वह भावविभोर होकर आराध्य का गुणगान करता है, उस समय उसके हृदय के कोने-कोने-से लयात्मक गेयता का संचार होता है। स्तुति की गेयता कानों पर ऐसा सम्मोहन डालती है कि समुचित ढंग से किया गया स्तुति-पाठ प्रभाव और आनन्द का सृजन करता है। स्तुतिकाव्य में छन्द के सद्भाव के कारण ही लयात्मकता और संगीतात्मकता विद्यमान रहती है।

स्तुतिकाव्य का प्रादुर्भाव

स्तुतिकाव्य का प्रादुर्भाव भारतीय साहित्य में ऋग्वेद से माना जाता है। ऋग्वेदकालीन ऋषियों ने प्रकृति की शक्तियों में देवत्व का दर्शन कर उनके विग्रह की अनेकधा स्तुति की है। स्तुतियों की यह परम्परा सुदूर प्राचीन

---

१. हिन्दी गीतिकाव्य-पृष्ठ १२, विशेष के लिए द्रष्टव्य "गीतिकाव्य" —डॉ० रामखेलावन पाण्डेय, वाराणसी,पृ० ३६-५८

काल से चली आ रही है, जिसका विकसित रूप ऋग्वेद में देखा जा सकता है। डॉ० भोलाशंकर व्यास ने लिखा है—"वैदिक कालीन कवि ने प्रकृति की कोमल और रौद्र दोनों तरह की शक्तियों को कुतूहल और आश्चर्य से देखा। उसने इनमें दिव्यत्व का आरोप कर समय-समय पर अपने योगक्षेम की कामना करते हुए इनका आवाहन किया तथा इनकी कृपा की प्रार्थना की। उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद एवं सुख-दुःख इन दिव्य आत्माओं से सम्बद्ध हो गये और जहाँ कहीं उसकी इन भावनाओं का प्रसार होता, वहां दिव्य आत्माएँ हाथ बटाने जरूर आतीं। यदि इन्द्र 'ग्रावाणों' से पीसे सोम को मस्ती के साथ पीने और आमोद-प्रमोद में भाग लेने आता था, तो वह शम्बर को मारकर गुफा में छिपी आर्यों की गायें भी छुड़ाता था; वह वशिष्ट के आवाहन पर युद्ध में आकर आर्यों की ओर से लड़ने को तैयार था। आर्यों के प्रत्येक कार्य में प्राकृतिक शक्तियाँ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर सहयोग करती देखी जाती हैं। वरुण, इन्द्र, सविता, उषा और अग्नि तो इनके खास साथी थे। इनके प्रति कृतज्ञताप्रकाशन, जिसमें वैदिक कवि के स्वानुभूत जीवन की जीवन्त धारा और सौन्दर्यभावना भी विद्यमान थी, संगीत के सहारे एकाएक वाणी के फलक पर चित्रित कर दिया गया।"[1]

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि वैदिक काल के ऋषियों ने इन्द्र, वरुण आदि देवताओं के साथ प्राकृतिक शक्तियों की भी स्तुति की है। इनका यह स्तुति-काव्य कल्पना, भावना और संगीत तीनों ही दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

अनादि काल से मनुष्य का प्रकृति के साथ अविच्छिन्न और अविच्छेद्य सम्पर्क चला आ रहा है। प्रकृति में एक ऐसी रमणीयता व्याप्त है, जो सहज में ही मानव को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है और उसकी हृत्तंत्रियों को स्पन्दित कर देती है। विस्तृत नीलाकाश, सौन्दर्यशालिनी उषा का अनुगमन, जाज्वल्यमान अग्नि, प्रतापशाली आदित्य एवं शीतल ज्योत्स्नायुक्त चन्द्र अनादिकाल से मानव की अन्तरात्मा के आकर्षण केन्द्र रहे हैं। मनुष्य ने दुःख और दैन्य से पराजित अपने अन्तरात्मा की शान्ति के हेतु इनका आश्रय ग्रहण किया। वैदिक ऋषियों ने जादूभरी प्रकृति के सौन्दर्य का अनुभव किया

---

१. **हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग, खण्ड-द्वितीय, अध्याय एक, पृष्ठ १८२.**

और उसके प्रभाव से उनके हृदय में आनन्द रस का ऐसा प्रवाह उमड़ा कि उसने समस्त भावुक वर्ग को आप्यायित किया। ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों की महत्ता अवगत कर उनकी स्तुतियाँ आरम्भ की।

ऋग्वेदकालीन स्तुतिकाव्य और उसका सौन्दर्य

वैदिक ऋषियों ने दिव्य शक्तियों के गुणों से आकृष्ट हो उन्हें देवरूप में स्वीकृत किया है। उन्होंने प्रकृति की ही मोददायिनी गोद में आखें खोली थीं, उसी से उनका जीवन विकसित, पुष्पित और पल्लवित हुआ और अन्त में उसने अपना सौरभ प्रकृति की गोद में ही विलीन कर दिया। ऋषियों ने प्रकृति और जीवन के सम्बन्ध को तथा प्रकृति के अनुपम लावण्य को स्तुतियों में व्यक्त किया है। अतएव ऋग्वेद में निबद्ध स्तुतियों का निम्नांकित दृष्टि से महत्त्व है—

१. प्रकृतिसौन्दर्यानुभूति की शक्ति के रूप में अभिव्यंजना—ऋग्वेदकालीन ऋषि प्रकृति के रूपसौन्दर्य, भावगुण एवं विभिन्न क्रिया-व्यापारों के चतुर चितेरे हैं। उन्होंने मानव-सौन्दर्य के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य को उषा, मरुत् एवं सवितृ आदि के रूप में व्यक्त किया है।

२. धन, ऐश्वर्य, पुत्र, पौत्र आदि की प्रप्ति के लिए विभिन्न प्रकार की कामनाओं की अभिव्यक्ति—वैदिक ऋषि कामनाओं की पूर्ति के हेतु देवताओं का आह्वान करते हैं। वे उनसे पुत्र, पौत्र, धन एवं वंशाभ्युदय प्रभृति ऐहिक सुखों की याचना करते हैं। इस प्रकार का स्तुति-साहित्य ऋग्वेद में सर्वाधिक है।

३. स्तुतियों में उपास्यमान देवों के स्वरूप, परिवार, शक्ति एवं उनकी कार्य-क्षमता का उदात्त निरूपण—स्तोता स्तुति करते समय अपने आराध्य का सांगोपांग रूप में चित्रण प्रस्तुत करता है। अतएव वह आराध्य की वाह्य आकृति के साथ उसके गुण और उसके परिवार आदि का सविस्तर चित्रण करता है। वह आराध्य की रूपाकृति तो प्रस्तुत करता ही है, साथ ही उनके लोकातिशायी गुणों का निरूपण भी करता है।

४. स्तुतियों में उपमान और रूपक के तत्वों का नियोजन—ऋषियों ने उपास्यों की शक्ति के निरूपण-प्रसंग में उपमान और रूपकों की सम्यक् योजना की

है। अतः वे स्तुतियाँ तथ्य की दृष्टि से जितनी महत्त्वपूर्ण है, उतनी ही काव्य-उपकरणों की दृष्टि से भी।

५. आधिभौतिक उन्नति के निरूपण के साथ आधिदैविक अभ्युदय की सरस योजना—दिव्यगुण, दिव्यशक्ति, दिव्यचरित्र, दिव्यविभूति और दिव्य-लोक की प्राप्ति के लिए स्तुतियों में सत्य, सदाचार, नीति एवं यज्ञ आदि का सांगोपांग विवेचन किया गया है।

६. वैदिक देवताओं की शक्ति के निरूपण के साथ संस्कृति एवं समाज सम्बन्धी मान्यताओं के निरूपण का यत्न—ऋग्वेद के १०।८५।२५ में विवाह में कन्या को सौभाग्यवती और पुत्रवती होने के आशीर्वाद का, विवाह के अनन्तर कन्या के मलिन वस्त्र छोड़ने की प्रथा का और उसे ब्राह्मणों को दान दिये जाने का निर्देश उपलब्ध होता है। दशम मण्डल के पच्चासीवें सूक्त में विवाह और नारी जीवनसम्बन्धी अनेक प्रथाओं का उल्लेख उपलब्ध होता है।

७. काव्यत्व के साथ संगीत का संयोजन—मैकडानल[1] का अभिमत है कि ऋग्वेद में छन्दोमयता के साथ गेयता भी पायी जाती है तथा समस्त स्तुतियों में संगीत तत्त्व की पूर्ण योजना उपलब्ध है। मैक्समूलर ने स्तुतियों में संगीत के साथ काव्यत्व की उपस्थिति को भी मान्यता प्रदान की है। उन्होंने लिखा है कि ऋग्वेद के काव्यपद गेय स्तुतियां हैं जिन्हें आद्य ऋषियों ने प्रकृति के अंक में रहते हुए निर्मित किया था तथा उनमें स्वाभाविक सारल्य और प्रासादिकता के साथ अव्यक्त दैवी शक्तियों के प्रति जिज्ञासाएँ उपलब्ध हैं।[2] रामचन्द्र मिश्र ने लिखाहै—"ऋग्वेद तथा अन्य वेदों की सामग्री से किसी अंश तक परिचित होने के साथ विवेच्य विषय के अनुसार हम इस तथ्य पर पहुँचे हैं कि ऋग्वेद में गेयता है। इस तथ्य के साथ यहां यह अवश्य उल्लेखनीय है कि इसकी स्तुतिपरक ऋचाओं में आत्माभिव्यंजन, विचारों की एकरूपता, संक्षि-प्तता आदि के अतिरिक्त उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीन स्वरों

---

१. ए वैदिक रीडर, पृ० २७-२८।

२. द वेदाज पृष्ठ ४३।

का भी उपयोग हुआ है, जिन्होंने गेयता के इंगित तत्त्वों के साथ इन ऋचाओं को अधिक संगीतमय बना दिया है।[1]

८. संवेदनशीलता और बोधवृत्ति के समन्वय का प्रयास—अनुभूति की तीन अवस्थाएँ होती हैं। प्रथम अवस्था में वह अपने विशुद्ध रूप में रहती हैं क्योंकि बोधवृत्ति के प्रसुप्त रहने के कारण अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। द्वितीयावस्था में संवेदन के प्रथम आघात से उत्पन्न कुण्ठा में शैथिल्य आने लगता है और प्रसुप्त बोधवृत्ति में स्पन्दन होने लगता है जिससे अभिव्यक्ति की मानसिक एवं शारीरिक चेष्टाएँ प्रकट होने लगती हैं। तृतीयावस्था में रागात्मिकावृत्ति तीव्र हो जाती है जिससे मानसिक एवं शारीरिक चेष्टाएँ व्यक्त होने लगती हैं। वैदिक ऋषि अनुभूति से द्रवित हो संवेदनशील हो उठते हैं और वे प्राकृतिक शक्तियों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ने लगते हैं। अतएव ऋग्वेद की स्तुतियों में संवेदनशीलता और बोधवृत्ति का सामंजस्य पाया जाता है।

९. सरल एव प्रभावोत्पादक शैली की योजना—ऋग्वेद की स्तुतियों में सरलता विशेषरूप से पायी जाती है। ऋषियों ने जिन प्राकृतिक शक्तियों की स्तुति या प्रशंसा की है, उनका निरूपण अत्यन्त ही सरल और सीधे सादे रूप में किया गया है। अतः काठिन्य या अधिक व्यंग्य प्रधान तथ्यों की योजना नहीं है। यह सत्य है कि उस समय की संस्कृति और सभ्यता का प्रतिफलन ऋग्वेद की स्तुतियों में पाया जाता है पर स्तुतियों का रूप प्रसादगुणपूर्ण ही है।

ऋग्वेद की कतिपय स्तुतियां और उनका काव्यमल्य

ऋग्वेदमें इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, उषस्, अश्विन् प्रभृति देवताओं का अनेक रूप में आह्वान और स्तवन किया गया है। देवों की शक्तियां अनेक रूपोंमें स्तुतियोंके द्वारा वर्णित की गयी हैं। सोम की स्तुति करते हुए उसके गुणों और शक्तियों का पूर्णतया चित्रण किया गया है—[2]

---

१. "वैदिक साहित्य में गीतितत्व", बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पत्रिका वर्ष ६ अंक ३ पृ०—९।

२. ऋग्वेद ९-७९।

"हरे रंग वाले यह सोम क्षरणशील हैं। यह हमारे होते हुए यज्ञ में आये। हमारे अन्न को नष्ट करने वाले शत्रु स्वयं ही नाश को प्राप्त हों। हमारे अनुष्ठान को देवगण स्वीकार करें। सोमके प्रभाव से हम पराक्रमी शत्रुओंको भी खदेड़ दें। हमारे पास शक्तिशाली सोम धन के सहित आगमन करें। हम बलवानों के बल को भी नष्ट करने वाले होकर सदा धन पाते रहें। हे सोम! जैसे बंजर में पानी न होने से प्यास साथ रहती है, वैसे ही तुम अपने और हमारे शत्रुओं के पीछे लगकर उनका नाश करते हो। हे सोम! तुम क्षरणशील हो। तुम उन शत्रुओं को क्षरित करो। हे सोम! द्युलोक में स्थित तुम्हारा परम अंश पृथिवी पर क्षरित हो गया, जिससे पर्वतों पर वृक्षों की उत्पत्ति हुई। हे सोम! तुम्हें पाषाणों से कूट कर विद्वान् ऋत्विज जल में मिश्रित करते हैं। हे सोम! अनुभवी ऋषि तुम्हारे उज्ज्वल रस को निचोड़ते हैं। तुम अपने हर्षप्रदायक, बलदाता और प्रिय लगने वाले रस को सींचो और हमारी निन्दा करने वाले शत्रुओं का नाश करो।"

संस्कृति और काव्य का समन्वय करते हुए ऋभुओं की स्तुति में उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक का प्रयोग सुन्दर रूप में किया गया है।[1] "हम यजमान ऋभुगण के निमित्त दूत के समान स्तुति रूप वाणी को प्रेरित करते हैं। हम उनके समीप सोम उपस्थित करने के लिए दूध वाली गाय की याचना करते हैं। ऋभुगण वायु के समान चलने वाले हैं तथा संसार का उपकार करने वाले कर्मों को करते हैं। वे अपने वेगवान् अश्वों से क्षण भर में अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हैं। जब ऋभुगण ने अपने माता-पिता को युवावस्था दी और चमस बनाने आदि कार्यों को करते हुए यशवान् हुए तब उसी समय उनकी मित्रता इन्द्रादि देवताओं के साथ हो गई। वे मनस्वी और धैर्यवान्, हैं तथा यजमानों के निमित्त बल धारण करते हैं। ऋभुओं ने यूप रूप काष्ठ के समान जीर्ण और लुढ़के पड़ते हुए माता पिता को तरुणता दी। वे बलवान् विभु और ऋभु इन्द्र के साथ सोम पीते हुए हमारे यज्ञ के रक्षक हों। ऋभुगण ने एक वर्ष तक मरी हुई धेनु की सेवा की। उन्होंने उस मृत गाय के देह को अवयवों से सम्पन्न किया और वर्ष भर उसकी रक्षा की। अपने इन कार्यों से वे देवत्व को प्राप्त कर सके। बड़े ऋभु ने एक चमस को दो करने की इच्छा प्रकट की। बीच के ऋभु ने

---

१. ऋग्वेद-४-३३।

तीन करने की और छोटे ऋभु ने चार करने को कहा। हे ऋभुगण! तुम्हारे गुरु त्वष्टा ने तुम्हारे इस चार करने वाली बात को स्वीकार कर लिया।

ऋग्वेद की स्तुतियों में सुकुमार और मनोहर कल्पनाएं तो हैं ही पर कोमलकान्त पदावली में निबद्ध हृदयस्पर्शिनी भावनाएं भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। चमचमाती हुई उषा बड़े गर्व के साथ आती है। उस समय वह ऐसी प्रतीत होती है, मानो उसका रमणीय कलेवर उसकी माता के द्वारा विभूषित किया गया है। माता को पुत्री के सौन्दर्य पर गर्व है। उषा नर्तकी के समान भड़कीले वस्त्राभूषण धारण कर अपने अंग-प्रत्यंगो को दर्शकों को दिखलाती हुई उपस्थित होती है। प्रकाश का आभरण धारण किये हुए वह तरुणी पूर्व में दृष्टिगोचर होती है और वहीं से अपने सौन्दर्य का प्रभाव दर्शकों पर प्रसारित करती है। प्राची के आकाश-कपाटों को खोलती हुई अन्धकार को बाधित करती है और प्रकाश व्याप्त कर हमारे नेत्रों के सामने प्रस्तुत हो जाती है। यह आकाश की पुत्री उषा कल्याणरूपिणी मांगलिक वेश धारण करने वाली किसी पतिव्रता रमणी के समान पवित्र वेश धारण करती है और अपने पूजक को कृतार्थ करती हुई नित्य यौवनवती रहती है। यह जलतरंगो के समान मनोमोहक भी है। सौभाग्यशालिनी, विस्तीर्ण तथा प्रतिष्ठित उषा लाल किरणों का बाना धारण कर वीर सैनिक के समान प्रस्तुत होती है और वीर धनुर्धर के सामान अन्धकार का अपसारण करती है। उषा अन्नवती है, धनवती है और है मरणधर्मरहित। यह सूर्य की पत्नी और आकाश की पुत्री है। यह अन्धकार को उसी प्रकार समेटती है, जिस प्रकार तरुणी अपने वस्त्र को लपेटकर रख देती है। जिस प्रकार एक रूपवती रमणी सभी के आनन्दमय कौतूहल का कारण बनती है, उसी प्रकार उषा भी सभी को आनन्द देती हुई आती है।[१]

ऋग्वेद में कुल ११२७ सूक्त और १०४६७ मन्त्र हैं। हम प्रत्येक सूक्त को एक सुन्दर स्तोत्र कह सकते हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में स्तुतिकाव्य के समस्त गुण पाये जाते हैं। दशममण्डल के एक सौ उन्तीसवें सूक्त का नाम नासदीय सूक्त है। इसमें परमात्मा का सुन्दर चिन्तन आया है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने गीता रहस्य के विषय प्रवेश में इसे मानव जाति का सर्वश्रेष्ठ चिन्तन कहा है। इस सूक्त के आरम्भ में बताया गया है—

---

१ ऋग्वेद १-१२३

"प्रलयकाल में असत् नहीं था। सत्य भी उस समय नहीं था। पृथिवी और आकाश भी नहीं थे। आकाश में स्थित सप्तलोक भी नहीं थे। तब कौन कहाँ रहता था? ब्रह्माण्ड कहाँ था? गम्भीर जल भी कहां था? उस समय अमरत्व और मृतत्व भी नहीं था। रात्रि और दिवस भी नहीं थे। वायु से शून्य और आत्मा के अवलम्ब से श्वास प्रश्वास वाले एक ब्रह्ममात्र ही थे। उनके अतिरिक्त सब शून्य था। सृष्टि-रचना से पूर्व अन्धकार ने अन्धकार को आवृत किया हुआ था। सब कुछ अज्ञात था। सब ओर जल ही जल था। वह सर्वव्याप्त ब्रह्म भी अविद्यमान पदार्थ से ढका था। वही एक तत्त्व तपके प्रभाव से विद्यमान था। उस ब्रह्म ने सर्व प्रथम सृष्टि रचना की इच्छा की। उससे सर्व प्रथम बीज का प्राकट्य हुआ। मेधावीजनों ने अपनी बुद्धि के द्वारा विचार करके अप्रकट वस्तु की उत्पत्ति कल्पित की। फिर बीज धारणकर्त्ता पुरुष की उत्पत्ति हुई। फिर महिमायें प्रकट हुईं। उन महिमाओं का कार्य दोनों पार्श्वों तक प्रशस्त हुआ। नीचे स्वधा और ऊपर प्रयतिका स्थान हुआ। प्रकृति के तत्व को कोई नहीं जानता तो उनका वर्णन कौन कर सकता है? इस सृष्टि का उत्पत्ति-कारण क्या है? यह विभिन्न सृष्टियाँ किस उपादान कारण से प्रकटी? देवगण भी इन सृष्टियों के पश्चात् ही उत्पन्न हुए हैं, तब कौन जानता है कि यह सृष्टि कहां से उत्पन्न हुई? यह विभिन्न सृष्टियाँ किस प्रकार हुई? इन्हें किसने रचा? इन सृष्टियों के जो स्वामी दिव्यधाम में निवास करते हैं, वही इनकी रचना के विषय में जानते हैं। यह भी सम्भव है कि उन्हे भी यह सब बातें ज्ञात न हों।"[1]

स्पष्ट है कि ऋग्वेद की स्तुतियों में दार्शनिक चिन्तन का सूत्रपात भी समाहित है। ऋषियों के हृदय में सत्-असत् को अवगत करने की इच्छा अभिव्यक्त हुई थी। उनकी चिन्ताधारा बहुदेववाद के प्रति आशंकित थी। 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' मन्त्र से उक्त तथ्य की स्पष्ट व्यंजना होती है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने एक स्थान पर वैदिक धर्म के विश्लेषण के प्रसंग में लिखा है—"सबसे सरल और प्राचीन पूजा-पद्धति प्रार्थना थी जो सब के लिए सुलभ थी। वेदों के सूक्त और उन के मन्त्र वास्तव में प्रार्थनाओं के

---

1 ऋग्वेद—१०-१२९.

संग्रह है। सूक्ति, स्तुति, स्तवन, आशंसा आदि से देवताओ को प्रसन्न किया जाता था और पार्थिव सुखों की प्राप्ति की आशा उनसे की जाती थी।[१]

वस्तुतः वैदिक आर्य आशावादी थे। वे अग्नि, सूर्य एवं चन्द्र को आह्लादक और उत्साहवर्द्धक ही नहीं समझते थे अपितु यह भी मानते थे कि उनके अनुग्रह से ही जगत् के समस्त कार्य संचालित होते हैं। ऋग्वेद का पुरुष सूक्त सर्वेश्वरवाद का समर्थक है। 'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्[२] मन्त्र से प्रकट है कि दार्शनिक चिन्तन का आरम्भ हो चुका था।

विचार की दृष्टि से ऋग्वेद के देवगण को द्युस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय और पृथ्वीस्थानीय इन तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। वरुण, पूषा, मित्र, सविता, सूर्य, विष्णु अश्विन् और उषा द्युस्थानीय देवताओं में प्रमुख हैं। इन्द्र, अपांनपात् पर्जन्य और रुद्र की गणना अन्तरिक्षस्थानीय देवों में की गयी है। पृथ्वीस्थानीय देवों में अग्नि, बृहस्पति और सोम प्रधान हैं। इन्द्र दस्युग्रों के विजेता, पराक्रमशाली, बलिष्ठ और ओजस्वी देव के रूप में स्तुत्य है। सर्वाधिक स्तुतियां इन्द्र को आधार मानकर प्रस्तुत की गयी हैं। इन स्तुतियों में विभिन्न विभाव, अनुभाव और संचारिभावों से पुष्ट हो निम्नलिखित रसों की धारा प्रवाहित हुई है।

१. वीररस—

दस्युयों के हनन के अवसर पर स्तुतियों में वीररस का परिपाक हुआ है। इन्द्र जब पराक्रमशाली कार्यों को प्रस्तुत करता है, तो उसके समक्ष सभी शत्रु नतमस्तक हो जाते हैं। ऋग्वेद (२।१२।४) में इन्द्र को वीर योद्धाओं को विजय प्रदान करने वाला और शत्रुओं को पर्वत की गुफाओं में खदेड़ने वाला बताया गया है। इन्द्र का प्रधान अस्त्र वज्र है जिसकी सहायता से वह शम्बर, वृत्र आदि दानवों का संहार करता है ओर शत्रुओं के दुर्गबद्ध पुरों को छिन्न-भिन्न कर डालता है। उसका अबसे अधिक पराक्रम वृत्र के पराजय के अवसर पर प्रकट होता है। वृत्र वर्षा का अवरोधक है और इन्द्र इसे वज्र से मार कर जल बरसाता है। इस प्रकार काव्य की दृष्टि

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, खंड ३ अध्याय १ पृष्ठ ४२६।

२. ऋग्वेद, पुरुष सूक्त १०-२।

से अलंकार नियोजन के साथ ही साथ स्तुतियों में वीर रस का भी परिपाक हुआ है।

२- भयानक रस—

इन्द्र की स्तुतियों में भयानक रस का परिपाक भी उपलब्ध होता है। ऋग्वेद में इन्द्र की जो स्तुति की गयी है, उसमें इन्द्र का भयानक रूप चित्रित है।[1] इन्द्र का स्वरूप भयावह और आतंकदायी है। पर्वत उनके भय से कम्पित रहते हैं। अतः इन्द्र का वर्णन भयानक रस एवं वीर रस का उत्पादक है। ऋषियों की प्रतिभा यहां कल्पना की चरम सीमा को प्राप्त है।

वरुण नितान्त उदात्त, जगत् के नैतिक नियन्ता एवं तेजस्वी देव के रूप में वर्णित हैं। अग्नि का वर्णन तो अनेक सूक्तों में आया है। इस प्रकार की स्तुतियों में सौन्दर्य-भावना और सौकुमार्य कल्पना का स्निग्ध मिश्रण है। अग्नि लौकिक व्यवहार और जीवन निर्वाह का सम्पादक तो है ही, साथ ही यज्ञ का सम्पादक और देवताओं तक हव्य पहुँचाने का साधन भी। देवगण अग्नि की जिह्वा द्वारा हव्य को प्राप्त करते हैं। अग्नि समस्त देवताओं में सर्वाधिक हितकारक देव हैं। इनकी अनुकम्पा और प्रसाद से प्राणी प्रतिदिन, धन, पुत्र, पौत्र और यश को प्राप्त करते हैं।

सविता सूर्य के गुणों का ही प्रतिनिधि है। गायत्री मंत्र का अधिष्ठाता यही देवता हैं। शोभन कार्यों में प्रेरणा देने के लिए इसकी नित्य प्रार्थना की जाती है।

विष्णु की स्तुतियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। ये आकाशगामी, सतत क्रियाशील और सूर्य के प्रतीक हैं। ऋग्वेद में[2] इन्हें उरुगाय और उरुक्रम विशेषणों से वर्णित किया गया है। विष्णु के उच्चतम लोक में शीघ्रगामिनी भूरिश्रृंग गायों का निवास है। वहाँ मधु के उत्स भक्तों की कामनापूर्ण करते हुए लहराते हैं। भक्तिग्रन्थों में की गयी गोलोक की मंजुल कल्पना का आधार यही मंत्र है। रुद्र त्रिदेवों में अन्यतम देव होने से सातिशय श्रद्धा के पात्र

---

१. ऋग्वेद ८. १-५
२. ऋग्वेद . 1. ३.

हैं। ऋग्वेदमें बताया गया है कि जिस प्रकार संहारकारिणी विद्युत् प्रभूत जल के वर्षणका कारण बनती है, उसी प्रकार उग्र रूपधारी रुद्रदेव जगत् के मंगलका कारण बनते हैं।[1] इस प्रकार ऋग्वेदमें विभिन्न देवताओंकी स्तुतियाँ काव्यरूपमें वर्णित हैं।[2] काव्यमूल्यकी दृष्टिसे समग्र ऋग्वेद अत्यधिक महनीय है।

अन्य वेदोंमें निबद्ध स्तुतियाँ और उनका काव्यरूप

यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदमें भी स्तुतियाँ उपलब्ध है। यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिताका ४१ वां अध्याय ऋग्वेदका पुरुषसूक्त है। यह स्तुतिकी दृष्टिसे महनीय है। यजुर्वेदका अन्तिम अध्याय 'ईशावास्योपनिषद्' है। इस प्रकार यजुर्वेदमें स्तुतियोंका संग्रह सम्पन्न हुआ है। इसके शिवसंकल्पसूक्तमें ऋषिने उपास्य देवसे अपने मनको कल्याणकी ओर अग्रसर करनेकी प्रार्थना करते समय उसे सारथिकी उपमा दी है जो रश्मियोंको पकड़ कर घोड़ोंको ठीक मार्गपर ले जाता है।

सामवेदका संकलन उद्गाताके निमित्त हुआ है। यज्ञके अवसरपर जिस देवताके लिए हवन किया जाता है, उसे बुलानेके निमित्त उद्गाता उचित स्वरमें उस देवताका स्तुतिमन्त्र गाता था। इस गायन को साम कहते हैं। सामका आधार ऋग्वेदकी ऋचा ही है। सामवेद संहिता में १८७५ ऋचाएँ हैं जिनमें केवल ९९ ऋचाएँ नवीन हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय केवल ७५ ऋचाओंको ही मूल ऋचाएँ मानते हैं।[3]

सामवेदकी स्तुतियाँ संगीतकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें दो गान हैं—पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। प्रथमके अन्तर्गत ग्राम-गान (ग्राम-जन-समूहमें गेय), आरण्यक-गान (परिव्राजक और यतियों में गेय) तथा महानाम्नी आर्चिक गान (विशिष्ट गानरीति) हैं एवं द्वितीयमें ऊहगान और उह्य गानका संकलन है।

---

१. ऋग्वेद २. ७

२. विशेष के लिये द्रष्टव्य-आचार्य बलदेव उपाध्याय : वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ० ४८४-५२०

३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, सप्तम संस्करण, १९६५, पृ० २६

सामवेदमें षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन सात स्वरोंका भी संकेत मिलता है। इस प्रकार सामवेद की स्तुतियों का संगीतकी दृष्टिसे अत्यधिक महत्त्व है।

अथर्ववेदमें ऋग्वेदके मन्त्रोंका ही संकलन है। लगभग इसका पंचमांश तो ऋग्वेदसे ही गृहीत है। अवशेष मंत्रोंमें जादू और लौकिक उपयोगी बातोंका विवेचन किया गया है। अथर्ववेदकी स्तुतियाँ लौकिक दृष्टिसे अधिक उपयोगिनी हैं।

वैदिक स्तुतियोंमें काव्यभावना और कल्पनाके अनाविल, अनलंकृत और स्वाभाविक रूप उपलब्ध होते हैं। संगीतात्मकता भावना और कल्पना में मणिकांचन संयोग घटित करती है। ये स्तुतियाँ लोकगीतोंका स्वाभाविक साहित्य हैं। महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदीने वैदिक तत्त्वोंको पाँच रूपोंमें विभक्त किया है—ऋषि, पितर, देव, असुर और गन्धर्व। इन पाँचोका आधार ग्रहण कर स्तुतियोंका ग्रथन किया गया है।

महाकाव्यों और पुराणोंमें समाहित स्तुति

विकसनशील महाकाव्योंमें स्तुति-साहित्य का स्वरूप

वैदिक कालमें जो स्तुति-साहित्य निर्मित हुआ वह बहुविषयक है। समाज, संस्कृति और जीवन सभीको स्तुतियों में समेटा गया है। पर महाभारत और रामायण कालमें रची गयी स्तुतियाँ किसी देव-विशेषसे ही सम्बद्ध हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप त्रिदेवकी प्रतिष्ठा हो चुकी थी और इन देवोंसे महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न कराने के लिए स्तुति और प्रार्थनाएँ की जाती थीं। जब पापका भार असह्य हो जाता और धर्मात्मा व्यक्ति

---

१. विशेष के लिए द्रष्टव्य-(१) श्री रामचन्द्र शास्त्री रटाटे 'अथर्ववेदविषये किंचित्'-सारस्वती सुषमा चतुर्दश वर्ष-अंक १ एवं २ पृ० १७५-८३ (२) श्री रघुराज मिश्र 'वैदिक विज्ञान' सारस्वती सुषमा षोडषवर्ष अंक १ एवं २ पृ० १३-४३। विशेष के लिए द्रष्टव्य-महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी 'वैदिका देवा ऋषयश्च' सारस्वती सुषमा, त्रयोदश वर्ष, अंक १ से ४ पृ०, १-२२

कष्ट प्राप्त करने लगते तो उद्धारकेलिए त्रिदेवमें से किसी एक देवकी स्तुति की जाती। स्तोता स्तुत्यकी शक्तिकी महत्ता प्रकट करता और उसी को जगदुद्धारकके रूपमें मानता था। महाकाव्यकालमें जो स्तुतियाँ निबद्ध की गयी हैं, उन्हें हम निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

१. त्रिदेव सम्बन्धी स्तुतियाँ— असुर, दानव आदि जब यज्ञीय संस्कृतिका विध्वंस करते हैं और आर्य संस्कृति छिन्न-भिन्न होती हुई दृष्टिगोचर होती है तब समस्त देव ब्रह्मा या विष्णुकी उनकी शक्तिकी याद दिलाते हुए स्तुति करते हैं। इस प्रकारकी स्तुतियों में दार्शनिक और सांस्कृतिक तत्त्वोंके साथ काव्यात्मक कल्पना या भावना भी निहित रहती है। स्तुतिकर्त्ता उपास्यके गुणोंके विवेचनमें अलंकारों और विभिन्न प्रकारके भावोंका पूर्णतया प्रयोग करता है। यद्यपि विकसनशील महाकाव्योंमें जो स्तुतियाँ ग्रथित हैं, उनमें शाब्दिक चमत्कार अथवा चित्रालंकारका प्राय: अभाव है पर भावोंका नैसर्गिक रूप इन स्तुतियोंमें पाया जाता है। भावनाओं, धारणाओं और विचारोंका अनलंकृत रूपमें वर्णन भी इन स्तुतियोंमें निहित है।

२. ऋषि और मुनियोंकी स्तुतियाँ—विकसनशील महाकाव्योंमें अदृश्य शक्तियोंके देवत्वके साथ मानवीय शक्तियोंका महत्त्व भी स्वीकृत हो चुका था, अतएव विभिन्न देवोंकी स्तुतियाँ तो होती ही थीं पर महान् तपस्वी, आध्यात्म मार्गके नेता, ज्ञानी, विवेकी और सन्तोषी ऋषि-मुनियोंकी भी स्तुतियाँ सम्पन्न की जाती थीं। शिष्यवर्ग या जनसाधारण ऋषियोंके ज्ञान, सदाचार और अध्यात्मसे प्रभावित होकर उनका स्तवन करता था। इस श्रेणीकी स्तुतियोंमें मुख्यत: सदाचार, जीवन-तत्त्व, एषणाओंकी नि:सारता एवं अध्यात्म भावों की अभिव्यक्ति हुई है। जीवन-बोधके विस्तृत आयाम भी इन स्तुतियों में निबद्ध हैं।

३. अनुभव-जगत्के सौन्दर्य और मर्मोंको उद्‌घाटित करनेवाली स्तुतियाँ— मनुष्य आदि-कालसे ही प्रकृति-प्रेमी रहा है। वह प्रकृतिके विभिन्न व्यापारोंके मार्मिक रूपको समझनेकी चेष्टा करता रहता है। उसकी मन: स्थिति प्रकृतिके नाना रूपोंसे आकर्षित होती रहती है। यही आकर्षण और विकर्षणकी प्रक्रिया प्राकृतिक शक्तियोंको महत्त्व प्रदान

करती है। गीतों, मुक्तकों और स्तोत्रोंमें प्रकृतिके रम्यरूप सहज रूपमें उद्घाटित होते हैं, अत: एकनिष्ठताकी भावना इन रूपोंमें पायी जाती है। वैदिक कालमें भी प्रकृति आकर्षणका केन्द्र थी, यह अनुभूति उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होती गयी और महाकाव्योंके युगमें इसका रूप चेतन और मानव तक विस्तृत हो गया। अत: महाकाव्यों में प्रकृति के रम्य रूपों के उद्घाटन के लिए समुद्र, स्रोतस्विनी, पर्वत चन्द्र, सूर्य एवं ऋतु विशेषों की स्तुतियाँ भी अंकितकी गयी हैं। भावुक कवियोंने प्रकृतिके रम्य रूपोंका समावेश नारी के सुकोमल अंग-उपांगोंमें भी किया। इस प्रकार स्तुतिका धरातल विकसित होता गया।

महाभारतमें समाहित स्तुतियोंका विवेचन

महाभारतमें स्तुतियोंका समावेश है। विष्णुसहस्रनाम, भीष्म-स्तवराज जैसे भक्तिपूर्ण स्तोत्र-ग्रन्थ इसी काव्यसे उद्धृत हैं। महाभारतके कथानकोंमें अनेक स्थलोंपर स्तुतियों का ग्रथन किया गया है। यहाँ हम कुछ सरस स्तुतियाँ उद्धृत करते हैं :

"सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! आप पवित्रोंमें भी परम पवित्र तथा गतिशील प्राणियोंकी उत्तम गति हैं। तेजोंमें अत्यन्त उग्र तेज और तपस्याओंमें उत्कृष्ट तप हैं। गन्धर्वराज विश्वावसु, दैत्यराज हिरण्याक्ष और देवराज इन्द्र भी आपकी वन्दना करते हैं। सबको महान् कल्याण प्रदान करनेवाले प्रभो ! आप परम सत्य हैं। आपको नमस्कार है। विभो ! जो जन्म-मरणसे भयभीत हो संसार-बन्धनसे मुक्त होनेकेलिये प्रयत्न करते हैं, उन यतियोंको निर्वाण (मोक्ष) प्रदान करनेवाले आप ही हैं। आप ही सहस्रों किरणोंवाले सूर्य होकर तप रहे हैं। सुख के आश्रय रूप महेश्वर ! आपको नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेव तथा महर्षि भी आपको यथार्थरूपसे नहीं जानते हैं। फिर हम कैसे जान सकते हैं। आपसे ही सबकी उत्पत्ति होती है तथा आपमें ही यह सारा जगत् प्रतिष्ठित है। काल, पुरुष और ब्रह्म—इन तीन नामोंद्वारा आप ही प्रतिपादित होते हैं। पुराणवेत्ता देवर्षियोंने आपके ये तीन रूप बताये हैं। अधिपौरुष, अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैवत, अधिलोक, अधिविज्ञान और अधियज्ञ आप ही हैं। आप देवताओंकेलिए भी दुर्ज्ञेय हैं।

विद्वान् पुरुष आपको अपने ही शरीरमें स्थित अन्तर्यामी आत्माके रूपमें जानकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो रोग-शोकसे रहित परमभावको प्राप्त होते हैं। प्रभो! यदि आप स्वयं ही कृपा करके जीवका उद्धार करना न चाहें तो उसके बारंबार जन्म और मृत्यु होते रहते हैं। आपही स्वर्ग और मोक्ष के द्वार हैं। आपही उनकी प्राप्तिमें बाधा डालनेवाले हैं तथा आप ही ये दोनों वस्तुएँ प्रदान करते हैं। आप ही स्वर्ग और मोक्ष हैं। आप ही काम और क्रोध हैं तथा आप ही सत्त्व, रज, तम, अधोलोक और ऊर्ध्वलोक हैं।"[१]

"जिन्हें जान लेने पर फिर जन्म और मरणका बन्धन नहीं रह जाता है तथा जिनका ज्ञान प्राप्त हो जानेपर फिर दूसरे किसी उत्कृष्ट ज्ञेय तत्व का जानना शेष नहीं रहता है, जिन्हें प्राप्त कर लेनेपर विद्वान् पुरुष बड़े से बड़े लाभको भी उनसे अधिक नहीं मानता है, जिस सूक्ष्म परम पदार्थको पाकर ज्ञानी मनुष्य ह्रास और नाशसे रहित परम पदको प्राप्त कर लेता है, तत्त्व आदि तीन गुणों तथा चौबीस तत्त्वोंको जाननेवाले सांख्यज्ञानविशारद सांख्ययोगी विद्वान् जिस सूक्ष्म तत्वको जानकर उस सूक्ष्मज्ञानरूपी नौकाकेद्वारा संसारसमुद्रसे पार होते और सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाते हैं, प्राणायामपरायण पुरुष वेदवेत्ताओंके जानने योग्य तथा वेदान्त में प्रतिष्ठित जिस नित्य तत्त्व की ध्यान और जप करते हैं और उसीमें प्रवेश कर जाते हैं, वही ये महेश्वर हैं।"[२]

तण्डि भगवान शंकर को ही पराकाष्ठा और परमगतिरूप चित्रित करता हुआ आगे कहता है :

"शंकर ही समस्त प्राणियोंकेलिए शरणप्रदाता हैं। यही मृत्यु और विपत्तियोंसे रक्षा करनेवाले हैं। पराकाष्ठा, परमकला, परमसिद्धि और परम रूप हैं। परमशान्ति और परमानन्द भी इन्हींमें समाहित हैं। योगिजन इनको प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाते हैं। शंकरकी तुष्टि ही समस्त सिद्धियों का मूल है। भक्त लोग उन्हें प्राप्त कर पुनरागमनसे मुक्त हो जाते हैं।"[३]

अनुशासनपर्वके सत्रहवें अध्यायमें शिवसहस्रनाम अंकित है तथा शिवसहस्रनामके पाठका फल भी बतलाया गया है।

---

१. अनुशासन पर्व १६।१२-२१
२. वही १६।४०-४३
३. वही १६।५७-६०

महादेव या शिवकी स्तुति अश्वत्थामाने भी की है। इस स्तुतिमें भगवान् शंकरके विभिन्न नामोंका कथन करते हुए उन्हें त्रिकालमे स्तुत्य बताया है :

"पूर्वकालमें आपकी स्तुति की गयी है, भविष्यमें भी आप स्तुतिके योग्य बने रहेंगे और वर्त्तमानकालमें भी आपकी स्तुति की जाती है। आपका कोई भी संकल्प या प्रयत्न व्यर्थ नहीं होता। आप व्याघ्र-चर्ममय वस्त्र धारण करते हैं, लोहित वर्ण और नीलकण्ठ हैं। आपके वेगको सहन करना असम्भव है और आपको रोकना सर्वथा कठिन है। आप शुद्ध-स्वरूप ब्रह्म हैं। आपने ही ब्रह्माजीकी सृष्टि की है। आप ब्रह्मचारी, व्रतधारी तथा तपोनिष्ठ हैं, आपका कहीं अन्त नहीं है। आप तपस्वी जनोंके आश्रय, बहुत-से रूप धारण करनेवाले तथा गणपति हैं। आपके तीन नेत्र हैं। अपने पार्षदों को आप बहुत प्रिय हैं। धनाध्यक्ष कुबेर सदा आपका मुख निहारा करते हैं। आप गौरांगिनी गिरिराजनन्दिनीके हृदय-वल्लभ हैं। कुमार कार्तिकेयके पिता भी आप ही हैं। आपका वर्ण पिंगल है। वृषभ आपका श्रेष्ठ वाहन है। आप अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र धारण करनेवाले और अत्यन्त उग्र हैं। उमा देवीको विभूषित करनेमें तत्पर रहते हैं। ब्रह्मा आदि देवताओं से श्रेष्ठ और परात्पर हैं। आपसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है। आप उत्तम धनुष धारण करनेवाले, दिगन्तव्यापी तथा सब देशोंके रक्षक हैं। आपके श्रीअंगों में सुवर्णमय कवच शोभा पाता है। आपका स्वरूप दिव्य है तथा आप चन्द्रमय मुकुटसे विभूषित होते हैं। मैं अपने चित्तको पूर्णतः एकाग्र करके आप परमेश्वरकी शरणमें आता हूँ।"[१]

इस प्रकार अश्वत्थामाने शिवकी स्तुति अनेक रूपोंमें प्रस्तुत की। यहां शिव का रूप वीर योद्धा, समाधिलीन योगी एवं व्याघ्रचर्मधारी श्मशानवासीके रूपमें अंकित किया गया है। शंकर शरणागतोंको सभी प्रकारसे संरक्षण प्रदान करते हैं।

वेदोंमें नरस्तुतियाँ ही प्रधान रूपसे मिलती हैं, पर महाभारतमें नारीस्तुतियोंका भी समावेश है। स्तुतिविकासकी परम्पराकी दृष्टिसे अर्जुन द्वारा की गई दुर्गादेवीकी स्तुति कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस स्तुतिद्वारा

---

१. सौप्तिक पर्व ७।६-११

एक ऐतिहासिक कड़ी जुड़ जाती है। अर्जुन कौरवोंकी अपरिमित शक्ति को देखकर भगवान् श्रीकृष्णके परामर्शसे शक्ति-प्राप्तिके हेतु दुर्गाकी स्तुति करता है। इस स्तुतिमें भक्त-हृदयकी तल्लीनताके साथ शक्ति-प्रदात्री दुर्गाका पौराणिक रूप भी विकसित हुआ है। जम्भिनी, मोहिनी, माया, ह्री, श्री, संध्या, प्रभावती, सावित्री और जननीके रूपमें दुर्गाका स्तवन किया गया है। दुर्गा तुष्टि, पुष्टि, धृति, शक्ति आदि प्रदान करती है। ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टिसे यह स्तुति गणनीय है। आरम्भमें अर्जुनने दुर्गाको मन्दराचलनिवासिनीके रूपमें स्मरण किया है। कुमारी, काली, कपाली, कपिला, कृष्ण-पिंगला, भद्रकाली और महाकाली आदि नामोंद्वारा उनका स्मरण कर चण्डी नामकी सार्थकता प्रस्तुत की है। महिषासुर दमनकी पौराणिक कथाका सन्दर्भ भी इस स्तुतिसे जुड़ा हुआ है।[1]

स्पष्ट है कि महाभारतमें वैदिकयुगकी प्राकृतिक शक्तियोंके सूचक इन्द्र, वरुण, उषा आदि देवताओंके स्थानमें स्कन्द, विशाख आदि मानव रूप देवताओंकी प्रतिष्ठा हुई और त्रिदेवको विशेष उत्कर्ष प्राप्त हुआ। भगवान्की उत्पादक, धारक और संहारक शक्तियोंके प्रतीक—ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूजा होने लगी। महाभारतमें केवल विष्णुके पूजक भागवतसम्प्रदाय और शिवके पूजक पाशुपतसम्प्रदायका उल्लेख ही नहीं मिलता है अपितु यह कल्पना भी उपलब्ध होती है कि भागवतोंके उपास्य देवता विष्णु ही पाशुपतोंके आराध्यदेव शिव हैं। महाभारतकी स्तुतियों में काव्यात्मकता अल्प और पौराणिकता अधिक है।

वाल्मीकि रामायणमें समाहित स्तुति-साहित्य

विकसनशील महाकाव्योंमें रामायणका महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह महाकाव्य आदिकाव्य कहलाता है। आदिकवि महर्षि बाल्मीकिने कल्पना, भावना, दर्शन और वर्णन का मनोरम सामंजस्य प्रस्तुत किया है। इस महाकाव्यमें सुन्दर स्तुतियों का समावेश हुआ है। स्तोत्रशैलीका निर्वाह महाकाव्यमें अपेक्षित होता है। आदिकविने भी अपने पात्रों द्वारा अनेक स्थानों पर सुन्दर स्तुतियाँ करायी हैं। इन स्तुतियों में भक्तों की

१. भीष्म पर्व २३/६-९, १३-१४

ससीमता, अल्पज्ञता, दीनता और इष्टदेवकी असीमता, सर्वज्ञता, उदारता और दयालुताका खुले हृदयसे गान किया गया है। रसमाधुर्यके साथ पाण्डित्यका चमत्कार भी पाया जाता है। आरम्भमें देवता ब्रह्माजीकी स्तुति करते हैं :

"भगवन् ! रावण नामक राक्षस आपका कृपाप्रसाद पाकर अपने बल से हम सब लोगोंको बड़ा कष्ट दे रहा है। हममें इतनी शक्ति नहीं है कि अपने पराक्रमसे उसको दबा सकें। आपने प्रसन्न होकर उसे वर दे दिया है। तबसे हमलोग उस वरका सदा समादर करते हुए उसके सारे अपराधों को सहते चले आ रहे हैं। उसने तीनों लोकोंके प्राणियोंका नाकों दम कर रखा है। वह दुष्टात्मा जिनको कुछ ऊँची स्थितिमें देखता हैं, उन्हींके साथ द्वेष करने लगता है। देवराज इन्द्रको परास्त करनेकी अभिलाषा रखता है। आपके वरदानसे मोहित होकर वह इतना उद्दण्ड हो गया है कि ऋषियों, यक्षों, गन्धर्वों, असुरों तथा ब्राह्मणोंको पीड़ा देता और उनका अपमान करता फिरता है। सूर्य उसको ताप नहीं पहुँचा सकते। वायु उसके पास जोरसे नहीं चलती तथा जिसकी उत्ताल तरंगें सदा ऊपर-नीचे होती रहती हैं, वह समुद्र भी रावणको देखकर भयके मारे स्तब्ध-सा हो जाता है—उसमें कम्पन नहीं होता। वह राक्षस देखनेमें भी बड़ा भयंकर है। उससे हमें महान् भय प्राप्त हो रहा है। अत: भगवन् ! उसके वधके लिये आपको कोई-न-कोई उपाय अवश्य करना चाहिये।"[1]

समस्त देवताओं द्वारा इस प्रकार निवेदित किये जाने पर ब्रह्माजी अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने रावणादिके नाशका आश्वासन दिया। ब्रह्मा द्वारा दिये गये आश्वासनको सुनकर ऋषि लोग प्रसन्न थे कि इसी समय उन्हें पीताम्बरधारी, शंख, चक्र एवं गदासे सुशोभित विष्णुके दर्शन हुए और वे तुरत विष्णुकी स्तुति करने लगे :

वधार्थं वयमायातास्तस्य वै मुनिभि: सह ।
सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गता: ॥
त्वं गति: परमा देव सर्वेषां न: परंतप ।
वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मन: कुरु ॥[2]

---

१. **बालकाण्ड** १५/६-११

२. वही १५/२४-२५

रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण आदि तपश्चर्या करनेके पश्चात् भगवान् ब्रह्माकी स्तुति करते हैं :

भगवन् प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद् भयम् ।
नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्वमहं वृणे ॥[१]

इस प्रकार रामायणमें स्तुतियोंका समावेश स्थान-स्थानपर हुआ है। उत्तरकाण्डके ८४वें सर्गमें इन्द्रने भगवान् विष्णुकी स्तुति कर वृत्रासुरके वधकी याचना की है। उत्तरकाण्डके ही ३५वें सर्गमें हनुमान्द्वारा वायुके रोके जानेपर समस्त देववर्गने ब्रह्मासे वायुमुक्तिके लिए स्तुतिकी है। इस प्रकार आदिकविने अपने महाकाव्यको सरस बनानेकेलिए ब्रह्मा और विष्णुकी अनेक स्थानोंपर सुन्दर स्तुतियां सम्पादितकी हैं। आरम्भमें रामका रूप महामानवके रूपमें चित्रित हुआ है, पर उत्तर काण्डमें उनका रूप विष्णुत्वको प्राप्त होने लगा है। अतः वे भी त्राणकर्त्ताके रूपमें स्मृत किये गये हैं।

पुराणोंमें समाहित स्तुतियाँ

भक्तिके विकासकी दृष्टिसे पौराणिक साहित्यका मूल्य सर्वाधिक है। इस युगमें भक्ति-भावनाका विकास जितनी तीव्रतासे हुआ उतनी ही तीव्रतासे आराध्य देवोंकी स्तुतियाँ भी रची गयीं। पुराण-साहित्यमें सरस, भावपूर्ण और दार्शनिक भावनासमन्वित स्तोत्र भरे पड़े हैं। वैदिक युगमें देवताओंसे ऐहिक वस्तुओंकी याचना की जाती थी पर पौराणिक युगमें पारलौकिक सुख और मोक्ष-प्राप्ति जीवनकेलिए आवश्यक तथ्य माने जाने लगे। आगे चलकर भक्त लोग उपास्यकी ही भक्तिकी याचनाको सर्वाधिक महत्त्व देने लगे। उपास्य की महत्ताकी इससे अधिक अभिव्यंजना और हो ही क्या सकती थी? ऐसे प्रसंगोंमें जिनमें वैयक्तिकता पूर्णरूपसे समाहित है अनुभूतिका गहन रूप देखा जा सकता है। यद्यपि यह सत्य है कि पुराणोंमें समाहित स्तोत्रोंका काव्यकी दृष्टिसे अधिक मूल्य नहीं पर अन्तर्मुखी चेतनाकी झांकी इन स्तोत्रों में पूर्णतया उपलब्ध होती है। आत्मनिवेदनकी ऐसी एकनिष्ठता श्रृंगारपरक गीतियोंमें बहुत कम उपलब्ध होती है। पौराणिक धर्मके अनुसार स्तोत्र-साहित्यकी अवतारणाके निम्नलिखित लक्ष्य हो सकते हैं :

---

१. उत्तरकाण्ड १०/१६

१. समस्त अदृश्य शक्तिका माध्यम ईश्वरीय शक्तिकी कल्पना—लोक-कल्याण और वैयक्तिक सुख-समृद्धिका माध्यम परोक्ष सत्ताको माना जाने लगा था। उसीकी कृपासे मनुष्यका कल्याण हो सकता था। अतः परोक्ष शक्तिको प्रसन्न करने और उससे लोक और परलोकके कल्याण की याचनाके हेतु स्तोत्र-साहित्यका सृजन हुआ।

२. परमात्मसत्ताके विभिन्न रूपोंकी स्वीकृति—परमात्माके अनेक रूप स्वीकार किये गये हैं। उनमें असीम सौन्दर्य, वैभव और अपरिमित शक्तिकी कल्पना की गयी है। जिस प्रकार शृंगारिक गीतिकाव्यमें नखशिख वर्णनकी प्रणाली चली आ रही थी, उसी प्रकार इन स्तोत्रोंमें भी उपास्य के अंग-प्रत्यंगोंके सौन्दर्य, विभिन्न व्यापार, चितवन आदि का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया गया और जगन्नियन्त्री अदृश्य शक्तिको मानव शरीर ही नहीं, मानव हृदय भी प्रदान कर दिया गया। अपनी समस्त चिन्ताओंका भार उस शक्तिके ऊपर छोड़कर उपासकोंने निश्चिन्त हो जानेमें ही सुखका अनुभव किया। यही कारण है कि पौराणिक स्तोत्रोंका महत्त्व बढ़ता गया, जिनका पाठकर जनता शान्ति, सन्तोष और आशाके सहारे जीवनके अस्पृहणीय क्षणोंको भी स्पृहणीय बना सके। पुराणोंमें समाहित स्तोत्र परमात्मसत्ताके अनेक रूपों की अभिव्यक्ति करते हैं।

विष्णुपुराण एवं श्रीमद्भागवतमें निहित स्तोत्रसाहित्य

यों तो अठारह पुराणोंमें स्तुति-साहित्यका समावेश हुआ है, पर विष्णु और श्रीमद्भागवत पुराणोंमें निहित स्तुतियाँ भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियोंसे बेजोड़ हैं। विष्णुपुराणमें पृथ्वी, पराशर, प्रह्लाद, कालियनाग, नागपत्नी, इन्द्र आदि द्वारा की गयी स्तुतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। पराशरने भगवान विष्णुकी स्तुति करते हुए कहा है :

"हे ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम ईश्वर! हे केशव! हे शंख-गदाधर! हे खड्ग-चक्रधारी प्रभो! आपकी जय हो। आप ही संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कारण हैं तथा आप ही ईश्वर हैं और जिसे परम पद कहते हैं वह भी आपसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हे यूपरूपी डाढ़ोंवाले प्रभो! आप ही यज्ञपुरुष हैं, आपके चरणों में चारो वेद हैं, दाँतों में यज्ञ हैं,

मुखमें चितियाँ हैं। हुताशन आपकी जिह्वा है तथा कुशाएँ रोमावलि हैं। हे महात्मन्! रात और दिन आपके नेत्र हैं तथा सबका आधारभूत परब्रह्म आपका सिर है। हे देव! वैष्णव आदि समस्त सूक्त आपके सटाकलाप हैं और समग्र हवि आपके प्राण हैं। स्रुक् आपका तुण्ड है, सामस्वर धीर-गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश शरीर है तथा सत्र शरीर की संधियाँ हैं। हे देव! इष्ट और पूर्त धर्म आपके कान हैं। हे नित्यस्वरूप भगवन्! प्रसन्न होइये। हे अक्षर! हे विश्वमूर्ते! अपने पाद-प्रहारसे भूमण्डलको व्याप्त करने वाले आपको हम विश्वका आदि कारण समझते हैं। आप सम्पूर्ण चराचर जगत्के परमेश्वर और नाथ हैं, अतः प्रसन्न होइये। हे नाथ! आपकी डाढ़ोंपर रखा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल ऐसा प्रतीत होता है मानो कमलवनको रौंदते हुए गजराजके दाँतोंसे कोई कीचड़में सना हुआ कमलका पत्ता लगा हो। हे अनुपम प्रभावशाली प्रभो! पृथ्वी और आकाशके बीचमें जितना अन्तर है वह आपके शरीरसे ही व्याप्त है। हे विश्वको व्याप्त करनेमें समर्थ तेज युक्त प्रभो! आप विश्व का कल्याण कीजिए।"[1]

स्पष्ट है कि उपर्युक्त स्तुतिमें महावराह को यज्ञरूप और समस्त-शक्तिधारक-रूपमें चित्रित किया गया है। स्तुतिके उत्तरार्द्धमें उन्हें जगत्का उद्धारकर्त्ता और ज्ञान-स्वरुप अंकित किया गया है। शब्द-योजना और तन्मयता की दृष्टिसे इस स्तुतिका मूल्य किसी स्वतन्त्र स्तोत्र से कम नहीं है।

पृथ्वीने 'नमस्ते पुण्डरीकाक्ष शंखचक्र गदाधर'[2] इत्यादि पद्योंद्वारा जो केशवकी विनम्र स्तुति की है, उसमें आत्मनिष्ठताकी भावना पूर्णतया निहित है। 'भवतो यत्परं तत्त्वं तन्न जानाति कश्चन'[3] 'त्वामाराध्य परब्रह्म याता मुक्तिं मुमुक्षवः,[4] 'त्वं वेदास्त्वं तदंगानि त्वं यज्ञपुरुषो हरे'[5] इत्यादि पद्योंमें आराध्यके प्रति जैसी गहन तल्लीनता प्रदर्शित की गयी है, वैसी स्वतन्त्र स्तोत्रोंमें भी कम हो पायी जाती है। अतएव स्तुतिकाव्यकी दृष्टिसे विष्णुपुराणका मूल्य अनल्प है।

---

१. **विष्णुपुराण** १/४/३१-३७
२. **वही**, १/४/१२
३. **वही**, १/४/१८
४. **वही**, १/४/१७
५. **वही**, १/४/२३

श्रीमद्भागवतमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कपिल, श्रीकृष्ण, राम आदिकी स्तुतियाँ की गयी हैं । इन स्तुतियों में आराध्योंकी प्रशंसाके साथ भक्ति और दार्शनिक विचारधाराएँ भी प्रस्फुटित हुई हैं । श्रीमद्भागवतकी अधिकांश स्तुतियाँ संकटोंसे रक्षाकार्य करनेकेलिए निबद्धकी गयी हैं । भक्तिविभोर होकर आत्मसमर्पणकी प्रवृत्ति पूर्णरूपसे श्रीमद्भागवतमें पायी जाती है । स्तोताओंने कृष्णके रूप-माधुर्य, असीम शक्ति और उनके अतुलित वैभवका मुक्तकण्ठसे गान किया है । काव्यात्मक दृष्टिसे योगेश्वरका महनीय रूप-लावण्य प्रत्येक सहृदय पाठकमें स्तुतियोंके माध्यमसे रसानुभूतिका संचार करनेमें अनुपम हैं ।

श्रीमद्भागवतमें सकाम और निष्काम दोनों प्रकारकी स्तुतियाँ पायी जाती हैं । सकाम स्तुतियाँ किसी कामनासे प्रेरित होकर की गयी है । यथा कारागारसे मुक्त होनेकेलिए अथवा दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंसे निवृति प्राप्त करनेकेलिए समय-समयपर स्तुतियाँ निबद्धकी गयी हैं । मरीच्यादि ऋषिगण पृथ्वीके उद्धारहेतु भगवान् वराहकी स्तुति करते हैं । इसी प्रकार गन्धर्व और विद्याधरगण अपने अभ्युत्थानकेलिए भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हैं । इन सकाम स्तुतियोंके सन्दर्भोंमें विभाव, अनुभाव और संचारिभावोंकी अभिव्यंजना भी सुष्ठुरूपसे सम्पन्न हुई है । निःसन्देह इन स्तुतियोंमें एक शक्ति है, सौन्दर्य है, सजीवता है, सत्य है और है एक प्रभुभक्तिका सम्बल । इनमें मनोहर और सुकुमार कल्पनाओंकी भी कमी नहीं है । एक ओर तो इन सकाम स्तुतियोंकी कोमलकान्त पदावली स्तुत्य है, तो दूसरी ओर हृदयस्पर्शिनी भावनाएँ अपना अनोखा चमत्कार प्रस्तुत करती हैं । किसी कष्ट या आवेगसे पीड़ित व्यक्ति जब अपनेको सब ओरसे असमर्थ पाता है, तो वह त्रिलोकीनाथ प्रभुकी शरण में पहुँच शान्ति प्राप्त करना चाहता है । अतएव सकाम स्तुतियोंमें लोकोत्तर चमत्कार और आनन्दानुभूतिका सामंजस्य निहित है ।

निष्काम स्तुतियोंकी भी दो विशेषताएँ हैं । प्रथम विशेषता तो स्तुति द्वारा तत्त्वज्ञानकी प्रतिष्ठा करना है । स्तुतिकर्त्ता स्तुतिकेद्वारा चिद्चिदात्मक जीवनकी आनन्दमयी शक्ति एवं उसके कर्त्तृत्व-भोक्तृत्व आदि गुणोंका विवेचन करता है । दूसरी विशेषता साधना की है । प्रह्लाद, अम्बरीष, ब्रह्मा, ध्रुव आदिने साधनाप्रधान स्तुतियाँ की हैं । श्रीमद्भागवतमें यों

तो १३८ स्तुतियाँ समाविष्ट हैं, पर इनमें कुन्तीकृत भगवत्स्तुति,[१] भीष्मकृत कृष्णस्तुति,[२] शुकदेवकृत भगवत्स्तुति,[३] ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति,[४] सनकादिकृत भगवत्स्तुति,[५] देवहूतिकृत कपिलस्तुति,[६] ऋत्विग्गणकृत भगवत्स्तुति[७], शिवकृत भगवत्स्तुति[८] एवं राजगणकृत कृष्णस्तुति[९] आदि प्रमुख हैं।

श्रीमद्भागवतमें रमणीय स्तुतियोंका अत्यधिक सद्भाव पाया जाता है। स्तुतिकाव्यकी दृष्टिसे इन स्तुतियोंमें गेयताके साथ लय और माधुर्य भी पूर्णरूपमें समाहित है। अक्रूरद्वारा की गयी भगवान् कृष्णकी स्तुतिमें भगवान् कृष्णको प्रकृति आदि समस्त कारणोंका परम कारण माना गया है। अविनाशी पुरुषोत्तम नारायणसे ही ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्धकार, महत्तत्त्व, प्रकृति, पुरुष, मन, इन्द्रिय, इन्द्रियोंके विषय और उनके अधिष्ठातृ देवता ये सभी कृष्णके अंग स्वरूप हैं। प्रकृति और प्रकृतिसे उत्पन्न होने वाले समस्त पदार्थ "इदं वृत्ति"के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। अत: वे सभी अनात्मस्वरूप हैं और इसी कारण आदि ब्रह्मके स्वरूपको नहीं जान सकते हैं। साधु, एवं योगी स्वयं अपने अन्त:करणमें स्थित अन्तर्यामीके रूपमें समस्त भौतिक पदार्थोंमें व्याप्त परमात्माके रूपमें आपको अवगत करते हैं। कर्मकाण्डी एवं बड़े-बड़े यज्ञ-विधान करनेवाले आपके स्वरूप को ही जानने के लिए प्रयत्नशील हैं। ज्ञानी समस्त कर्मोंका संन्यास करने पर भी अपने ज्ञान-यज्ञद्वारा आपके स्वरूपकी ही आराधना करते हैं। जो व्यक्ति अन्य देवताओंकी भक्ति करते हैं, वे भी आपके स्वरूपसे भिन्न नहीं हैं। जैसे पर्वतोंसे नदियाँ प्रवाहित होती हैं, और वे घूमघामकर समुद्रमें मिल जाती हैं, उसी प्रकार समस्त उपासना-

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण-१।८
२. वही, १।९
३. वही, २।४
४. वही, २।९, ३।९
५. वही, ३।१६
६. वही, ३।२५
७. वही, ४।७
८. वही, ५।१७
९. वही, ५।१३

मार्ग घूमघामकर आपके ही पास पहुँच जाते हैं। प्रभो! आपकी प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्। ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त सम्पूर्ण चराचर जगत् आपमें ही व्याप्त है। आप सर्वस्वरूप होने पर भी चराचर जगत् से लिप्त नहीं हैं। आपकी दृष्टि निर्लिप्त है। आप समस्त वृत्तियोंके साक्षी हैं। अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी चरण है, सूर्य-चन्द्रमा नेत्र हैं, आकाश नाभि है, दिशाएँ कान हैं, स्वर्ग सिर है, देवेन्द्रगण भुजाएँ हैं, समुद्र कोख है और वायु आपकी प्राण-शक्तिके रूपमें उपासनाके रूपमें कल्पित है। वृक्ष और ओषधियाँ रोम हैं, मेघ सिरके केश हैं, पर्वत आपके अस्थि-समूह और नख हैं, दिन और रात पलकोंका खोलना और मीचना है, प्रजापति जननेन्द्रिय हैं और वृष्टि ही आपका वीर्य है। आप क्रीड़ा करनेकेलिए अवतार धारण करते हैं।"[1]

अलंकृत महाकाव्योंमें समाहित स्तुतियाँ

अलंकृत शैलीके महाकाव्य महाकवि कालिदाससे आरम्भ होते हैं। कालिदासने रघुवंश और कुमारसम्भव नामक दो महाकाव्योंका प्रणयन किया। उसमें सन्देह नहीं कि इन काव्योंमें अनेक स्तोत्र निहित हैं जो अनुभूतिकी सघनताके साथ शब्दाडम्बर और चमत्कारसे पूर्ण हैं। बहुत से स्तोत्र तो देवी-देवताओंकी नामावलिके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।

रघुवंश और कुमारसम्भवमें समाहित स्तुतियाँ

रघुवंश महाकाव्यके दशम सर्गमें महत्त्वपूर्ण स्तुति ग्रथित हुई है। देव विष्णु भगवान्की प्रशंसनीय स्तुति करते हैं: "आप में सृजन, पालन और संहारकी शक्तियाँ छिपी हुई हैं। जिस प्रकार एक स्वादवाला वर्षाका जल विभिन्न देशोंमें बरस कर पृथक्-पृथक् स्वादवाला हो जाता है, उसी प्रकार आप सभी प्रकारके विकारोंसे दूर होते हुए भी सत्त्व, रजस् और तमस् तीनों गुणोंको लेकर बहुतसे रूप धारण कर लेते हैं। हे भगवन्! आप कितने बड़े हैं यह तो कोई नहीं माप सकता, पर आपने सब लोक माप डाले हैं। आपकी स्वयं कोई इच्छा नहीं है, पर आप सबकी इच्छाएँ पूर्ण करते हैं। आपको कोई नहीं जीत सकता, पर आपने सबको जीत लिया है। आप किसी को

१. भागवत—१०।४०।१२-१८

दिखाई नहीं देते, पर आपने सबके लिए दृश्यमान यह संसार उत्पन्न किया है। हे भगवन् ! विद्वानों का कहना है कि आप सबके हृदय में रहते हुए भी दूर हैं। आप कोई इच्छा नहीं करते, फिर भी तपश्चर्या करते हैं, आप दयालु हैं पर आपको पुण्य नहीं छूता। आपको लोग पुराणपुरुष जानते हैं, पर आप कभी वृद्ध नहीं होते। आप सबको जानते हैं, पर आपको कोई नहीं जानता। आपने समस्त सृष्टि उत्पन्न की है, पर आपको किसीने उत्पन्न नहीं किया। आप सबके स्वामी हैं, पर आपका कोई स्वामी नहीं है। एकरूप होते हुए भी आप संसारके समस्त रूप धारण किये हुए हैं। सामवेद आपके गुणोंका गान करता है। आप सप्तसमुद्रोंके जलमें निवास करते हैं। सप्त प्रकारके अग्नि आपके मुख हैं। आपके चारों मुखोंसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फल देनेवाला ज्ञान उत्पन्न हुआ है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों युगोंमें बंटा हुआ समय भी आपने ही उत्पन्न किया है। योगी अपने प्राणायाम द्वारा मनको वशमें कर मुक्ति-प्राप्तिके हेतु अपने हृदयमें स्थित आपका ही ध्यान करते हैं। हे भगवन् ! आप अजन्मा कहलाकर भी जन्म लेते हैं और कर्म-रहित होकर भी शत्रुओं का संहार करते हैं। योग-निद्रा में शयन करते हुए आप जागते हैं। आप शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिका भोग करते हैं। जिस प्रकार गंगाजीकी समस्त धाराएँ समुद्रमें समाहित होती हैं, उसी प्रकार परमानन्द-प्राप्तिके जितने मार्ग बतलाये गये हैं, वे सभी आपमें समाहित होते हैं। जो योगी सदा आपका ही ध्यान करते हैं, जिन्होंने अपने सब कर्म आपको ही समर्पित कर दिये हैं और जो राग-द्वेष से दूर हैं, उन योगियोंको तो आप ही जन्म-मरणके बन्धनसे दूर करते हैं। आपके स्मरणमात्रसे लोग पवित्र हो जाते हैं। यदि उन्हें आपका दर्शन हो जाय और वे आपके चरणोंका स्पर्श कर सकें तथा आपकी वाणी को सुन सकें तो उनसे बढ़कर और कौन पुण्यात्मा हो सकता है। जिस प्रकार समुद्र के रत्न और सूर्यकी रश्मियाँ गिनी नहीं जा सकती वैसे ही स्तुति करके आपके पूरे चरितका वर्णन नहीं किया जा सकता है। संसारमें प्राप्त करने योग्य कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो आपके अधिकार में न हो। आपकी महत्ता, असीम शक्ति, अनुपम वैभव और अपूर्व कार्य करनेकी क्षमताका वर्णन करना शक्य नहीं है।"[1]

---

१. रघुवंश १०।१६-२२

कुमारसम्भवमें देवताओंने तारकासुरके वधके निमित्त ब्रह्माजीकी स्तुति की है। इस स्तुतिमें ब्रह्माको अजन्मा, गुणत्रयात्मक एवं शक्तित्रय-रूपमें वर्णित किया है : "हे भगवन्! संसारको रचनेके पहले एक ही रूप में रहने वाले और संसार रचते समय, सत्त्व, रज और तम तीन गुण उत्पन्न करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामसे तीन रूपके बन जानेवाले आपको प्रणाम है। हे ब्रह्मन्! आपने सबसे पहले जल उत्पन्न करके उनमें ऐसा बीज बो दिया जो कभी अकारथ नहीं जाता और जिसमें एक ओर ये पशु, पक्षी, मनुष्य आदि चलनेवाले जीव और दूसरी ओर वृक्ष, पहाड़ आदि न चलने वाला जगत् उत्पन्न हुआ है। इसीलिये आपको ही सबलोग संसार का उत्पन्न करने वाला बताते हैं। आप ही शिव, विष्णु और हिरण्यगर्भ इन तीन रूपोंसे अपनी शक्ति प्रकट करके संसारका नाश, पालन और उत्पादन करते हैं। आप ही जब स्त्री और पुरुषकी सृष्टि करने चलते हैं, उस समय आपके ही स्त्री और पुरुष दो रूप बन जाते हैं। वे ही दोनों रूप सारे संसार के माता-पिता कहे जाते हैं। आपने समयकी जो माप बना रखी है उसके अनुसार जो दिन और रात होते हैं, उस में जब आप सोते हैं तब संसार का महाप्रलय हो जाता है और जब आप जागते हैं तब संसारकी सृष्टि होती है। संसारको आपने उत्पन्न किया है पर आपको किसीने उत्पन्न नहीं किया। आप संसार का अन्त करते हैं पर आपका कोई अन्त नहीं कर सकता। आपने संसार का प्रारम्भ किया है पर आपका कभी प्रारम्भ नहीं हुआ। आप संसार के स्वामी हैं पर आपका कोई स्वामी नहीं है। आप अपनेको अपनेमें ही जानते हैं और अपने आप अपनेको उत्पन्न करते हैं और जब अपना काम पूरा कर चुकते हैं तब अपनेको अपनेमें ही लीन कर लेते हैं। आप तरल भी हैं, कठोर भी, मोटे भी हैं, पतले भी, छोटे भी हैं, बड़े भी, आप दिखाई भी देते हैं और नहीं भी दिखाई देते। इस प्रकार जितनी भी सिद्धियाँ हैं वे सब आपके हाथ में हैं। आप जैसा चाहें वैसा बन सकते हैं। आपने ही वेद की वह वाणी उत्पन्न की है जिसका प्रारम्भ ऊँकार से होता है। जिसका उच्चारण उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीनों स्वरोंसे होता है और जिसके मन्त्रोंसे यज्ञ करके लोग स्वर्ग प्राप्त कर लेते हैं। आप को ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकेलिये मनुष्यको उकसाने वाली मूल प्रकृति कहते हैं और आप ही उस प्रकृतिका दर्शनकरनेवाले उदासीन

पुरुष भी माने जाते हैं। आप पितरोंके भी पिता, देवताओंके भी देवता, अच्छों से भी अच्छे और सृष्टि करनेवाले प्रजापतियोंकी भी सृष्टि करनेवाले हैं। आप ही सदा हवनकी सामग्री भी हैं और आप ही हवन करने वाले भी हैं। आप ही भोगकी वस्तुएं भी हैं और आप ही भोग करने वाले भी हैं। आप ही जानने योग्य हैं और आप ही जाननेवाले हैं। आप ही ध्यान करने वाले हैं और आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं जिनका ध्यान भी किया जाना चाहिए।[1]

किरातार्जुनीयम्‌में समाहित स्तुतिसाहित्य

भारविका किरातार्जुनीयम् नामक महाकाव्य महाभारतके प्रसिद्ध आख्यानपर आश्रित है। वास्तवमें अर्थगौरव और शब्दसम्पत्तिकी दृष्टिसे यह काव्य महनीय है। भारविने अपने इस काव्यको अलंकारोंसे विभूषित करनेका सफल प्रयत्न किया है। ऋतु, जलक्रीड़ा एवं चन्द्रोदय, आदिके वर्णन अत्यन्त हृदयग्राही हैं। उनकी कवितामें गीतिमय माधुर्यकी अपेक्षा वर्णनात्मक और तर्कात्मक ओजका प्राधान्य है। ये सुश्लिष्ट पद-विन्यासके आचार्य हैं। कालिदासके समान प्रसादमयी हृदयावर्जक पदावलीका अस्तित्व इनके महाकाव्यमें भले ही न हो, पर अर्थगौरवका विलास सर्वत्र पाया जाता है। अन्तिम सर्गमें अर्जुनने भगवान् शिवकी महत्त्वपूर्ण स्तुति की है। वे कहते हैं:

'हे अपराजित ! हे भव ! लोग परमदयालु, भक्तिसुलभ, शरण-प्रदायक आपको प्राप्त करके तथा मृत्युपर विजय प्राप्त कर आपत्कालमें देव-दानवोंके सहित संसारकी रक्षा करनेमें समर्थ हो जाते हैं। हे भगवन् ! जबतक व्यक्ति आपके समक्ष प्रणत नहीं होते, तभीतक उन्हें असहाय समझकर विपत्ति उनके पास आती है। प्रायः देखा जाता है कि प्राणी संसारके तापोंसे मुक्ति प्राप्त करनेकेलिए आपकी आराधना करते हैं। इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है? आप ही निःस्वार्थ भावसे जगत्के प्राणियोंका मंगल करते हैं। संसारमें सुदूर यात्राकर लोग जिस तीर्थको प्राप्त करते हैं, वह तीर्थ तो आप ही हैं क्योंकि समस्त अभिलाषाओंकी पूर्ति आपके ही द्वारा सम्भव है। हे वरप्रदायक ! आपमें प्रीति

---

१. कुमारसम्भव, २/४-१५

रखनेवाला पुरुष सर्वोत्तम मोक्ष-पदको प्राप्त करनेवाला होता है और आपसे विरोध करनेवाला व्यक्ति नरकगामी होता है । आपही भक्तोंको स्वर्ग और शत्रुओंको नरक प्रदान करते हैं । हे निष्कलंक ! यह कार्यकारणभावसे उत्पन्न होनेवाली एक अतिरिक्त शक्ति है, जिस शक्तिके कारण स्वयं ही आपसे प्रेम करनेवाले व्यक्ति कैवल्यको प्राप्त होते हैं और द्वेष करनेवाले नरकको । आपकी कल्याणकारिणी दक्षिणमूर्तिके यथार्थज्ञानके विना ही भक्तजन केवल स्मरणमात्रसे ही भवबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं । ज्ञान और कर्मसे जिस मुक्तिकी प्राप्तिका वर्णन किया जाता है, वह ज्ञान और कर्मरूप तो आप ही हैं । आपकी महिमा अचिंत्य, अनन्त और अगम्य है । हे दयालु ! आप मायाको जीतकर संसारके प्राणियोंको नरकयातनासे मुक्त करते हैं । आप अजन्मा होकर भी मनुष्यलीलाके हेतु शरीर धारण करते हैं । आपका चित्त रागसे मुक्त है क्योंकि आप परम योगी हैं । पर विलासिता भी आपमें कम नहीं है क्योंकि आपने अपने अर्द्धाङ्गमें स्त्रीको धारणकर रखा है । आप जगद्वन्द्य होनेपर भी प्रभातकालमें ब्रह्मदेवकी वन्दना करते हैं । अतः आपके स्वभावको जानना साधारण बात नहीं है ।[1]'

इस प्रकार भगवान् शंकरके विभिन्न गुणों, रूपाकृति एवं कार्योंका विवेचन स्तुतिमें किया गया है । अनन्तर अर्जुनने वायुमूर्ति, अग्निमूर्ति, जलमूर्ति एवं व्योममूर्ति आदि अष्टमूर्तियोंकी स्तुति की और अन्तमें अस्त्रविद्या-प्राप्तिकी कामना व्यक्त की । अर्थगाम्भीर्यकी दृष्टिसे यह स्तुति अपना प्रमुख स्थान रखती है । अविद्या एवं माया आदिका दार्शनिक निरूपण भी इस स्तुतिमें पाया जाता है ।

शिशुपालवधमें समाहित स्तुति-साहित्य

शिशुपालवध काव्यके रचयिता महाकवि माघ हैं । माघ केवल सरस-कवि ही नहीं, प्रत्युत एक प्रचण्ड सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ विद्वान् हैं । इन्होंने अपने काव्यमें सर्वशास्त्रोंका पाण्डित्य समाविष्ट किया है । वे संगीतके मर्मज्ञ विद्वान् हैं । शिशुपालवध महाकाव्यका आधार श्रीमद्भागवत है । माघकी शैली अलंकृत काव्यशैलीका चूडान्त निदर्शन है । माघ परिष्कृत पदविन्यासके आचार्य हैं । इन्होंने सीधे सादे शब्दोंमें पदार्थोंका निरूपण न कर वक्रोक्तिसे

---

१. किरातार्जुनीयम्, १८।२३-३५

मण्डित तथा शाब्दिक और आर्थिक चमत्कारके उत्पादक अलंकारोंसे सुसज्जित पदोंद्वारा किया है। वस्तुत: माघ एक प्रवीण कवि हैं जिन्होंने विदग्ध जनोंके मनोविनोदके हेतु नयनाभिराम काव्यका प्रणयन किया है। अर्थालंकारोंकी दृष्टिसे यह काव्य श्रेष्ठ है। नानाप्रकारके लघुकाय गीतिछन्दोंका प्रयोग माघकी प्रमुख विशेषता है। इनके महाकव्यके चतुर्दश सर्गमें भीष्मपितामहने भगवान् श्रीकृष्णकी महनीय स्तुति की है :

"योगीलोग एक एवं सर्वश्रेष्ठ जिनको ध्यानके योग्य होनेपर भी बुद्धिमार्गके परे स्थित अज्ञानके अविषय मानते हैं, स्तुतिके योग्य होनेपर भी वाक्पथसे अतिक्रान्त अर्थात् वचन एवं मनके अविषय मानते हैं और आदरसे उपासनाके योग्य होनेपर भी अत्यन्त दूरवर्ती अर्थात् अचिन्तनीय रूपवाले मानते हैं, ये श्रीकृष्ण भगवान् रजोगुणका आश्रयकर संसारकी रचना करते हुए ब्रह्मा, सत्त्वगुणका आश्रयकर संसारको स्थितिपर रखते हुए अर्थात् पालन करते हुए विष्णु और तमोगुणका आश्रयकर संसारका संहार करते हुए हर कहलाते हैं। अतः सत्त्व, रजस् और तमस् तीन गुणोंसे ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप त्रैविध्यको धारण करते हैं अर्थात् सत्त्वादि गुणत्रयसे भिन्न ब्रह्मा आदि की तीनों मूर्त्तियाँ इन्हीं की हैं। इनको सर्वज्ञ, आदिरहित, प्राणियोंको अनुगृहीत करनेकी इच्छासे शरीरको प्राप्त किये हुए अर्थात् प्रारब्ध कर्मके वशसे मानव-शरीरको नहीं प्राप्त किये हुए एवं क्लेशों एवं कर्मोंके फलको नहीं भोगनेवाले ईश्वरसंज्ञक पुरुषविशेष कहते हैं। भक्त-वत्सल इनमें भक्ति रखने वाले लोग इनका सर्वदा स्मरण करनेसे क्षीणपापवाले होकर इनसे संसारके क्लेशरूपी नाटककी विडम्बनाकी समाप्तिको प्राप्त करते हैं अर्थात् सांसारिक क्लेशसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं। मूढ़ताका त्याग करनेके इच्छुक मुमुक्षु लोग फिर नहीं लौटनेकेलिए इन्हींका ध्यान करते रहते हैं। इन श्रीकृष्ण भगवान्ने पहले जलकी सृष्टिकी, फिर उस जलमें कभी न निष्फल होनेवाला वीर्य छोड़ा। हिरण्मय वह वीर्य ब्रह्माका कारण हुआ और उन्हीं ब्रह्माने इस संसारकी सृष्टि की। पूर्वकालमें मधु तथा कैटभ नामके दो राक्षस चंचल खटमलके समान, सरित्पतिमें सोये हुए सर्वसमर्थ जिनके क्षणमात्र निद्रासम्बन्धी सुखमें विघ्न करनेवाले बने थे। सामादि वेदगानके ज्ञाता ब्रह्मारूपी भ्रमर जिसके भीतर में है, ऐसा जिनके नाभिरूप जलाशयमें उत्पन्न कमल लक्ष्मीजीके मुखरूप चन्द्रमाके समीपमें भी शोभता है।[1]

१. माघ, १४।६०-६९

नैषध महाकाव्यमें समाविष्ट स्तुति-साहित्य

नैषधीयचरितके रचयिता कहाकवि श्रीहर्ष हैं। हर्षका समय ईस्वी सन्‌की बारहवीं शताब्दी है। हर्षमें पाण्डित्य और वैदग्ध्यका अनुपम सम्मिलन है। इनकी कविता काव्य-गुणोंके साथ पाण्डित्यसे भी मण्डित है। अलौकिक सूझके कारण अर्थघटनामें कविको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

नैषधीयचरितमें काव्यात्मक सौन्दर्यके साथ स्तुतिशैलीका भी समावेश हुआ है। २१वें सर्गमें अवतारोंकी स्तुतियाँ ग्रथित हैं। मत्स्यावतारकी स्तुति करते हुए नल कहता है: 'शंखासुरके कपटसे मत्स्यका शरीर धारण किये हुए तुम्हारी पूँछके आस्फालनसे ऊपर उछला हुआ जल आकाशांगणके संसर्गसे श्वेतिमाको प्राप्तकर मानो आकाशगंगाके रूपमें प्रकट हुआ है।'[1]

कच्छपावतारकी स्तुति करते हुए कहा गया है कि तुम्हारी पीठपर अनेक सृष्टियोंमें धारण किये गये पृथ्वी-मण्डलोंके घट्ठेके समान चक्रचिह्नोंसे स्पृष्ट पृथ्वीकी रक्षा करनेमें तत्पर आपका कच्छपशरीर संसारकी रक्षा करे।[2]

यहाँ पौराणिक तथ्यके साथ काव्यात्मक कल्पनाका समवाय प्राप्त होता है। वराह अवतारकी स्तुति दो पद्योंमें की गयी है। प्रथम पद्यमें वराहको पृथ्वीको स्तम्भन करनेवाला कहा है जो अपने विशाल दाँतोंपर पृथ्वीको धारण किये हुए हैं। द्वितीय पद्यमें बताया है कि भगवान् विष्णुने अनायास ही वराहका रूप धारण कर लिया है। उन्होंने वराह-रूप धारण कर हिरण्याक्ष नामक दैत्यको मारकर जब पातालसे पृथ्वीको दाँत पर रखकर यत्नपूर्वक उठाया, तो उनका ब्रह्माण्ड-रूप शरीर रोमांचयुक्त होकर ऐसा प्रतीत होने लगा मानों उनके शरीरपर कदम्बके पुष्प ही चढ़ाये गये हों। वराहके विशाल दाँत पर यह पृथ्वी भी छोटी प्रतीत होती थी। वराहावतारके अतिरिक्त नैषधमें नृसिंहावतार, वामनावतार एवं अन्य अवतारोंकी भी स्तुतियाँ की गयी हैं। चतुर्दश सर्गमें दमयन्तीद्वारा की गयी स्तुतियाँ भी काव्य एवं पुराण-

---

१. छद्‌ममत्स्यवपुषस्तव पुच्छास्फालनाज्जलमिवोद्धतमब्धेः।
श्वैत्यमेत्य गगनांगणसंगादाविरस्ति विबुधालयगंगा॥ नैषध, २१।५३

२. भूरिसृष्टिधृतभूवलयानां पृष्ठसीमनि किणैरिव चक्रैः।
चुम्बितावतु जगत् क्षितिरक्षाकर्मठस्य कमठस्तव मूर्त्तिः॥ वही, २१।५४

की दृष्टिसे उल्लेख्य हैं। निस्सन्देह नैषधमहाकाव्यमें समाहित स्तुतिय विशुद्ध काव्यात्मक हैं और काव्य-तत्त्वोंकी दृष्टि से उनका मूल्य अधिक है।

रत्नाकर कविने "हरविजय" के ४७वें सर्गमें देवताओंद्वारा १६७ पद्योंमें चण्डीकी स्तुति करायी है। अतएव अलंकृत महाकाव्योंमें समाहित स्तुतियाँ काव्य, पुराण और दर्शनकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं।

स्वतन्त्र रूपमें उपलब्ध स्तुतिसाहित्य

सुधी समालोचकको स्वीकार करते हुए संकोच न होगा कि संस्कृतका स्तुतिसाहित्य बड़ा ही विशाल, सरस और हृदय-स्पर्शी है। प्रत्येक सम्प्रदायके भक्तोंने अपने हृदयकी बातें अपने आराध्यके सम्मुख प्रस्तुत की हैं और उनकी महिमाका वर्णन कोमल और ललित पदावलीमें किया है। भक्तोंने इन स्तोत्रोंमें अपने हृदयकी जितनी दीनता, कोमलता, शक्तिहीनता और भगवान् की उदारता एवं शक्ति-सामर्थ्यका परिचय दिया है, वह सचमुचमें बेजोड़ है। आचार्य बलदेव उपाध्यायने लिखा है—"हमारा भक्त कवि कभी भगवान्की दिव्य विभूतियोंके दर्शनसे चकित हो उठता है, तो कभी भगवान्के विशाल हृदय, असीम अनुकम्पा और दीनजनोंपर अकारण स्नेहकी गाथा गाता हुआ आत्म-विस्मृत हो उठता है। अपने पूर्व कर्मोंकी ओर जब वह दृष्टि डालता है, तब उसकी क्षुद्रता उसे बेचैन बना डालती है। बच्चा जिस प्रकार अपनी माताके पास मनचाही प्यारी वस्तुके न मिलनेपर कभी रोता है, कभी हँसता है एवं आत्मविश्वासकी मस्तीमें कभी नाच उठता है ठीक यही दशा हमारे भक्त कवियोंकी है। वे अपने इष्ट देवताके सामने अपने हृदयको खोलनेमें किसी प्रकारकी आनाकानी नहीं करते। वे अपने हृदयकी दीनता तथा दयनीयता कोमल शब्दोंमें प्रकटकर सच्ची भावुकताका परिचय देते हैं। इन्हीं गुणोंके कारण इन भक्तोंके द्वारा विरचित स्तोत्रोंमें बड़ी मोहकता है, चित्तको पिघला देनेकी भारी शक्ति है।"[१]

स्पष्ट है कि स्तुतिसाहित्यमें भावुकता और सरसताका समन्वय रहनेके कारण साधारण जनको भी प्रभावित करने का सामर्थ्य है। स्वतन्त्ररूपसे रचित स्तुति-साहित्यका यहाँ संक्षिप्त आलोचनात्मक परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. संस्कृत साहित्यका इतिहास, पृ० ३४७

शिवमहिम्नस्तोत्र

पुष्पदन्तविरचित यह स्तोत्र लालित्य और सरस पदावली की दृष्टिसे अधिक लोकप्रिय है। इसकी रचना शिखरिणी छन्दमें होने के कारण यह गेय गुणसे सम्पन्न है। इस स्तोत्रमें ईश्वरकी सत्ता एवं उसके व्यापकत्वका दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

टीकाकारोंने इस स्तोत्रका अर्थ शिव और विष्णु दोनों पक्षोंमें घटित किया है। इससे आचार्य पुष्पदन्तकी असाधारण विद्वत्ता और रचना-विषयक पाण्डित्यका सहजमें ज्ञान हो जाता है।

इस स्तोत्रमें शंकरके विभिन्न रूपोंका कल्पनात्मक एवं भावनात्मक चित्रण हुआ है। स्तोत्रके ३०वें पद्यमें सगुण और निर्गुण रूपोंका भी आभास प्राप्त होता है।

सूर्यशतक

सूर्यशतकके रचयिता मयूरभट्ट हैं। ये काशीके पूर्वके निवासी थे। गोरखपुर जिलेके कुछ प्रतिष्ठित ब्राह्मण अपनेको मयूरभट्टकी सन्तान मानते हैं।

बाण और मयूर दोनों ही हर्षके राजपण्डित थे और दोनों ही समकालीन थे। सूर्यशतक स्रग्धरा पद्योंमें लिखा गया नितान्त प्रौढ काव्य है। भावकी अपेक्षा इसे हम शब्दचमत्कार-प्रधान काव्य कह सकते हैं। सूर्यशतक के पद्य काव्यप्रकाश और ध्वन्यालोक आदि ग्रन्थोंमें भी उपलब्ध होते हैं। इस शतकपर वल्लभदेव, मधुसूदन एवं त्रिभुवनपालकी संस्कृत टीकाएँ भी मिलती हैं।

सूर्यशतकमें भगवान् सूर्यके प्रकाश एवं आतप आदिका सुन्दर चित्रण किया गया है। उनके भिन्न-भिन्न अंगों और साधनोंका अत्यन्त सजीव वर्णन इस स्तोत्रमें सम्पन्न हुआ है।[1]

अनुप्रासकी दृष्टिसे सूर्यरथका चित्रण बहुत ही सुन्दर है। यह पद्य काव्यप्रकाशके दशम उल्लासमें अनुप्रासदोषको प्रदर्शित करनेकेलिए भी उद्धृत किया गया है।[2] मयूरने इस शतकमें पाण्डित्यप्रदर्शन अधिक किया

१. सूर्यशतक, ३६
२. वही, ७१

है। इसी कारण काव्योपयुक्त सुकुमार पदावलीका अभाव पाया जाता है। मयूरके कतिपय पद्य उच्चकोटिके भी हैं।

भगवान् सूर्यकी दीप्तिका वर्णन अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं काव्यात्मक है तथा व्यतिरेक अलंकारका सुन्दर निदर्शन है।[1]

चण्डीशतक

चण्डीशतकके रचयिता बाणभट्ट हैं जो गद्यकाव्यके निर्माता भी माने जाते हैं। इन्होंने इसमें भगवती दुर्गाकी स्तुति स्रग्धरा वृत्तोंमें निबद्ध की है चण्डीशतकमें बाणकी लम्बे-लम्बे समासवाली अनुरणनमय अनुप्रासप्रधान शैली परिलक्षित होती है। पदसन्धान सुन्दर, मधुर और साभिप्राय है। अभीष्ट देवीके उत्कर्ष-प्रदर्शनकी शैली मार्मिक है। भाषाका प्रसन्न प्रवाह अत्यन्त आह्लादजनक और प्रसादगुणपरिपूर्ण है।

शंकराचार्यके स्तोत्र

शंकरका जन्म दक्षिण भारतके केरल प्रान्तमें हुआ था। अल्पवयमें ही इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया और आसेतुहिमाचल अपनी विजय-वैजयन्ती अपनी अल्प आयुमें ही विस्तृत की। इन्होंने अद्वैतदर्शनकी प्रतिष्ठाकर मायावादका निरसन किया है। इनके अगाध पाण्डित्य, अलौकिक प्रतिभा एवं दिव्यज्ञानके समक्ष सारा विश्व नतमस्तक हो गया। फलस्वरूप इन्हें जगद्गुरुकी उपाधिसे विभूषित किया गया। इनका समय सातवीं शतीका उत्तरार्द्ध है।

परमार्थतः अद्वैतके प्रतिष्ठापक होनेके कारण शंकराचार्य सगुणोपासक हैं, फलतः इन्होंने नाना देवी-देवोंकी स्तुतियाँ रची हैं। इनके नामसे विंशत्य-धिक स्तोत्र उपलब्ध होते हैं, पर उनमेंसे कितने स्तोत्र आद्य शंकराचार्य द्वारा विरचित हैं यह नहीं कहा जा सकता। पर आनन्दलहरी, मोहमुद्गर, आत्मबोध, अपराधभंजन एवं यतिपंचक आदि प्रसिद्ध हैं। आनन्दलहरीका नामान्तर सौन्दर्यलहरी भी है। इनकी स्तुतियोंकी पदमाधुरी, रसात्मकता, अर्थ-गाम्भीर्य और सहजता गणनीय हैं। प्रासादिकता और संगीतात्मकता भी इनके स्तोत्रोंके महान् गुण हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इनका स्तोत्र-साहित्य

---

१. सूर्यशतक, २३

संस्कृत स्तोत्र-साहित्यका शृंगार है। हम यहाँ इनके विभिन्न स्तोत्रोंसे कतिपय पद्य प्रस्तुत कर काव्यात्मक सौन्दर्यका विश्लेषण अंकित करेंगे।

सौन्दर्य या आनन्दलहरीमें भगवती जगज्जननी उमाके अलौकिक रूप और उनके विश्वव्यापी प्रभावका वर्णन अंकित है। भिन्न-भिन्न देव इनकी कृपासे अपने प्रभावका विस्तार करते हैं। इस स्तोत्रमें १०३ पद्य हैं। यहाँ भगवती उमाका महत्त्व दिखलाने वाला पद्य प्रस्तुत किया जाता है :

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पंचविशिखा
वसन्तः सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः।
तथाप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते कामपि कृपां
अपांगात्ते लब्ध्वा जगदिदमनंगो विजयते ॥६॥

"हे उमा! भौरोंकी प्रत्यंचासे युक्त फूलका धनुष, पाँच बाण, वसन्त-सामन्त और मलयानिलका युद्ध-रथ लेकर अकेला कामदेव जो सम्पूर्ण विश्वको जीत लेता है, वह तुम्हारी नयनकोरकी कृपाका ही फल है।"

भगवती त्रिपुरसुन्दरीके अंग-सौन्दर्य-चित्रणमें इनके केशों का वर्णन करते हुए आचार्यने लिखा हैं :

धुनोतु ध्वान्तं नस्तुलितदलितेन्दीवरदलं
घनं श्लक्ष्णं स्निग्धं चिकुरनिकुरम्बं तव शिवे।
यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलब्धुं सुमनसो
वसन्त्यस्मिन्मन्ये बलमथनवाटी विटपिनाम् ॥४३॥

जगदम्बिका महामाया त्रिगुणातीत है। वह शारदा, रमा और उमा तीनों से अतीत है :

"हे महामाये! आगमवेत्ताओंने ब्रह्माकी पत्नीको वाणी देवी, विष्णुकी पत्नीको लक्ष्मी और शिवकी सहचरीको पार्वती कहा हैं। किन्तु तुम उन तीनोंसे परे निःसीम महिमावाली कोई और ही हो, जो सारे विश्वको नचा रही हो।"[१]

आनन्दलहरीके १०३ पद्योंमें से १०२ पद्योंकी रचना शिखरिणी पद्योंमें और अन्तिमकी रचना वसन्ततिलकामें हुई है।

---

१. सौन्दर्यलहरी, ९९

मोहमुद्गरस्तोत्रमें १७ पद्य हैं। इसमें मायामय विश्वसे पृथक् होकर ब्रह्मकी ओर आकृष्ट होनेका उपदेश दिया गया है। स्वार्थान्ध जगत्को त्याग देनेपर ही वास्तविक सुख-शान्तिकी प्राप्ति होती है। आचार्यने वास्तविक लोकानुभवका सुन्दर विवेचन किया है :

यावद्वित्तोपार्जनशक्तः तावन्निजपरिवारो रक्तः।
तदनु च जरया जर्ज्जरदेहे वार्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे ॥८॥
सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्याभूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः ॥१०॥

उक्त पद्योंमें लोकज्ञानकी परिपक्वता कूट-कूटकर भरी हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक पंक्ति सीधे हृदयसे निकली है, कहीं भी प्रयास नहीं किया गया है। शान्तरस-परक यह स्तोत्र अन्य स्तोत्रोंकी अपेक्षा विलक्षण है।

अपराधमज्जन स्तोत्रमें १७ पद्य हैं। ये सभी भक्तिरससे परिपूर्ण हैं। आरम्भमें भगवान् शिवका सगुणरूप चित्रित किया गया है। तदनन्तर माताके उदरमें स्थित कष्टोंका विवेचन और मायामय जगत्में अविवेकपूर्ण जीवनयापनका वर्णन किया गया है। अन्तमें कविने क्षमा-याचना की है। पद्य अत्यन्त हृदयस्पर्शी है :

शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमपि वरं दक्षिणांगे वहन्तम्।
नागं पाशं च घण्टां डमरुकसहितं चांकुशं वामभागे
नानालंकारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं भजामि ॥१॥

आचार्यने ध्यान, धारणा, प्राणायाम एवं प्रत्याहारयुक्त समाधिमें लीन होकर सदाशिवका साक्षात्कार किया और इनके चरणोंकी शरण जाकर अपने अपराधोंकी क्षमा याचना की है। इसी दृढ़ विश्वासका निरूपण निम्नांकित पद्य में किया गया है :

नग्नो निःसंगशुद्धस्त्रिगुणविरहितो ध्वस्तमोहान्धकारो
नासाग्रे न्यस्तदृष्टिर्विरहमवगुणेनैव दृष्टं कदाचित्।
उन्मत्तयावस्थया त्वां विगतकलिमलं शंकरं न स्मरामि
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिवशिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥१०॥

इस प्रकार हम पाते हैं कि शंकराचार्यने शिवके विभिन्न स्वरूपोंकी स्तुतियाँ मनोनिवेशपूर्वक लिखी हैं। उनके भीतर इनका शुद्ध और लोक-संग्रही हृदय स्पष्ट परिलक्षित होता है। अन्नपूर्णा, विष्णु एवं हनूमान् आदि अन्य देवी-देवताओंकी शंकरकृत स्तुतियाँ भी प्रांजलभाषामें उपलब्ध होती हैं।

कुन्दमालास्तोत्र

कुन्दमालास्तोत्रके रचयिता आचार्य कुलशेखर त्रिवांकुरके राजा थे। इनका समय दशम शतक है। यह स्तोत्र वैष्णव स्तोत्रोंमें श्रेष्ठ माना जाता है। इसमें २२ पद्य हैं।[१] इन्होंने विष्णुके अपर रूप कृष्णकी प्रमुख रूपसे अराधना की है।

भक्त शिरोमणि कुलशेखरने अत्यन्त निरभिमानितासे भगवच्चरणोंमें आत्मनिवेदन प्रस्तुत किया है। कुन्दमालाके कुछ पद्य प्रस्तुत कर उसकी भक्ति और काव्यका स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है :

वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं कुन्देन्दुशंखदशनं शिशुगोपवेशम्।
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम् ॥१॥

भक्तकी पहली शर्त है विश्वास। यदि अपने इष्टदेवकी अलौकिक शक्तिमें विश्वास नहीं तो वह मनुष्य भक्त नहीं हो सकता। यह विश्वास ही इष्टदेवके प्रति अगाध श्रद्धाको जन्म देता है। भक्तशिरोमणि महाराज कुलशेखरमें इष्टदेवके प्रति असीम विश्वास परिलक्षित होता है।[२]

कवि अपनी निःस्वार्थ भक्ति और आत्मनिष्ठाका परिचय देता हुआ कहता है :

---

१. बाबू भुवनचन्द्र बासकद्वारा प्रकाशित और मुद्रित प्रतिमें जो काव्यसंग्रह भाग २ में संकलित है, २२ पद्य ही अंकित हैं। इसका मुद्रण शब्दज्ञान रत्नाकर प्रेस कलकत्तामें सन् १८७३ ई० में हुआ था। आचार्य बलदेव उपाध्यायने अपने संस्कृतसाहित्यके इतिहासमें कुन्दमालामें श्लोकों की संख्या ३४ बतलायी है, पर काव्यसंग्रहमें ग्रथित कुन्दमालामें २२ ही पद्य हैं।

२. कुन्दमाला, १०

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो नरके वा नरकान्तके प्रकामम् ।
अवधीरितशारदारविन्दचरणोऽमरत्वमपि न चिन्तयामि ॥८॥

आलबन्दार स्तोत्र

इस स्तोत्ररत्नकी रचना यमुनाचार्यने की है। ये वैष्णव मतके प्रतिष्ठापक रामानुजाचार्यके परम गुरु थे। ये मद्रास-प्रान्तके निवासी थे। इनका समय ईस्वी सन्की दशम शती है। इनका तमिलनाम आलबन्दार था। अतः इनके स्तोत्रोंको आलबन्दार स्तोत्र कहते हैं। इन स्तोत्रोंकी आन्तरिक सुषमा अनुपम है। इसी कारण भक्तजन इसे स्तोत्ररत्न कहते हैं। भावगत और भाषागत दोनों प्रकारका इस माधुर्य स्तोत्रमें निहित है। यहाँ उदाहरणार्थ एक ही पद्य प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें भक्तके विशुद्ध अन्तःकरणसे निकले दैन्यपूर्ण उद्गार समाहित हैं :

नवामृतस्यन्दिनि पादपंकजे निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति ।
स्थितेऽरविन्दे मकरन्दनिर्भरे मधुव्रतो नेक्षुरसं समीहते ॥

कृष्णकर्णामृतस्तोत्र

लीलाशुकका कृष्णकर्णामृतस्तोत्र प्रसिद्ध है। महाप्रभु चैतन्यको यह स्तोत्र बहुत प्रिय था। लील शुक दक्षिण भारतके निवासी थे। कृष्णकर्णामृतकी रचना ११ वीं शतीमें हुई थी।

कृष्णकर्णामृतस्तोत्र कृष्णभक्तोंकी दृष्टिमें ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, अपितु काव्यरसिकोंकेलिए भी यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है। शब्दयोजना भी उतनी ही मधुर और ललित है, जितने कि भाव मधुर एवं ललित हैं।

स्तोताने बड़ी ही कुशलताके साथ विष्णु और कृष्णका एकत्व प्रतिपादित किया है। एकत्वका यह प्रयास भक्तजनोंको एकताके सूत्रमें बाँधता ही है। श्लेषरूपमें समाहित काव्य-तत्त्व भी सहृदयोंको आकृष्ट करता है :

तेजसेऽस्तु नमो धेनुपालिने लोकपालिने ।
राधापयोधरोत्संगशायिने शेषशायिने ॥७६॥

"विशिष्ट रूप (कृष्णरूप) में गायोंका पालन करनेवाले, किन्तु वास्तविक रूप (विष्णुरूप) में सारे लोकोंका पालन करनेवाले, विशिष्टरूपमें (कृष्णावतार) में राधाके पयोधरोंके अंकमें सोने वाले पर मूलरूप (विष्णुरूप) में शेषनागकी

शैय्यापर शयन करनेवाले हे प्रभो ! मैं तुम्हारे तेजस्वरूपको नमस्कार करता हूँ ।"

ललित और रुचिर शब्दप्रयोगकी दृष्टिसे निम्नांकित पद्य महत्त्वपूर्ण है :

मुग्धं स्निग्धं मधुरमुरलीमाधुरीधीरनादैः
कारं कारं करणविवरं गोकुलं व्याकुलत्वम् ।
श्यामं कामं युवजनमनोमोहनं मोहनांगं
चित्ते नित्यं निवसतु महो वल्लकीवल्लभं नः ।।

उपर्युक्त पद्यमें मधुर शब्दोंमें कृष्णका कविने मनोरमरूप अंकित किया है । इस लोकमोहन रूपको कौन अपने हृदयमन्दिरमें स्थान नहीं देगा !

अन्य स्तोत्रसाहित्य

स्तुतियोंका जब विकास होने लगा तो विभिन्न सम्प्रदायके आचार्योंने अपने-अपने सम्प्रदायकी मान्यताके अनुसार स्तोत्रोंका प्रणयन आरम्भ किया । हमें प्रधान रूपसे निम्नलिखित सम्प्रदायोंका स्तुतिसाहित्य उपलब्ध होता हैं :

१-शैवस्तुतिसाहित्य
२-शाक्तस्तुतिसाहित्य
३-वैष्णवस्तुतिसाहित्य
४-जैनस्तुतिसाहित्य
५-बौद्धस्तुतिसाहित्य

राम, कृष्ण, विष्णु एवं परब्रह्म इत्यादि सम्बन्धी स्तोत्रोंका समावेश हमने वैष्णवस्तोत्रोंमें ही किया है । शिव आर्य और द्रविड दोनों ही द्वारा मान्य देव थे । अत: विष्णुकी अपेक्षा शिव-सम्बन्धी स्तोत्र प्राचीन हैं । संख्या और गुणकी दृष्टिसे भी शैवस्तोत्र वैष्णवस्तोत्रोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । काश्मीरी कवि प्राय: शिवके भक्त हैं और इन्होंने अपने उपास्य शंकरको आधार मानकर शैवस्तोत्रोंकी रचना की है। रावणकृत शिवताण्डवस्तोत्र एवं महर्षिव्यासकृत विश्वनाथाष्टक भाषाकी दृष्टिसे भले ही प्राचीन न हों, पर उनमें अंकित भावावलि प्राचीन है । शैवस्तोत्रोंमें उत्पलदेवकृत शिवस्तोत्रावली, जगद्धरभट्टकृत स्तुतिकुसुमांजलि तथा विभिन्न शंकराचार्यों द्वारा निबद्ध शिवस्तोत्रावली भाव और भाषाकी दृष्टिसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं ।

रुद्रकी भक्तिका विकास श्वेताश्वतरोपनिषद्से उपलब्ध होता है । इस उपनिषद्के अन्तिम अध्यायमें पुरुषका उल्लेख आता है । यह पुरुष रुद्र ही है जिनको शिव और ईश भी कहा जाता है । अत: स्पष्ट है कि उस समय तक रुद्र उन लोगोंके आराध्य बन चुके थे, जो सांख्यके सिद्धान्तोंका विकास कर रहे थे । हमारे इस कथनसे महाभारत और पुराणोंमें शिवका सांख्यके साथ जो सम्बन्ध स्थापित किया गया है, उसका भी समाधान होजाता है ।[1]

श्रौत [2] और गृह्यसूत्रोंमें भी शिव-उपासनाका उल्लेख मिलता है । गृह्यसूत्रोंमें भी रुद्रकी पत्नी और रुद्रके पुत्रका भी उल्लेख आया है ।[3] अत: दुर्गाका विकास भी सूत्रग्रन्थोंसे उपलब्ध होने लगता है । उनकी उपाधियाँ महाकाली, महायोगिनी और शंखधारिणी आदि अंकित हैं । पाणिनिके अष्टाध्यायीके सूत्र तो महेश्वरसे ही प्राप्त हैं । अत: शिवका स्थान पाणिनिके समयमें महत्त्वपूर्ण हो चुका था और उनकी उपासना भी प्रचलित हो गयी थी । अतएव शैवस्तोत्र पर्याप्त प्राचीन हैं ।

शक्ति-स्तोत्र

शिवके साथ शक्तिका विकास भी होने लगा था । यही कारण है कि भागवतके साथ देवीभागवतका भी ग्रथन हुआ है । भगवती माया-शक्तिसे चराचर विश्वका निर्माण और पालन करती हैं । जगदम्बा सदा ही प्राणिमात्रका अभ्युदय करती हैं । यही कारण है कि शक्तिस्तोत्रकी रचना भी विपुल परिमाणमें सम्पन्न हुई । शक्तिके अन्तर्गत सरस्वतीस्तोत्र भी निबद्ध किये गये । विद्याप्रदायिनी माँ सरस्वतीको वागधिष्ठात्रीके रूपमें अर्चित किया गया । वास्तवमें विद्या और शक्ति दोनों ही जनसामान्यकेलिए आराध्य हैं । अत: भक्ति-विभोर होकर स्तोता सरस्वतीकी वन्दना करता है :

वीणाधरे विपुलमंगलदानशीले भक्तार्तिनाशिनि विरंचिहरीशवन्द्ये ।।
कीर्तिप्रदेऽखिलमनोरथदे महार्हे विद्याप्रदायिनि सरस्वति ! नौमि नित्यम्।।

---

१. विशेष केलिए द्रष्टव्य डॉ० यदुवंशीकृत' 'शैवमत'', बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृष्ठ ३९-४३,

२. बोधायन गृह्य सूत्र, १।२।७

३. वही, ३।३।३

वैष्णव-स्तोत्र

महाभारतके नारायणी उपाख्यानका [1] अनुशीलन करनेसे अवगत होता है कि नारायण एक ऋषि थे और स्वायम्भुव मनुके सतयुगमें उत्पन्न हुए थे। वे भगवान्‌की चार अवतारमयी विभूतियोंमें से एक थे। अन्य तीन विभूतियाँ नर, हरि और कृष्ण थीं। नर और नारायण बदरिकाश्रममें तप करते थे। नारदने उनसे पूछा—समस्त संसार तो आपकी पूजा करता है, फिर ऐसा कौनसा देव है, जिसकी उपासना आप कर रहे हैं? नारायणने उत्तर दिया—जो परमात्मा सम्पूर्ण प्राणियोंका अन्तरात्मा, त्रिगुणातीत और त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका जनक है, वह सत्-असत्-रूप परमात्मा हम दोनों नर और नारायणकी उत्पत्तिका कारण है। हम उन्हींकी उपासना करते हैं। नारायण ऋषिके पश्चात् महाभारतमें चित्रशिखण्डी नामके सात ऋषियों की तपस्याका उल्लेख आता है, जिन्होंने पंचरात्र शास्त्रका निर्माण किया था। इन ऋषियोंने एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक तपश्चरणकर नारायणकी उपासना की। अतः वैष्णव-भक्तिका प्रथम युग ज्ञान एवं ध्यान-परायणताका युग है, जिसे निवृत्तिप्रधान युग कह सकते हैं। द्वितीय युग वह युग है, जिसमें अवतारोंका विकास होता है। श्रीकृष्ण नारायण ऋषिके अवतारी रूप हैं। गीतामें प्रतिपादित भक्तिमार्ग कर्मपरायणता-सम्पन्न है। इसे कर्मयोग भी कहा गया है। नारायणी उपाख्यानके एक अंशसे एक ऐसे वर्गका भी ज्ञान होता है, जो पशुबलि-समर्थक था और जिसकी उपासना पशुहिंसापूर्ण थी। यह सम्प्रदाय भागवतोंके सम्प्रदायसे भिन्न था।

चतुर्व्यूहके अन्तर्गत वासुदेव श्रीकृष्ण और संकर्षणकी प्रधानता दिखलायी पड़ती है। ईसासे दो सौ वर्ष पूर्व पतंजलिके समयमें दोनोंकेलिए मन्दिर बनाये जा चुके थे। पाणिनिके समयमें इन दोनोंकी आराध्य देवताके रूपमें प्रतिष्ठा हो चुकी थी। महाभारतमें भीष्म श्रीकृष्णकी ईश्वरके रूपमें स्तुति करते हैं। अतः वैष्णव भक्तिका विकास महाभारतके समयसे ही होने लगा था। पौराणिक युगमें विष्णुकी विभिन्न लीलाएँ प्रचलित हुईं और षोडशोपचारके रूपमें उनकी पूजा प्रचलित हुई।

ऐतिहासिक दृष्टिसे गुप्त वंश वैष्णव धर्मका परम उपासक था। उसकी पताकापर विष्णु भगवान्‌के वाहन गरुड़का चिह्न अंकित था।

---

१. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय २२०।

दक्षिणमें वैष्णवधर्मको कुलशेखरने अवश्य स्थान दिया पर अन्य राजाओंने वैष्णवभक्तिके स्थान पर शैवभक्तिको ही विशेषरूपसे अपनाया। यद्यपि साधारण जनताका झुकाव वैष्णव धर्मकी ओर था, पर सम्राटोंने शैवधर्मको ही अपनाया। अतः दक्षिणके वैष्णव आचार्य उत्तर भारतमें गंगा-यमुनाकी घाटियोंमें आकर वैष्णवधर्मका प्रचार करने लगे। भगवान्‌के नाम, रूप, लीला और धामका विस्तृत विवेचन किया जाने लगा। फलस्वरूप वैष्णव स्तोत्रोंका प्रणयन भी पर्याप्त संख्यामें होने लगा [१]। वैष्णव स्तोत्रोंमें कूरेश स्वामीका नारायणाष्टक, ब्रह्मानन्दस्वामीका कमलापत्यष्टक, जयदेवके मंगलगीत एवं दशावतारस्तोत्र, शकराचार्यका लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्र, बुद्धकौशिक का रामरक्षास्तोत्र एव अमरदासका रामचन्द्राष्टक आदि काव्यकी दृष्टिसे सरस हैं।

विष्णुपदादिकेशान्तवर्णनस्तोत्र ५१ स्रग्धरा पद्योंमें निबद्ध हुआ है। इसमें विष्णुके पैरसे लेकर केशपर्यन्त समग्र अंगोंका सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया गया है। कविता नितान्त प्रौढ़ तथा कल्पनामण्डित है। आनन्द-मन्दाकिनीस्तोत्र भी विष्णुके स्वरूपका नितान्त स्निग्ध वर्णन प्रस्तुत करता है। इस स्तोत्रमें १०२ पद्य हैं। कविता बड़ी कोमल, रसस्निग्ध तथा माधुर्यमण्डित है। इसमें भक्तिरससे पेशल कवि-हृदयकी पूर्ण अभिव्यक्ति पायी जाती है।

वेंकटाध्वरिने लक्ष्मीसहस्रस्तोत्रकी रचना की है। ये मद्रास प्रान्तके निवासी थे और वैष्णव सम्प्रदायके भक्त थे। इनका समय १७वीं शताब्दी माना जाता है। इन्होंने लक्ष्मीसहस्रस्तोत्रमें वैयक्तिक भक्ति और उपासना के उद्‌गार व्यक्त किये हैं। लक्ष्मीसहस्रस्तोत्र एक रात्रिकी रचना है। आद्यन्त जिधरसे देखें, यह काव्य अपनी सुन्दरतामें अनूठा है। भगवती लक्ष्मीके नख-शिखका वर्णन एवं कविके दैन्य, आर्जव, आत्मसमर्पण, अनन्यप्रेम आदि भावनाओंका चित्रण पाण्डित्यपूर्ण हुआ है।

वरदराजस्तव १०६ पद्योंमें अप्पयदीक्षितद्वारा निर्मित है। यद्यपि दीक्षितजी शैवदर्शनके महनीय आचार्य थे, पर उन्होंने कांचीके भगवान् वरदराजकी स्तुति उदात्तभावसे अंकित की है। स्तोत्रकी मंजुल भावना और उदात्त दार्शनिक भाव श्लाघनीय हैं।

---

१. द्रष्टव्य डॉ० मुंशीरामशर्माकृत भक्तिका विकास, पृष्ठ ३७२-३७८

वैष्णव स्तोत्रोंमें सत्रहवीं शताब्दीके, आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ का स्थान महत्त्वपूर्ण है। ये उच्चकोटिके विद्वान् तथा सरस कवि थे। ये काशी निवासी पेद्दभट्टके पुत्र और जात्या आन्ध्रब्राह्मण थे। तत्कालीन दिल्ली बादशाह शाहजहांके निमन्त्रण पर उनके ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोहको संस्कृत पढ़ाने दिल्ली गये थे। शाहजहाँने इन्हें पण्डितराजकी उपाधिसे विभूषित किया। वृद्धावस्थामें ये मथुरामें चले आये और वहीं पर निवास करने लगे। पण्डितराज परमवैष्णव थे। उनके निम्नलिखित पांच स्तोत्र प्रसिद्ध हैं जो लहरी-पंचक कहलाते हैं:

१. करुणालहरी (भगवान् विष्णुकी स्तुति)
२. गंगालहरी वा पीयूषलहरी (गंगाजीकी स्तुति)
३. अमृतलहरी (यमुनाकी स्तुति)
४. लक्ष्मीलहरी (लक्ष्मीजीकी स्तुति)
६. सूधालहरी (भगवान् सूर्यकी स्तुति)

कविने पीयूषलहरीमें जिस भावावलिका अंकन किया है वह अनुपम है। कवितामें स्वाभाविक प्रवाह है एवं मनोरम पदशैय्या और कल्पना का अभिराम चमत्कार सर्वत्र पाया जाता है। भगवान् कृष्णके चरणारविन्दमें उनकी प्रगाढ़ भक्ति थी। अतः उनका यह स्तोत्र-पंचक द्राक्षापाकका सुन्दर उदाहरण है।

उपर्युक्त स्तोत्रोंके अतिरिक्त सोमेश्वरका रामशतक भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस में १०० पद्य हैं और सभी स्रग्धरा वृत्तमें रचे गये हैं। काव्यकला की दृष्टिसे यह स्तोत्र अपने ढंगका अनुपम है।

इस प्रकार वैष्णवस्तोत्रका विकास अनेक रूपोंमें हुआ है।

जैन स्तुति-साहित्य[1]

जैन मुनियोंकेलिए षट् आवश्यक क्रियाओंका विधान है। इनमें चतुर्विंशतिस्तव भी एक क्रिया है। अतः जैन तीर्थङ्करोंकी स्तुतिकी परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितनी जैन संघकी सुव्यवस्था। ये स्तुतियाँ प्राचीनकालमें

---

१. द्रष्टव्य— डॉ० हीरालाल जैनकृत भारतीय संस्कृतिमें जैनधर्मका योगदान, पृष्ठ १२४-१२७

भक्त्यात्मक विचारोंका प्रकाशन थी, पर उत्तरकालमें स्तुतियोंकी धारा दो रूपोंमें विकसित उपलब्ध होती है। प्रथम रूप है—बुद्धिवादी जैन नैयायिकों द्वारा लिखी गयी तीर्थङ्करों की विशेष गुणात्मक स्तुतियाँ, जिनमें जैन दार्शनिक तत्त्वोंका समावेश सम्यक् रूपसे किया गया है। इस श्रेणीकी स्तुतियोंके रचयिता समन्तभद्र, सिद्धसेन एवं हेमचन्द्र आदि हैं।

द्वितीय रूप तीर्थङ्करोंका गुणानुवाद है जिसमें भक्तितत्त्वका न्यास अलंकार और रसपूर्ण काव्यशैलीमें प्रस्तुत किया गया है। इसप्रकारके स्तोत्र काव्यतत्त्वकी दृष्टिसे विशेष उपादेय हैं। समन्तभद्रने ईस्वी सन् प्रथम शताब्दिमें[1] बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र, आप्तमीमांसा, जिनशतक और स्तुतिविद्या आदिकी रचना की है। जिनशतकमें ११६ पद्य हैं जो चित्रकाव्यकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। पूज्यपाद देवनन्दीका २६ पद्यप्रमाण सिद्धप्रियस्तोत्र २४ तीर्थङ्करोंकी स्तुतिरूपमें प्रसिद्ध है। मानतुंगाचार्यने भक्तामर-स्तोत्रकी रचना ईस्वी सन् सातवीं शताब्दिके लगभगकी है। यह स्तोत्र ४८ पद्य-प्रमाण है। इसमें आदि तीर्थङ्कर ऋषभनाथकी स्तुतिकी गयी है। प्रत्येक पद्यमें उपमा, उत्प्रेक्षा, एवं रूपक आदि अलंकारोंका समावेश किया है। इस स्तोत्रका भाषासौष्ठव और भावगाम्भीर्य प्रसिद्ध है।

भक्तामरके समकक्षही ४४ पद्य-प्रमाण कल्याणमन्दिरस्तोत्र भी पाया जाता है, जिसके रचयिता कुमुदचन्द्र नामक कवि हैं। शैली एवं भावकी दृष्टिसे यह स्तोत्र भक्तामरसे बहुत प्रभावित है। आठवीं शतीमें धनंजयने विषापहार स्तोत्र ४० पद्योंमें लिखा है। ११वीं शताब्दिमें वादिराजने २६ पद्य-प्रमाण एकीभावस्तोत्र रचा है। नवीं शताब्दिमें वप्पमहिकृत सरस्वतीस्तोत्र, भूपालकृत जिनचतुर्विंशतिका, तेरहवीं शतीमें हेमचन्द्रकृत वीतरागस्तोत्र, आशाधरकृत सिद्धगुणस्तोत्र, धर्मघोषकृत चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र, चौदहवीं शतीमें मुनिसुन्दरकृत जिनस्तोत्ररत्नकोश, जयानन्दकृत जयस्तोत्र, जिनवल्लभकृत नन्दीश्वरस्तवन, सोमतिलककृत सर्वज्ञस्तोत्र, १६वीं शतीमें शांतिचन्द्रगणिकृत ऋषभजिनस्तव और अजितजिनस्तव, धर्मसिंहकृत सरस्वतीभक्तामरस्तोत्र एवं भावरत्नकृत नेमिभक्तामरस्तोत्र विशेष उल्लेखनीय हैं।

१. युगलकिशोर मुख्तारकृत रत्नकरण्डश्रावकाचारकी प्रस्तावना।

बौद्ध स्तुति-साहित्य

बौद्ध धर्माचार्य मातृचेटकी प्रसिद्धि बौद्धजगत्में अत्यधिक है। ये स्तुतिकारके रूपमें विशेषत: सम्माननीय हैं। ये कुषाण सम्राट् कनिष्कके समकालीन थे। इनके दो स्तोत्र ग्रन्थ उपलब्ध हैं :

१. चतु:शतक
२. अध्यर्धशतक

चतु:शतकका मूल रूप उपलब्ध नहीं है। इसका केवल तिब्बती अनुवाद प्राप्य है।[1] अध्यर्धशतकमें १५० अनुष्टुप् पद्य हैं जिनमें बुद्धदेवकी स्तुति बड़ी ही भक्ति-भावनाके साथ की गयी है। यह स्तोत्र इतना लोकप्रिय हुआ कि इसका अनुवाद चीनी, तिब्बती और तोखारी भाषाओंमें पाया जाता है। यह स्तुतिकाव्य भक्ति और करुणापूर्ण हृदयोद्गारोंकी दृष्टिसे महनीय है। तथागतको अप्रार्थित मित्र कहा गया है, जो सबके प्रति करुणार्द्र होकर स्नेहकी वर्षा करते हैं। अतएव स्पष्ट है कि मातृचेटकी स्तुतियाँ नितान्त भावपूर्ण, भक्तिरससे प्लावित और लोकमंगलकारिणी हैं।

नागार्जुनके चतु:स्तवका तिब्बती भाषामें रूपान्तर प्राप्त हुआ है। संस्कृतमें इनके दो स्तोत्र उपलब्ध हैं :

१. निरोपम्यस्तव
२. अचिन्त्यस्तव

दोनों ही उच्चकोटिकके स्तोत्र हैं तथा भाव एवं भाषाकी दृष्टिसे अत्यन्त सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण हैं :

---

१. इण्डियन एण्टीक्वेरी, १९०५ वाल्यूम ३४ पृ०-१४५।

द्वितीय अध्याय

स्तुतिकुसुमांजलिका रचयिता : उसके उत्स एवं गठन, स्तुतिसाहित्यमें उसका स्थान

रचयिता

स्तुतिकुसुमांजलिके रचयिता जगद्धरभट्ट हैं। इस नामके हमें एक अन्य विद्वान्का भी ज्ञान प्राप्त होता है। ये अन्य विद्वान् वेणीसंहार और मालती-माधवके टीकाकार जगद्धर हैं। पर स्तुतिकुसुमांजलिके रचयिता जगद्धरभट्ट उक्त टीकाकारसे नितान्त भिन्न हैं। इन्होंने स्तुतिकुसुमांजलिके अन्तमें अपना संक्षिप्त परिचय भी प्रस्तुत किया है। इनके पितामहका नाम गौरधर और पिताका नाम रत्नधर था। कविने अपने पितामहका परिचय देते हुए ग्रन्थान्त में लिखा है :

पुरा पुरारेः पदधूलिधूसरः सरस्वतीस्वैरविहारभूरभूत्।
विशालवंशश्श्रुतवृत्तविश्रुतो विपश्चितां गौरधरः किलाऽग्रणीः ॥[1]

इन गौरधरभट्टने यजुर्वेदका वेदविलास नामक भाष्य रचा जिससे इनके प्रकाण्ड पाण्डित्यका सहजमें ज्ञान हो जाता है। बताया है :

अनन्तसिद्धान्तपथान्तगामिनः समस्तशास्त्रार्णवपारदृश्वनः।
ऋजुर्यजुर्वेदपदार्थवर्णना व्यनक्ति यस्याऽद्भुतविश्रुतं श्रुतम् ॥[2]

गौरधरके पुत्र रत्नधरभट्ट हुए। ये सरस्वतीके बड़े सेवक, विद्वान् और कवि थे। इनकी विद्वत्ताके कारण विष्णुप्रिया लक्ष्मी इनसे ईर्ष्या करती थी। रत्नधर परमशैव और अच्छे कवि थे। रत्नधरको सरस्वतीका वरदान प्राप्त था। उनकी काव्यकलाका रसास्वादन कर बड़े-बड़े विद्वान् रसमग्न हो जाते थे।

कल्पवृक्षसे निःसार चीज उत्पन्न नहीं हो सकती, हीरेकी खानसे काँचमणि उत्पन्न नहीं हो सकता। इस लोकोक्तिके अनुसार महाकवि

---

१. वंश, १
२. वही, ३

जन्म रत्नधरभट्टके यहाँ उनका पुत्र जगद्धरभट्ट भी विद्वान् और कविके रूपमें उत्पन्न हुआ। इनकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी। वे तर्कशास्त्रमें तो इतने निपुण थे कि उनके सामने प्रतिवादियोंका तो मुँह ही बन्द हो जाता था। सरस्वतीकी तो कविके ऊपर अपार कृपा थी। वह उनके मनमन्दिर में स्वेच्छापूर्वक विचरण करती थी। बचपनसे ही गद्धरको कविता करनेमें अभिरुचि थी, अतः वह प्रतिदिन मनोहर वर्णों द्वारा पद-विन्यास किया करते थे। शास्त्रप्रेम और सरस कविताका प्रणयन ये दोनों गुण उन्हें वंशपरम्परासे प्राप्त थे।

इनके वचनोंमें अमन्द-आनन्ददायक सघनरस समाहित था जिससे पाठक-जन उनकी प्रौढ़ उक्तियोंका रसास्वादन कर झूमने लग जाते थे :

निर्मत्सरः सहृदयः श्रुतपारदृश्वा
विश्वातिशायिविनयः प्रियवाक् सुशीलः।
किं वा परं कविगिरां सदसद्विचार
चातुर्यधुर्यधिषणः शरणं य एकः॥ वंश, ९॥

इनकी बुद्धि अत्यन्त कुशाग्र थी जिसे देखकर बड़े-बड़े विद्वान् आश्चर्य-चकित हो जाते थे :

अपि स्थवीयःस्वकृतस्थिरस्थितिः कुशाग्रतीक्ष्णामधिरुह्य यन्मतिम्।
अहो बत स्वैरविहारलीलया पदं न्यधादस्खलितं सरस्वती॥वही, ८॥

जगद्धरभट्ट त्रैलोक्यगुरु भगवान् सदाशिवके परम भक्त थे। अतएव वे जब भक्तिविभोर होकर भगवान् शंकरकी स्तुतिमें प्रवृत्त होते थे, तो उनकी वाणीको सुनकर साधारण जन भी रस-मग्न हुए बिना नहीं रहते थे। कवि शैशवसे ही भगवान् शंकरके स्तोत्रोंकी रचना करते रहते थे। उनका वह काव्यरसायन जनमानसको कंचन बनानेमें पूर्णतया सक्षम था। कवि अपनी स्तुतियोंके रसग्रहणके सम्बन्धमें विवेचन करते हुए कहते हैं कि जिसप्रकार सरोवरमें विकसित कमलोंपर यदि कदाचित् शैवालिका व्याप्त हो जाय तो चतुरजन उस शैवालजालको चतुराईसे हटाकर कमलको ग्रहण करते हैं इसी प्रकार मेरी स्तुतियोंमें जो सारतत्त्व अलंकारोंके अवगुण्ठनमें निहित है, उसे कविजन ग्रहण करें।[1]

---

१. गृह्णन्तु कंचन विशेषमशेषमस्मादस्माकमात्तवचनाः ववचनाऽन्तरज्ञाः।
चिन्वन्ति पल्वलजलात् कुशला विशालशैवालजालकलिलात् कमलौघमेव
॥वंश।११॥

कवि अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए कहता है कि मेरे वचनोंमें अमन्द-आनन्ददायक क्षमता का अभाव है, पर मैंने जिन सदाशिवके गुणोंका गुम्फन अपनी स्तुतियोंमें किया है, उन सदाशिवके प्रभावसे मेरी नीरस वाणी भी सरस रूपमें परिवर्त्तित हो जायगी।

भगवान् शंकरकी स्तुति करनेवालेको न मणिमय कर्णाभूषणोंकी आवश्यकता है, न अमूल्य मुक्ताहारकी और न सुगन्धित ताम्बूलचर्वण की, यतः स्तुतियोंमें गुम्फित शब्दावलि और भावावलि कण्ठ, कर्ण और मुखको भूषित करती हैं।

जगद्धरभट्ट विद्वान् ही नहीं थे अपितु एक प्रतिभाशाली सहृदय महाकवि भी थे। नैसर्गिक भगवद्भक्त होनेके कारण इनकी स्तुतियोंमें समाविष्ट भावना संस्कृत स्तोत्र-साहित्यमें अपना पृथक् स्थान रखती है। इनकी नृत्यत्पदावलीका श्रवण कर अर्थानभिज्ञ भी आनन्दसे झूमने लगता है। इनकी विलक्षण कवित्व-शक्तिका प्रभाव पाषाण-हृदय व्यक्तियोंपर भी पड़े बिना नहीं रहता, वे भी आनन्दविभोर होकर स्तुतियोंका स्वाद लेने लगते हैं।

यत्सत्यं सदसद्विवेकविकलग्रामीणकग्रामणी-
मिथ्यास्तोत्रपरा पराभवभुवं नीतासि भीतास्यतः।
मातः कातरतां विमुंच यदसौ सौभाग्यभाग्यावधिः
संजातो जगदेकनाथनुतिभिर्वाग्देवि ते विभ्रमः ॥वही, १६॥

जगद्धरके पुत्रका नाम यशोधरभट्ट था। जगद्धरने अपने पुत्रके पाठनार्थ कातन्त्र व्याकरणपर बालबोधिनी नामक एक वृत्ति लिखी थी,[1] जो संस्कृत-भाषाके परिज्ञानकेलिए दीपस्तम्भ है। कातन्त्रव्याकरण पाणिनि-व्याकरणकी अपेक्षा अत्यधिक सुकर है। इसमें प्रत्यहारका प्रपंच नहीं है। स्वर-वर्ण और कतिपय संज्ञाओंके ही आधार पर व्याकरणके तथ्योंको हृदयंगम किया जा सकता है। जगद्धरभट्टद्वारा लिखी गयी बालबोधिनी टीकाने इस सरल-व्याकरण ग्रन्थको और भी सरल बना दिया है।

---

१. स्वसुतस्य शिशोर्यशोधरस्य स्मरणार्थं विहितो मया श्रमोऽयम्।
उपयोगमियाद् यदि प्रसंगादपरत्रापि ततो भवेदवन्ध्यः॥
इति मितमतिबालबोधनार्थं परिहृतवक्रपथैर्मया वचोभिः।
लघु ललितपदा व्यधायि वृत्तिमृदुसरला खलु बालबोधिनीयम्॥
स्तुतिकुसुमांजलिकी भूमिका, पृष्ठ २४ पर उद्धृत।

जगद्धरभट्टने १६ वर्षकी अवस्थामें स्तुतिकुसुमांजलिकी रचना की है। अतः कविके पाण्डित्य, कविप्रतिभा एवं सरस्वतीकी समाराधना आदि गुणोंका परिज्ञान सहजमें ही इनकी स्तुतिकुसुमांजलिसे हो जाता है।

जगद्धरभट्टका समय

जगद्धरभट्टने अपने स्थितिकालके सम्बन्धमें अपने वंशवर्णनमें कहीं भी निर्देश नहीं किया है, पर बालबोधिनीवृत्तिपर इनके दौहित्रकी दौहित्रीके पुत्र राजानक शितिकण्ठने जो संस्कृत टीका लिखी है, उससे कुछ प्रकाश पड़ता है। शितिकण्ठ भी काश्मीरनिवासी था। उसके स्थानका नाम पद्मपुर बताया गया है। राजानक शितिकण्ठने अपनी व्याख्याके आरम्भमें स्वयं लिखा है :

यो बालबोधिन्यभिधां बुधेन्द्रो जगद्धरो यां विततान वृत्तिम्।
तन्नप्तृकन्यातनयातनूजो व्याख्यामि तां श्रीशितिकण्ठकोऽल्पम्॥[1]

शितिकण्ठ भ्रमणशील विद्वान् थे। उन्होंने शास्त्रोंका गहन अध्ययन किया था। गुजरातके अधिपति मुहम्मदशाहने उनका यथेष्ट सम्मान किया था। बताया गया है कि जिस समय हैदरशाहका लड़का हसनशाह कश्मीर प्रदेशमें राज्य करता था, उस समय शितिकण्ठने यह व्याख्या लिखी थी। व्याख्या के प्रारम्भमें लिखा है :

भूजानौ हस्सनाख्ये भुवमवति मया तन्यते ग्रन्थ एषः॥[2]

मुहम्मदशाहने सन् १४५८ से सन् १५११ ईस्वी तक गुजरातमें और हसनशाह ने सन् १४७२ से १४८४ ईस्वी तक कश्मीरमें राज्य किया था। इसी समय शितिकण्ठने जगद्धरभट्टके ग्रन्थकी व्याख्या लिखी है। इसके सौ सवा सौ वर्ष पहले ही श्री जगद्धरभट्ट हुए होंगे क्योंकि राजानक शितिकण्ठ उनकी छठी पीढ़ीमें हुए थे। अतएव जगद्धरभट्टका समय १३५० ईस्वीके लगभग होना चाहिये।

स्तुतिकुसुमांजलिपर राजानक रत्नकण्ठकी लघुपंचिका नामक एक संस्कृत टीका उपलब्ध है। ये रत्नकण्ठ भी कश्मीरके निवासी थे और भगवान्

१. स्तुतिकुसुमांजलिकी भूमिका, पृष्ठ २४ पर उद्धृत।
२. वही, पृष्ठ २५ पर उद्धृत।

सदाशिवके अनन्य भक्त थे। इनके द्वारा रचित काव्यप्रकाशटीकासार-समुच्चय, चित्रभानुशतक और युधिष्ठिरविजयटीका आदि कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं। राजानक रत्नकण्ठ औरंगजेबके समयमें विद्यमान थे। उन्होंने विक्रम संवत् १७३८ में स्तुतिकुसुमांजलिकी उक्त पंचिका टीका लिखी है। टीकाके अन्त में लिखा है :

वस्वग्न्यत्यष्टभिर्वर्षे मिते विक्रमभूपतेः।
अवरंगमहीपाले कृत्स्नां शासति मेदिनीम्॥
बालानां सुखबोधाय हर्षाय विदुषां कृता।
जगद्धरकवेः काव्ये तेनैषा लघुपंचिका॥[1]

अतएव जगद्धरभट्टका समय ईस्वी सन् की चौदहवीं शताब्दी होना चाहिए। अब विद्वानोंका यह अनुमान खण्डित हो गया है कि वासवदत्ता, वेणीसंहार और मालतीमाधव आदि ग्रन्थोंके टीकाकार जगद्धर ही स्तुति-कुसुमांजलिके रचयिता हैं। यतः महाकवि जगद्धरभट्टका अन्तःकरण बाल्यावस्थासे ही भगवान् शिवकी समाराधनाकी ओर झुका हुआ था; अतएव वे भगवान् शंकरके स्तवनको छोड़कर अन्य ग्रन्थोंकी टीका लिखनेकी ओर प्रवृत्त नहीं हुए होंगे, यद्यपि उनकी काव्य-प्रतिभा अनुपम है, वे चाहते तो माघ एवं नैषध जैसे महाकाव्योंका प्रणयन कर सकते थे, पर भक्त-कविका झुकाव शृंगाररसकी ओर नहीं हुआ। यही कारण है कि श्रेष्ठ प्रतिभासम्पन्न जगद्धरभट्टने अलौकिक नायकोंका चरित्र निबद्ध कर अपनी वाणीको अपावन नहीं किया।

जगद्धरभट्टकी रचनाएँ

भक्तकवि जगद्धरभट्टद्वारा निर्मित अद्यावधि दो ही रचनाएँ उपलब्ध हैं : स्तुतिकुसुमांजलि और कातन्त्रवृत्ति। कातन्त्रवृत्ति कातंत्र या कलाप नामक व्याकरणकी बालबोधिनी वृत्ति है। जिनके लिए पाणिनीय व्याकरण दुर्बोध है, उनकेलिए यह वृत्ति अत्यन्त ही उपादेय है। इस वृत्तिके अध्ययनसे कोई भी संस्कृत भाषाका जिज्ञासु अल्प प्रयासमें ही व्याकरणके नियमोंको हृदयंगम कर सकता है।

---

१. स्तुतिकुसुमांजलिकी भूमिका, पृष्ठ २५ पर उद्धृत।

स्तुतिकुसुमांजलिके स्रोत

स्तुतिकुसुमांजलि भक्तिरसका श्रेष्ठ काव्यग्रन्थ है इसका उत्स कोई एक स्तोत्र या एक महाकाव्य नहीं है। उसके अध्ययनसे ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि जगद्धरभट्टने अपने समयके उपलब्ध साहित्यका पूर्णतया आलोडन किया है। उन्होंने चारो वेद, उपनिषद्, सांख्य-दर्शन, महाभारत, नीतिशतक, गीतगोविन्द, शिवमहिम्नस्तोत्र, चण्डीशतक, शंकराचार्यके शैवस्तोत्र एवं महाकाव्योंकी प्रचलित रूढ़ियोंका अनुशीलन कर अपने ग्रन्थका प्रणयन किया है। अतः किसी एक ग्रन्थमें इस कुसुमांजलिका समग्र स्रोत नहीं ढ़ूंढा जा सकता है। निस्सन्देह कविका यह स्तोत्र महाकाव्य है जिसके ३८ स्तोत्रोंको हम सर्गकी संज्ञा दे सकते हैं। यद्यपि प्रबन्धात्मकता नहीं है, पर शिवके नाम, गुण, रूप एवं पौराणिक महत्त्वको कविने इसमें समाहित किया है। हम यहाँ उक्त कुसुमांजलिके उत्ससूत्रोंको उपस्थित करनेका प्रयास करेंगे।

महाभारतमें स्तुतिकुसुमांजलिके उत्स

यों तो शिवकी स्तुतिका प्रारम्भ ऋग्वेदसे ही होता है, पर वास्तविक रूपमें शिव का महत्त्व महाभारत और पौराणिक साहित्यसे प्रादुर्भूत होता है। शिव ऐसे सर्वमान्य देव रहे हैं जिन्हें द्रविड़ और आर्य दोनोंने समानरूपसे मान्यता प्रदान की है।

महाभारतमें शिवसहस्रनाम आता है। यह शिवसहस्रनाम कुसुमांजलिका प्रधान उत्स है। यद्यपि जगद्धरभट्टका काव्यचमत्कार और भक्तितत्त्व महाभारतसे बहुत आगे है, पर मूल उत्स महाभारतमें अवश्य निहित है। स्तुति-कुसुमांजलिके द्वितीय स्तोत्रमें भगवान् शंकरके जिन-जिन नामोंका निर्देश किया गया है, वे सभी नाम महाभारतके अन्तर्गत आये हुए शिवसहस्रनाम में उपलब्ध होते हैं :

स्थिरः स्थाणुः प्रभुर्भीमः प्रवरो वरदो वरः।
सर्वात्मा सर्वविख्यातः सर्वः सर्वकरो भवः॥[1]

स्थाणुकी स्तुति करते हुए कुसुमांजलिमें बताया गया है :

---

१. अनुशासनपर्व, १७।३१

मूलोज्झितेन कलिकाकलितेन तापशान्तिक्षमेण नमतामविपल्लवेन ।
सद्य:फलेन सुमनोभिरुपासितेन स्थाणुः श्रियेऽस्तु भवतां वपुषाऽद्भुतेन ।[१]

स्थाणुः स यत्र विभुरस्य वधूरपर्णा
सा यत्र यत्र च तयोस्तनयो विशाखः ।
प्रज्ञावतामहमहो प्रवरः प्रवेष्टु-
मिच्छामि धाम तदभीष्टफलाप्तये यत् ॥[२]

महाभारतमें शंकरको वरद-वरेण्य कहा गया है:

वरो वराहो वरदो वरेण्यः सुमहास्वनः ।
महाप्रसादो दमनः शत्रुहा श्वेतपिंगलः ॥[3]

स्तुतिकुसुमांजलिमें जगद्धरभट्टने भी महाभारतके उक्त वरद और वरेण्यको लेकर निम्न प्रकार स्तुति प्रस्तुत की है:

अनलसहितवृत्तौ सत्कलाभासशुद्धे बुधवरमुखपद्मे भारती निर्मलोर्मिः ।
वरद परमतापक्लेशजित्त्वत्प्रसादात् प्रभवति भवदीये मूर्धनि स्वर्धुनीव ॥[४]
यत्ते परं वरद रूपमतीतमेव मार्गं गिरां तदिह कः क्षमते गृणातुम् ।
अग्राहि यत्तु नतलोकमनुग्रहीतुं बालेन्दुलक्ष्म भवता तदिदं गृणामि ॥[५]

उपर्युक्त पद्योंके अध्ययनसे अवगत होता है कि कविने महाभारतसे केवल शंकरके नामोंका चयन किया है, उनके गुण और रूपका विस्तार अपनी सूक्ष्मप्रतिभाद्वारा भिन्न स्थलपर उपस्थित किया है। इसमें सन्देह नहीं कि स्वामी,[६] सारंगकेतुमुकुट,[७] सप्रकर्ष,[८] सदथ[९] कुछ ऐसे नाम भी स्तुतिकुसुमांजलिमें समाविष्ट किये हैं, जिनकी गणना महाभारतमें समाहित शिवसहस्रनामोंमें नहीं की गयी है ।

१. स्तुति० ३।१२
२. वही ११।११७
३. अनुशा० १७।१३८
४. स्तुति० १८।३
५. वही, १९।१
६. वही, १०।८, १०।७९, ११।१६, २।१८, ३।२२, १२।२२, १२।२३, १२।२४, १२।३१, ११।१०, १९।१०, २०।२ ।
७. वही, ९।१८
८. वही, १३।१०
९. वही, ३०।२३

कविने महाभारतमें समाहित विष्णुसहस्रनामसे भी कतिपय आख्यान और नामोंको अपनी स्तुतिकुसुमांजलिमें स्थान दिया है। विष्णुसहस्रनाममें बताया गया है कि सदाशिवके चरणकमलोंकी आराधना विष्णु भगवान्ने की। वे सहस्रकमल लेकर आशुतोष प्रभुका अर्चन करने लगे। शंकरको उनकी भक्तिकी परीक्षा लेनेकी इच्छा उत्पन्न हुई, अतः उन्होंने एक कमलको वहाँसे अलग कर दिया। भक्तिविभोर होकर विष्णुने अपना एक नेत्र उत्पाटितकर कमलके रूपमें समर्पित कर दिया। विष्णुकी इस भक्तिसे भगवान् शंकर बहुत प्रनन्न हुए और उन्होंने उन्हें सुदर्शनचक्र समर्पित कर तीनो लोकोंके दुष्टोंके दमनकी शक्ति प्रदान की। इस आख्यानका मूल स्रोत विष्णुका पुण्डरीकाक्ष[1] नाम तो है ही, पर इसका एक आधार शिवमहिम्नस्तोत्र[2] भी है। विष्णुसहस्रनाममें विष्णुको पुष्कराक्ष,[3] पद्‌निभेक्षण,[4] अरविंदाक्ष[5] प्रभृति नामोंद्वारा स्मरण किया गया है। इन नामोंको कुसुमांजलिमें समाविष्ट करनेकेलिए कवि विष्णुसहस्रनामका ऋणी है :

कृष्णेन त्रिजगत्प्रसिद्धविजयप्रख्यातिना लोचनं
भक्त्या वासवसूनुना कृतवता पादाब्जपूजाविधौ।
यस्मादाप्तसुदर्शनेन निखिलं विश्वं विधेयीकृतं।
कृष्णेनेव स धूर्जटिर्घटयतु श्रेयांसि भूयांसि नः ।। स्तुति० ३।५२

महाभारतसे कविने शिवस्तुतिसम्बन्धी अनेक तत्त्वोंको ग्रहण किया है। शिवसहस्रनाम, विष्णु-सहस्रनाम, शिवस्तुति, दुर्गास्तुति एवं शान्तिपर्वके नैतिकपद्योंसे कवि जगद्धरभट्टने सामग्रीका चयन किया है। अतः स्तुतिकुसुमांजलिका एक सबल स्रोत महाभारत है।

शिवमहिम्नस्तोत्रमें कुसुमांजलिके उत्स

स्तुतिकुसुमांजलिके प्रणयनमें कविने शिवमहिम्नस्तोत्रसे बहुत कुछ ग्रहण किया है। अनेक पद्योंमें आश्चर्यजनक समता पायी जाती है। शिवमहिम्नमें

---

१. अनुशासनपर्व, १४९।२५
२. महिम्नस्तोत्र, १९
३. अनुशासनपर्व, १४९।१८,७२,
४. वही, १४९।५०
५. वही, १४९।५१

भगवान् शंकरके अग्निस्वरूपका चित्रण आया है । कविने बताया है कि तेजपुंजरूप शंकरका पता लगानेकेलिए ब्रह्माजीने ऊर्ध्वलोकका अन्वेषण किया और विष्णुने अधोलोक का। पर ये दोनों ही देव उनको प्राप्त करनेमें असमर्थ रहे । अतः उन्होंने श्रद्धा और भक्तिविभोर होकर शिवके तेजस्वरूपकी स्तुति की । इस भावका जगद्धरभट्टने शंकरकी अद्भुत लीलाओंमें वर्णन किया है । वे ज्योतिर्मय शंकरकी महिमाको ब्रह्मा और विष्णुद्वारा वन्दित एवं वर्णित कहते हैं:

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरिविरंचिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनिलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश ! यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥ शिव०, १०
जयत्युदधिनिःसरद्गरनिगारलब्धाभय
प्रमोदभरनिर्भरत्रिदशदैत्यवृन्दस्तुतः ।
रसातलतलोद्गतज्वलदलंध्यलिंगोल्लस-
न्महामहिममोहितद्रुहिणवासुदेवो हरः ॥ स्तुति०, ५।६ ॥[1]

शिवमहिम्नमें रावणद्वारा कैलाश पर्वतको उठाये जानेका निर्देश आया है । इस अवसरपर पार्वती भयभीत हो शंकरके गलेसे चिपट जाती है । इस आख्यानको जगद्धरभट्टने शिवनहिम्नस्तोत्रसे ग्रहण किया है । दोनों ही स्तोत्रोंके सन्दर्भ प्रायः तुल्य हैं । अध्येताको स्वयं अवगत हो जाता है कि कवि जगद्धरभट्ट उक्त लीलाओंके चित्रणकेलिए पुष्पदन्तका आभारी है ।

अमुष्य त्वत्सेवा समधिगतसारं भुजवनम्
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥ शिव०, १२ ॥
जयत्यतुलविक्रमोन्मिषदखर्वगर्वज्ज्वर
ज्वलच्चपलमन्मथोन्मथनभग्नभोगस्पृहः ।
दशास्यभुजमण्डलीतरलितैकपिंगाचल,
वसद्गिरिसुताहठग्रथितकण्ठपीठो हरः ॥ स्तुति०, ६।६ ॥

---

१. स्तुति०, ११।१२ में भी यही भाव मिलता है ।

शिवमहिम्नस्तोत्रसे कविने भगवान् शंकरकी अष्टमूर्तियोंके सन्दर्भको भी ग्रहण किया है। शिवमहिम्नमें शंकरकी आठो मूर्तियोंका वर्णन एक ही पद्यमें निबद्ध किया गया है जबकि स्तुतिकुसुमांजलिमें अष्टमूर्तियोंका वर्णन अनेक पद्योंमें[1] आया है :

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमुधरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरम्
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥ शिव० २६ ॥
उर्वीनीरसमीरणारुणशिखिव्योमात्मसोमात्मकै-
रष्टाभिर्विभवैर्बिभर्ति भुवनं भोक्ता च भोग्यश्च यः।
ब्रूमस्तस्य किमीश्वरस्य महतः स्वैरी स्वकैरेव यः
स्फारैर्ब्रह्मपुरन्दरप्रभृतिभिः शारैरिव क्रीडति ॥ स्तुति० ८।५२

स्तुतिकुसुमांजलिके अध्ययनने ऐसा अवगत होता है कि द्वितीय स्तोत्रके समस्त पद्य शिवमहिम्नके दो-तीन पद्योंपर ही आधृत हैं। कवि जगद्धरभट्टने शिवमहिम्नस्तोत्रके निम्नलिखित पद्यद्वयके आधारपर द्वितीय स्तोत्रका प्रणयन किया है। नमः शब्दद्वारा पद्यका आरम्भ अथवा नमः शब्दद्वारा पद्यका अन्त करनेकी शैली भी कविने शिवमहिम्नस्तोत्रसे ही ग्रहण की है। दोनों पद्य निम्न हैं :

नमो नेदिष्ठाय प्रियदेव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥
बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥ शिव २९, ३०

---

१. **स्तुति**–२।१२,२।२९,८।३९, १३।१८,१५।११,२९।१९,३३।३६-४७, ३४।६,३५।९

उक्त पद्योंका भावसाम्य स्तुतिकुसुमांजलिके निम्न पद्योंमें समाहित है।

नमः शिवाय निःशेषक्लेशप्रशमशालिने ।
त्रिगुणग्रन्थिदुर्भेदभवभेदविभेदिने ।।
नमः समस्तगीर्वाणकिरीटघटितांघ्रये ।
जगन्नगरनिर्माणनर्मशर्मदकर्मणे ।।
नमस्तमस्वतीकान्तखण्डमण्डितमौलये ।
तापान्धकारनिर्वेदखेदविच्छेदवेदिने ।।
नमः समस्तसंकल्पकल्पनाकल्पशाखिने ।
विकासिकलिकाकान्तकलापाय स्वयम्भुवे ।।[1]

श्रीमद्भागवतमें स्तुतिकुसुमांजलिके उत्स

स्तुति-साहित्यकी दृष्टिसे श्रीमद्भागवतका स्थान महत्त्वपूर्ण है। भक्ति, स्तवन, अर्चन एवं आत्मनिवेदनकी दृष्टिसे श्रीमद्भागवत अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है। उसके भावमाधुर्यका प्रभावतो महाकाव्योंपर भी पड़ा है। उत्तर-कालमें जितने भी वैष्णवस्तोत्र लिखे गये हैं, वे सभी श्रीमद्भागवतसे किसी न किसी रूपमें प्रभावित हैं। ध्रुव और प्रह्लादके द्वारा की गयी स्तुति अनेक दृष्टियोंसे महनीय है।

स्तुतिकुसुमांजलिके रचयिताने श्रीमद्भागवतसे भाव, शैली एवं रम्य शब्दावलिको ग्रहण किया है। दशमस्कन्ध काव्य और भक्तितत्त्वकी दृष्टिसे इतना अधिक मूल्यवान् है कि इसका प्रभाव उत्तरवर्त्ती समस्त साहित्यपर पड़ा है। शैव, वैष्णव या शाक्त किसी भी सम्प्रदायका ऐसा कोई भी कवि नहीं है, जिसने इसके लीलामाधुर्यसे कुछ न ग्रहण किया हो। श्रीमद्भागवतमें[2] भगवानकी लीला-कथाओंकी महत्ता बतलाते हुए कहा गया है :

यत्र व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादा-
च्छृण्वन्ति येऽन्यविषयाः कुकथाः मतिघ्नीः ।
यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारा-
स्तांस्तान् क्षिपन्त्यशरणेषु तमःसु हन्त ।।

१. स्तुति०, २।२-५
२. भाग०, ३।१५।२३

भागवतकारने हतभाग्योंकी दुर्दशाका जैसा चित्रण किया है वैसा ही स्तुतिकुसुमांजलिके निम्न पद्यमें भी पाया जाता है। अतएव कुसुमांजलिकार[1] इस दशाके चित्रणकेलिए भागवतसे अनुप्राणित हैं :

उल्लंघ्य शासनमनन्यजशासनस्य, कोऽप्यन्यशासनमुपासितुमेति निष्ठाम्।
हित्वा वनं हि नवनागरपर्णपूर्णमुष्ट्रः श्रयत्यवटमेव सकण्टकौघम्॥

अर्थात् कोई विरले हतभाग्य मूढ़जन ही कामदेवके शासक भगवान् शिवका शासन छोड़कर मतिको भ्रष्ट करनेवाली कुकथाओंके अनुशीलनमें ललचाते रहते हैं। ठीक ही है, ऊँट अति सुकोमल ताम्बूल-वनको छोड़ अत्यन्त तीक्ष्ण कण्टकोंसे भरे गड्ढोंमें ही बैठा करता है।

श्रीमद्भागवतमें[2] भक्त भगवान्की महत्ता और अपनी हीनताका विवेचन करता है। इस विवेचनका प्रभावभी स्तुतिकुसुमांजलिपर पाया जाता है। श्रीमद्भागवतमें मनुष्ययोनिकी महत्ताका वर्णन निम्न प्रकार किया गया है :

येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्म यत्र।
नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य सम्मोहिता विततया बत मायता ते।

इसी भावसे प्रभावित पद्य स्तुतिकुसुमांजलिमें भी पाया जाता है :

मनुष्यता पूरुषताऽग्र्यवर्णता मनीषिता सत्कविता शिवैकता।
इयं मम क्षेमपरम्परा विभोः स्तुतिप्रसंगेन गता कृतार्थताम्॥

श्रीमद्भागवतमें अन्तर्यामी प्रभुको हृदयस्थ माना गया है और यह प्रभु ही समस्त दुःखों का विनाश करते हैं। भगवान् ही परम तत्त्व और आनन्दरूप हैं :[3]

योऽन्तर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं
सोऽद्यैव नो नयनमूलमनन्त राद्धः।
यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहां गतो नः
पित्रानुवर्णितरहाभवदुद्भवेन॥
तं त्वां विदाम भगवन् परमात्मतत्त्वं
सत्त्वेन सम्प्रति रतिं रचयन्तमेषाम्।
यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगै-
रुद्ग्रन्थयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः॥

---

१. स्तुति०, ८।४४
२. भाग० ३।१५।२४
३. वही, ३।१५।४६-४८

नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं
किन्त्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते।
येऽङ्ग त्वदंघ्रिशरणा भवतः कथायाः
कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः।

स्तुतिकुसुमांजलिकारने उक्त पद्योंसे प्रभावित होकर निम्नांकित पद्योंका निर्माण किया होगा। यों तो श्रीमद्भागवतकी वर्णन-प्रक्रिया इतनी अधिक आकर्षक और मनोज्ञ है कि इस महाग्रन्थराजसे स्तुतिकुसुमांजलिमें और भी कई अनेक तथ्य ग्रहण किये गये होंगे।

गुहाश्रितो धर्मरतिर्गिरीशप्रथां दधानो भवतः प्रसादात्।
सत्याहितप्रीतिरहीनभक्तिर्भवानिवाहं भगवन् भवेयम्॥
यमैकमाराध्य महारिसंगमादसंशयं भक्तजनः प्रमुच्यते।
उपस्थितस्तस्य भवत्प्रसादतः कथं हरेरुग्रमहारिसंगमः॥
सुदुर्लभोऽयं भवति ग्रहः पुनर्मुखेऽप्यसौ सन्निहिता सरस्वती।
इदं कुरु क्षेत्रमतीवपावनं किमर्थमर्थिन्युचिते विलम्बसे॥[1]

शिशुपालवधमें स्तुतिकुसुमांजलिके स्रोत

शिशुपालवध उच्चकोटिका महाकाव्य है। इस काव्यमें नयी कल्पनाएँ और प्रौढ़ शब्दावलि अंकित है। स्तुतिकुसुमांजलिकारने इस महाकाव्यका अध्ययनकर प्रौढ़ शैली एवं शब्दचत्मकारकी प्रवृत्तिको ग्रहण किया होगा। एकादश सर्गमें प्रभातका जैसा महनीय वर्णन है, वैसा बहुत कम काव्यग्रन्थोंमें पाया जाता है। शिशुपालवध अत्यन्त प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसकी प्रौढ़ताने साहित्य-निर्माताओंको सदा अपनी ओर आकृष्ट किया है। जगद्धरभट्टने यमक एवं अनुप्रासकी प्रवृत्ति किरातार्जुनीय और शिशुपालवधसे ही ग्रहणकी होगी। माघकाव्यमें ताण्डनृत्यके अवसरपर शिवजीद्वारा धारण किये गये गजचर्मका उल्लेख है। हमारा अनुमान है कि स्तुतिकुसुमांजलिकार इस सन्दर्भसे अवश्य प्रभावित है और उसने सम्बद्ध कथानकों एवं अन्य काव्यात्मक निर्देशोंको अपने स्तुतिकाव्यमें स्थान दिया है। माघकवि ताण्डवनृत्यके समय प्रस्तुत की गयी शिवाकृतिका चित्रण करते हुए कहते हैं :[2]

१. स्तुति०, १२।११-१३
२. शिशु० १।४

नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान्समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम् ।
क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना ।।

स्तुतिकुसुमांजलि[1] का उक्त प्रभावापन्नश्लोक निम्न प्रकार है :

एकत्र स्रुतरुधिरा करीन्द्रकृत्तिः कौसुम्भं वसनमनश्वरं परत्र ।
इत्यादीन्यपि हि परस्परं विरुद्धान्येकत्वं दधति विचित्रधाम्नि यत्र ।।

शिशुपालवधमें[2] श्रीकृष्णकी दन्तकिरणोंका सुन्दर चित्रण आया है :

सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिवाथ लम्भयन् ।
द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः ।।

स्तुतिकुसुमांजलिमें[3] यही भाव इस प्रकार वर्णित हैं :

दन्तानां सितिमनिकज्जलप्रयुक्ते मालिन्येऽप्यलिकविलोचनस्य यत्र ।
रक्तत्वे करचरणाधरस्य चान्यो नान्योन्यं समजनि नूतनो विशेषः ।।

रावणने अहंकारके वशीभूत हो कैलाशपर्वतको उठानेका प्रयास किया । भगवती पार्वती डरकर भववान् शंकरका आलिंगन करने लगीं । माघकविने[4] इस दृश्यका वर्णन निम्नप्रकारसे किया है :

समुत्क्षिपन्यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः ।
त्रसत्तुषाराद्रिसुतससंभ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम् ।।

इसी आशयका पद्य स्तुतिकुसुमांजलिमें भी है :

जयत्युदधिनिःसरद्गरनिगारलब्धाभय-
प्रमोदभरनिर्भरत्रिदशदैत्यवृन्दस्तुतः ।
रसातलतलोद्गतज्वलदलंघ्यलिंगोल्लस-
न्महामहिममोहितद्रुहिणवासुदेवो हरः ।।[5]

गीतगोविन्दमें स्तुतिकुसुमांजलिके उत्स

गीतगोविन्द संस्कृत-साहित्यका सर्वोत्कृष्ट गीतिकाव्य है । इसकी सरस शैली और भावावलिसे संस्कृतके समस्त कवि प्रभावित हैं । स्तोत्र-साहित्यको

१. स्तुति० २१।१२
२. शिशु०१।२५ ।।
३. स्तुति० २१।१३ ।।
४. शिशु० १।५० ।।
५. स्तुति० ६।५।।

तो इसकी रम्य शब्दावलीने विशेषरूपसे प्रभावित किया है। अनुप्रास और यमकका विस्तार तो इस काव्यग्रन्थमें विशेष रूपसे हुआ है। गीतगोविन्दमें जयदेवने एक ललित पद्यमें श्रीकृष्णके वस्त्रका चित्रण किया हैं :

केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले।
मंजुलवंजुलकुंजगतं विचकर्ष करेण दुगूले ॥[१]

इसपद्यसे जगद्धरभट्ट पूर्णतया प्रभावित हैं क्योंकि जयदेवद्वारा प्रयुक्त दुगूल शब्द कुसुमांजलिमें भी उपलब्ध होता है :

यस्येभचर्म घनशोणितपंकलिप्तमंगेषु मंगलदुगूलविलासमेति।
यस्यापि तापविधुरेषु करे कपालमालम्बतेऽमृतकमण्डलुखण्डलीलाम् ॥[२]

गीतगोविन्दमें श्रीकृष्णके रूपमाधुर्यका चित्रण आया हैं। यह चित्रण अत्यन्त कलापूर्ण और प्रभावशाली है। यद्यपि इस चित्रणकी पूर्णतया समता उपलब्ध नहीं होती है, पर इसका प्रभाव स्तुतिकुसुमांजलिमें अवश्य देखा जा सकता है।

कज्जलमलिनविलोचनचुम्बनविरचितनीलिमरूपम्।
दशनवसनमरुणं तव कृष्ण तनोति तनोरनुरूपम् ॥ गीत० ८।२
चरणकमलगलदलक्तकसिक्तमिदं तव हृदयमुदारम्।
दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम् ॥
दशनपदं भवदधरगतं मम जनयति चेतसि खेदम्।
कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम् ॥ वही, ८।४-५

स्तुतिकुसुमांजलिमें उक्त पद्योंका प्रभाव निम्नांकित पद्योंपर देखा जा सकता है :

यदि न पीनघनस्तनभंगुरत्रिवलिभंगितरंगितमध्यमाः।
इह हरेयुरपांगविलोकितैर्धृतरतिप्रमदाः प्रमदाः मनः ॥ स्तुति० १०।१२
पृथुलसज्जघनोरुपयोधरा गुरुमरुच्चपलाकुलिताम्बराः।
यदि भवेयुरिमा न घनागमे मृगदृशश्च दिशश्च धृतिच्छिदः ॥

---

१. गीत० १।५

२. स्तुति० ८।१२

सुरभिगन्धिसहासमुखाम्बुजा धृतमनोहरहंसकविभ्रमाः ।
यदि न मज्जनधाम नतभ्रुवः शरदि संस्मरयेयुरगापगाः ॥ स्तुति० १०।१९-२०

इसमें सन्देह नहीं कि गीतगोविन्दकी सरसता, प्रवाह और संगीत-माधुर्य स्तुतिकुसुमांजलिकेलिए उत्स रूपमें ग्राह्य हुए हैं ।

अन्य शैवस्तोत्र और उनमें स्तुतिकुसुमांजलिके स्रोत

निस्सन्देह कवि जगद्धरभट्टने भगवान् शंकराचार्यद्वारा विरचित शैव-स्तोत्रोंका अध्ययन करनेके पश्चात् ही उक्त ग्रन्थका ग्रथन किया होगा । इनपर शंकराचार्यके वेदसारशिवस्तव, शिवक्षमापराधनस्तोत्र, शिवाष्टक, शिवपंचाक्षर एवं शिवताण्डवस्तोत्रका पूर्णतया प्रभाव लक्षित होता है । वेदसारशिवस्तवमें शंकरके जिनरूपोंका चित्रण है, वे सभी रूप स्तुतिकुसुमांजलिमें समाहित हैं । शब्दावलि और शैलीमें भलेही अन्तर हो, पर भाव और वाच्यत्वमें कोई अन्तर नहीं । उक्त स्तोत्रोंमें से एकाधके रचयिता आद्य शंकराचार्य न भी हों तो भी ये स्तोत्र स्तुतिकुसुमांजलिके पूर्ववर्त्ती हैं, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता । वेदसारशिवस्तवमें शिवकी लीलाएँ, मूर्त्तियाँ एवं उनके परिवार तथा रूप आदिका वर्णन है । यह वर्णन स्तुतिकुसुमांजलिके अनेक पद्योंमें विस्तारके साथ हुआ है ।

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम् ।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गांगवारिं महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम् ।
महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं विभुं विश्वनाथं विभूत्यंगभूषम् ।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं सदानन्दमीडे प्रभुं पंचवक्त्रम् ॥
गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं गवेन्द्राधिरूढं गणातीतरूपम् ।
भवं भास्वरं भस्मना भूषितांगं भवानीकलत्रं भजे पंचवक्त्रम् ॥
शिवाकान्त शम्भो शशांकार्धमौले महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन् ।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप ॥[1]

उक्त पद्योंसे प्रभावित स्तुतिकुसुमांजलिके निम्नलिखित पद्य प्रतीत होते हैं :

कण्ठे विषं वसति मे विषमं तवेव भूतेश्वरः पशुपतिश्च भवानिवाहम् ।
अंगं ममापि गुरुरुज्ज्वलितं तवेव कष्टं शिवस्त्वमशिवस्तु विधिक्षतोऽहम् ॥

---

१. वेदसार० १-४

स्वर्भानुगीर्णमिव पूर्णशशांकबिम्बं बालांगनांगमिव दारुणरुग्विरुग्णम् ।
श्रीखण्डचन्दनमिवाजगरोपगूढं व्यूढं नृपस्य पिशुनैरिव पादमूलम् ॥[१]

निर्मत्सरौ निवसतः सममर्कचन्द्रौ नीरानलावमृतहालहलौ च यत्र ।
राज्ञा नवेन तदधिष्ठितमुज्ज्वलेन शार्वं वपुर्भवतु वांछितसिद्धये वः ॥[२]

तापत्रयापहृतये त्रिशिखं त्रिवर्गसिद्ध्यै त्रिधामलयनं नयनत्रयं च ।
त्रिस्रोतसोऽपि सलिलं त्रिमलापनुत्यै भूयात् त्रिलोकमहितं त्रिपुरद्विषो वः॥[३]

सौन्दर्यलहरीमें जैसी प्रौढ़ कवि-प्रतिभाका दर्शन होता है, उसी कोटिकी प्रतिभा स्तुतिकुसुमांजलिमें पायी जाती है। कवि जगद्धरभट्टने मूलस्रोत शैव-स्तोत्रोंसे ग्रहण करके भी उनका इसप्रकार उपयोग किया है, कि उनकी मौलिकतामें कुछ भी कमी नहीं आने पायी हैं। यहाँ हम आनन्दलहरीके दो पद्य प्रस्तुत करते हैं, जिनका प्रभाव स्तुतिकुसुमांजलिमें कई स्थानोंपर देखा जा सकता है :

वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं
श्मशानं क्रीडाभूर्भुजगनिवहो भूषणविधिः ।
समग्रा सामग्री जगति विदितैवं स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा ॥
अशेषब्रह्माण्डप्रलयविधिनैसर्गिकमतिः
श्मशानेष्वासीनः कृतमसितलेपः पशुपतिः ।
दधौ कण्ठे हालाहलमखिलभूगोलकृपया
भवत्याः संगत्याः फलमिति च कल्याणि कलये ॥[४]

स्तुतिकुसुमांजलिमें इस भावको लेकर निम्न पद्योंकी रचना की गयी प्रतीत होती है :

कानीनकण्ठापतनोत्सर्पणस्फुटोपकारौ चरणौ महागुणौ ।
क्व चांजनोद्वर्तनचर्चनादिभिः पुरारिपूजार्पणतर्पणौ करौ ॥[५]

---

१. स्तुति० ११।९७-९८
२. वही, ३।१५
३. वही, ३।१७
४. आनन्द० १६-१७
५. स्तुति० ७।२५

लीलाविलोलललनानयनान्तवासमासाद्य यः क्व न भनवित मनस्विनोऽपि ।
सोऽयं निविश्य विमले हृदये मदीये धिङ् मर्ममर्म न भिनत्ति कथं मनोभूः ॥
स्वामिन्नसन्तमिव तत्र वसन्तमेव स त्वामवैति किमिदं यदि वा किमन्यत् ।
दग्धोऽपि यं पुनरवाप्य बिभर्ति गर्वं सर्वंकषां विजयते स तव प्रसादः ॥
श्रीखण्डचन्दननिघृष्टकुरंगनाभिकर्पूरकुंकुमकरम्बशुभांगरागम् ।
उद्यन्नवीनकदलीदलसौकुमार्यं बिभ्रत्यनंगनटमंगलरंगमंगम् ॥
फुल्लारविन्दवदना विकसच्छिरीषमालाभुजाभिनवनीलसरोजनेत्रा ।
ब्रह्मास्त्रमप्रतिहतं विहिता हिताय पुष्पायुधस्य कुसुमैरिव माधवेन ॥[1]

इस प्रकार शंकराचार्यद्वारा विरचित शैवस्तोत्रोंमें स्तुतिकुसुमांजलिके अनेक बीजसूत्र उपलब्ध होते हैं ।

पातंजलयोगसूत्र और सांख्यकारिका प्रभृति दर्शनग्रन्थोंमें निहित स्तुतिकुसुमांजलिके उत्स

कवि जगद्धरभट्ट काश्मीरी हैं । उन्होंने काश्मीरी शैवदर्शनको इस ग्रन्थमें प्रतिपादित किया है । पातंजलयोगसूत्रसे कविने अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँचो क्लेशोंको ग्रहण करके स्तुतिकुसुमांजलिमें उनका विस्तारपूर्वक निरूपण किया है ।

अष्ट योगांगोंके विवेचनका आधार भी पातंजलयोगसूत्र ही है । इस ग्रन्थमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहको यम कहा है तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरशरणागतिको नियम कहा है । इन यम और नियमोंका निरूपण स्तुतिकुसुमांजलिमें आया है :

नयविनयविशुद्धमन्तरुद्यद्दहनसमानसमाप्तरोषदोषम् ।
यमनियमनियंत्रितं मनो मे कुरु सविलासविलासिनीविरक्तम् ॥[2]

पातंजलयोगसूत्रमें शुक्ल और कृष्णकर्मोंका निर्देश आया है । सूत्रकारने तीन प्रकारके कर्म बतलाये हैं :

---

१. स्तुति० ९ । १९-२२
२. वही, १३।३५

१. शुक्लकर्म—सुखदायक पुण्यकर्म
२. कृष्णकर्म —दु:खदायक पापकर्म
३. मिश्रितकर्म—पुण्य और पाप दोनों ही से सम्बद्धकर्म

कुसुमांजलिकारने भी इन कर्मोंका निर्देश किया है :

प्राक्चेन्मया विहितमाविलमेव कर्म स्वामिन् कुतस्त्वयि ममैष दृढ़ोऽनुरागः।
एकान्तशुक्लमथ चेदतिदु:सहोऽयं शोकानलो हृदयदाहकरः किमन्तः ॥
क्वाप्यन्यजन्मनि विधाय विभोरवश्यमाराधनामनुशयालु मनो ममाभूत्।
नो चेत् कथं कुलगुणादिपवित्रमेतत्सर्वं नृजन्म मम निष्फलमेव जातम् ॥[1]

पातंजलयोगदर्शनके अतिरिक्त कविने अपने दार्शनिक भावोंके विश्लेषणहेतु सांख्यकारिका या सांख्यतत्त्वकौमुदीसे भी कुछ सूत्रोंको ग्रहण किया है। सांख्यसिद्धान्तमें प्रकृति और पुरुष दो तत्त्वोंको मुख्यरूपसे माना गया है। स्तुतिकुसुमांजलिकारने भी स्थान-स्थानपर पुरुष और प्रकृतिका निरूपण किया है। सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणोंका भी सुन्दर निर्देश हमें स्तुतिकुसुमांजलिमें प्राप्त होता है। सांख्यसिद्धान्तमें सत्त्वगुणको लघु और प्रकाश, रजस्को प्रवृत्तिशील और उत्तेजक एवं तमस्को गुरु और अवरोधक माना गया है।[2] यही स्थिति हमें स्तुतिकुसुमांजलिमें भी तीनों गुणोंके प्रसंगमें उपलब्ध होती है।

सांख्यसिद्धान्तमें पुरुषका स्वरूप प्रतिपादित करते हुए लिखा है :

त्रिगुणमविवेकि विषमं सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानम् तद्विपरीतस्तथा च पुमान् ॥[3]

स्पष्ट है कि उक्त कारिकामें पुरुषको निर्गुण कहा गया है। स्तुतिकुसुमांजलिमें भी शंकरको निर्गुण बतलाया गया है। अतः ऐसा अवगत होता है कि स्तुतिकुसुमांजलिकारने शिवके उक्त प्ररूपणमें सांख्यतत्त्वकौमुदीसे प्रेरणा ग्रहणकी होगी। स्तुतिकुसुमांजलिका पद्य निम्न प्रकार है :

---

१. स्तुति० ११।३०-३१
२. सांख्यतत्त्व० १३
३. वही, ११

त्वं निर्गुणः शिव तथाहमथ त्वदीयं
शून्यं परं किमपि धाम तथा मदीयम् ।
त्वं चेद् गवि प्रविदधासि घृतिं तथाहं
कष्टं शिवस्त्वमशिवस्तु विधिक्षतोऽहम् ॥[१]

स्तुतिकुसुमांजलिमें उक्त ग्रन्थोंके अतिरिक्त ज्योतिष और नीति-वैराग्य सम्बन्धी ग्रन्थोंसे भी बीजसूत्र ग्रहण किये गये हैं। संसार, शरीर एवं ऐश्वर्य आदिकी अस्थिरताका निरूपण भर्तृहरिके वैराग्य और नीतिशतकके तुल्य है।

चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण सम्बंधी जो मान्यताएँ ज्योतिष ग्रन्थोंमें आती हैं, उन मान्यताओंका प्रतिफलन स्तुतिकुसुमांजलिके एकाध पद्यमें भी पाया जाता है। कवि जगद्धरभट्टने चन्द्रग्रहणका निर्देश निम्न प्रकार किया है :

स्वर्भानुगीर्णमिव पूर्णशशांकबिम्बं
बालांगनांगमिव दारुणरुग्विरुग्णम् ।
श्रीखण्डचन्दनमिवाजगरोपगूढं
व्यूढं नृपस्य पिशुनैरिव पादमूलम् ॥[२]

उपर्युक्त विवेचनोंसे स्पष्ट है कि स्तुतिकुसुमांजलिकारने ऋग्वेद, रामायण, महाभारत, पुराण, स्तोत्र, पातंजलयोगसूत्र, सांख्यतत्त्वकौमुदी, शिशुपालवध एवं गीतगोविन्द प्रभृति ग्रन्थोंका अध्ययनकर अपने ग्रन्थका कलेवर गठित किया है।

स्तुतिकुसुमांजलिका गठन

स्तुतिकुसुमांजलि एक प्रकारसे स्तोत्रमहाकाव्य है। इस महाकाव्यका ग्रथन कविने बड़ी कुशलतासे किया है। सर्वप्रथम कविने स्तुति-प्रस्तावनास्तोत्र रचा है। इस स्तोत्रद्वारा कविने स्तुतिसाहित्यकी विशेषताओंपर प्रकाश डाला है। यहींसे कविने स्तोत्र-साहित्यका महत्त्व और उपयोगिताका प्रतिपादन आरम्भ किया है। द्वितीय स्तोत्र नमस्कारस्तोत्र है। प्रस्तावनाके अनन्तर नमस्कारका स्थान आता है। वैदिककालसे ही भक्त आराध्यके चरणोंमें अपना आत्मनिवेदन करता है और साथही अपने

१. स्तुति० ११।९३
२. वही, ११।९८

नमस्कारद्वारा आराध्यका महत्त्व प्रकट करता है। कवि जगद्धरभट्टकी प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने उक्तिवैचित्र्यद्वारा अपने भावोंका निवेदन अत्यन्त निपुणतापूर्वक किया है। भारतीय काव्यकी प्रमुख प्रवृत्तियोंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि इस वाङ्मयमें मूलतः चार प्रवृत्तियाँ आद्यन्त अनस्यूत हैं :

१. प्रशस्तिमूलक प्रवृत्ति

वीरता, दानशीलता एवं गौरवगाथाका चित्रण काव्यात्मक परिवेशमें किया जाता हैं तथा उक्तिवैचित्र्य एवं अलंकार-नियोजनद्वारा हृदय-तत्त्वको अभिव्यंजित किया जाता है।

२. भक्तिभावना

भारतीय वाङ्मयमें वैदिककालसे ही भक्तितत्त्व समाविष्ट है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि असीम शक्तिके प्रति आस्था या श्रद्धाका विकास होता है और उससे व्यक्ति अपना हित-साधन करना चाहता है। यही कारण है कि जनमानसमें भक्तिका स्रोत सदा से वर्त्तमान चला आ रहा है।

३. योग और ज्ञानका समन्वय

भारतीय वाङ्मयकी तीसरी प्रवृत्ति योग और ज्ञानके समन्वयकी है। आत्मोत्थान या आध्यात्मिक विकासकेलिए ज्ञान और योगका मार्ग आवश्यक है। अतएव साहित्यकार अपनी भावग्राहकतासे प्रेरित हो ज्ञान और योगकी रचनाएँ प्रस्तुत करता है। वैदिक-ऋचाओंके अतिरिक्त महाकाव्य-काल और पौराणिक युगमें ज्ञानयोगका विकास विशेष रूपसे हुआ। गीताका कर्मयोग भी उक्त प्रवृत्तिका ही फलित रूप है। अतएव प्रवृत्तिकी दृष्टिसे ज्ञानयोगके मिश्रणकी यह अनूठी प्रवृत्ति भारतीय वाङ्मयमें अनादिकालसे चली आ रही है। यह सत्य है कि योगका विकास पातंजलयोगसूत्रसे होता है। उसके पूर्व योगसम्बन्धी क्रियाएँ व्यावहारिक जीवनमें भले ही प्रवृत्त रही हों, पर स्वतन्त्र वाङ्मयके रूपमें उपलब्ध नहीं होतीं।

४. प्रेम और शृंगारकी प्रवृत्ति

प्रेम और शृंगार मानवजीवनके इतने अधिक प्रिय रहे हैं कि आराध्योंके स्वरूपोंमें भी इनका समावेश हुआ है। त्रिदेवकी शक्तियोंकी कल्पना, उनकी

पत्नियोंके रूप एवं उनकी विविध क्रीडाओंका वर्णन शृंगार एवं प्रेमका ही फल है। श्रीमद्भागवत जैसा अनूठा ग्रन्थ प्रेम और शृंगारके धरातलपर ही निर्मित हुआ है। महाकाव्य, नाटक एवं गीतिकाव्य आदिका मूलाधार यही प्रेम और शृंगार है। लक्षण-ग्रन्थोंका निर्माण लक्ष्य-ग्रन्थोंको देखकर किया जाता है। लक्षण-ग्रन्थोंमें उत्तमकाव्यके जितने उदाहरण संकलित हैं वे सभी शृंगार एवं प्रेमसे सम्बद्ध हैं। अतएव प्रेम और शृंगारकी प्रवृत्ति स्वभावत: भारतीय वाङ्मयमें पायी जाती है।

कवि जगद्धरभट्टने अपनी इस स्तुतिकुसुमांजलिमें भारतीय वाङ्मय की उक्त चारो प्रवृत्तियोंका समावेश किया है। उन्होंने नमस्कारस्तोत्रके अनन्तर आशीर्वादस्तोत्रका संकलन इसी आशयसे किया है कि शंकरके आशीर्वादसे लौकिक अभ्युदयोंके साथ जीवनका यथार्थ उपयोग सम्पन्न हो सके। चौथा मंगलाष्टकस्तोत्र है जिसमें मंगलकी कामनाका अंकन हैं। नमस्कारके पश्चात् आशीर्वाद उपलब्ध होता है और यह आशीर्वाद मंगलरूप माना जाता है। अत: स्तोत्र-संकलनका क्रम वैज्ञानिक है।

चतुर्थस्तोत्रके अनन्तर कविकाव्यप्रशंसास्तोत्र है। यह स्तोत्र एक प्रकारसे पंचस्तोत्रकी अन्तिम कड़ी है। ऐसा अनुमान होता है कि आरम्भमें कवि पंचस्तोत्र ही लिखना चाहता था, अत: अन्तिमस्तोत्रके रूपमें कविकाव्य-प्रशंसाको निबद्ध किया गया है। जब कविका विचार और स्तोत्र निबद्ध करनेका हुआ, तब यह स्तोत्र कविप्रशंसाके रूपमें बीचमें आकर अपना वैयर्थ्य सिद्ध करने लगा। इस स्तोत्रको किसी भी स्तोत्रग्रन्थका अन्तिम स्तोत्र होना चाहिये था, पर इसका मध्यमें आ जाना यह सिद्ध करता है कि पंचस्तोत्ररूप कविका पृथक् ग्रन्थ होना चाहिये जो प्रस्तुत स्तुतिकुसुमांजलिका एक अंग होगा।

हराष्टक, सेवाभिनन्दन, शरणाश्रयण, कृपणाक्रन्दन, करुणाक्रन्दन, दीनाक्रन्दन, तम:शमन और प्रभुप्रसादन स्तोत्र सुनिश्चित रूपरेखाके अनुसार निर्मित हुए हैं। सेवाभिनन्दनके पश्चात् शरणाश्रयण किया जाता है और आश्रयकी कृपा चाही जाती है। कृपाप्राप्तिके दो साधन हैं—कृपणाक्रन्दन और करुणाक्रन्दन। इन दोनों साधनोंका अवलम्बन करनेसे ही कृपाकी प्राप्ति होती है। जब कृपा उपलब्ध होती है तब तम:का शमन होता है और प्रभुप्रसाद प्राप्तकर भक्त निहाल हो जाता है। अत: षष्ठ स्तोत्रसे त्रयोदश स्तोत्रतकका क्रम बुद्धिसंगत और वैज्ञानिक है।

स्तुतिकुसुमांजलिका चतुर्दश स्तोत्र हितस्तोत्र है। हितप्राप्तिके तीन साधन हैं—करुणासाधन, उपदेशप्राप्ति एवं भक्ति। यही कारण है कि हितस्तोत्रके पश्चात् उक्तस्तोत्रोंका सम्पादन सम्पन्न हुआ है। अष्टादश स्तोत्र सिद्धिस्तोत्र है और सिद्धि कार्यके अन्तमें मिलती है। जिस प्रकार महाकाव्यमें फलकी उपलब्धि अन्तमें होती है, उसी प्रकार स्तोत्रमें सिद्धिकी प्राप्ति स्तुतिके अन्तमें आती है। यदि स्तुतिकुसुमांजलिको हम स्तुतिमहा-काव्य मानें तो मध्यमें सिद्धिस्तोत्रका आना उचित नहीं हैं। क्रमानुसार इस स्तोत्रको अन्तमें आना चाहिए। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इन स्तोत्रोंकी रचना किसी एक समयमें नहीं हुई है। ये विभिन्न समयों एवं परिस्थतियोंमें रचे गये हैं। इनका संकलन स्वयं कविने किया होता तो सिद्धिस्तोत्र मध्यमें नहीं आता।

यहाँ एक यह तर्क भी उपस्थित किया जा सकता है कि आदि, मध्य और अन्तमें मंगल निबद्ध होना चाहिए। स्तुतिकाव्यकी दृष्टिसे सिद्धि भी एक मंगल है। पर इस मंगलका समावेश यदि मध्यमें करना था तो उन्नीसवें स्तोत्रके रूपमें करना अधिक उपयुक्त था, पर इसकी संख्या अष्टादश है।

भगवद्वर्णन और हसितवर्णन दोनों ही स्तोत्र क्रमानुसार हैं। भगवान्के सामान्य रूप-निर्धारणके अनन्तर ही उनके हास्यका वर्णन सम्भव हो सकता है। कविका यह क्रम उचित है। इक्कीसवाँ अर्द्धनारीश्वरस्तोत्र भी क्रमानुसार सिद्ध होता है। शंकरके अनेक रूपोंमें अर्द्धनारीश्वररूप शृंगारमूलक है। हास्य-शृंगारका पोषक होता है। अत: ग्रथनकी दृष्टिसे उन्नीस, बीस और इक्कीस ये तीनों ही स्तोत्र क्रमरूपमें संकलित किये गये हैं। बाइसवें स्तोत्रसे तीसवें स्तोत्र तक यमक शैलीमें निबद्ध स्तोत्र हैं। शैलीकी दृष्टिसे ये सभी स्तोत्र एकसे हैं। यमकके विभिन्न रूपों और भेदोंका संयोजन इन स्तोत्रोंमें किया गया है। अत: स्थापत्यके अनुसार ये सभी स्तोत्र क्रमरूपमें निबद्ध हैं। नतोपदेश, शरणागतोद्धरण, कर्णपूर, अशवर्ण्य एवं ईश्वर-प्रशंसा स्तोत्र भी विषयानुसार क्रमापेक्षित हैं। अन्तके स्तुतिफलप्राप्ति, स्तुतिप्रशंसा और पुण्यपरिणाम स्तोत्रभी क्रमानुसार हैं, यत: फल-प्राप्तिके पश्चात् प्रशंसा और पुण्यपरिणतिकी प्राप्ति होती है। स्तवन करते-करते जब स्तोताकी आत्मा पावन बन जाती है, तो उसे अक्षय पुण्यलाभ होता है। इस पुण्यलाभका वर्णन ही अन्तिम स्तोत्रमें किया गया है। इस

प्रकार स्तुतिकुसुमांजलिमें संकलित अड़तीस स्तोत्र हारावलिमें पिरोये गये मोतियोंके समान निबद्ध किये गये हैं।

भावनाकी दृष्टिसे प्रस्तुत स्तुतिकुसुमांजलिका अत्यधिक महत्त्व है। इस स्तुतिकाव्यमें शब्दचमत्कार, अन्योक्ति, व्यंग्य और गीतितत्त्वके साथ निम्नांकित भावनाएँ समाहित हैं जिनके कारण इसका महत्त्व अनल्प है।

१. कविने शैवदर्शनके दार्शनिक सिद्धान्तोंका समावेश बड़ी निपुणताके साथ किया हैं। क्लेश और पाशका विवेचन बहुत ही सुन्दर रूपमें हुआ है। जिस प्रकार पुष्प और फल वृक्षसे भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार शिवसे उत्पन्न यह जगत् भी भिन्न नही है।

२. काव्यभावना, रस, भाव, अलंकारयोजना एवं व्यंग्यकी दृष्टिसे यह स्तुतिकाव्य महत्त्वपूर्ण है। इसमें काव्यत्वका समावेश दूधमें घृतके समान, एवं तिलमें तैलके समान है।

३. गेयता काव्यसे भिन्न नहीं है। इस स्तुतिकाव्यमें गीतगोविन्दसे उक्त तत्त्वको ग्रहणकर कविने अपूर्व माधुर्यका समावेश किया है।

४. शंकरकी विविध लीलाओं और क्रीडाओंको स्तुतिरूपमें निबद्ध कर आराध्यकी पौराणिक प्रशस्ति अंकित की गयी है।

स्तुतिकुसुमांजलि और उसका स्तुतिसाहित्यमें स्थान

स्तुतिकुसुमांजलिका समस्त स्तुतिसाहित्यमें महनीय स्थान है। रस, भाव एवं भाषाचमत्कार आदि समस्त दृष्टियोंसे यह स्तुतिकाव्य अनुपम है। इसमें आद्यन्त भगवान् शंकरका स्तवन किया गया है। स्तुतिकुसुमांजलि भक्तिकी स्रोतस्विनी है। निस्सन्देह करुणरसका इतना सुन्दर परिपाक अन्य किसी काव्यमें उपलब्ध नहीं होता। अलंकारोंका नियोजन बड़ी ही प्रवीणता और लालित्यके साथ किया गया है। त्रिकदर्शनके सिद्धान्तका वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर रूपमें उपस्थित होता है। सहृदयजन स्तुतिकुसुमांजलि की स्तुतियोंपर मुग्ध हैं। पढ़ते ही हृदय द्रवित हो जाता है और भक्तिकी निर्झरिणी प्रवाहित होने लगती है।

यमक और श्लेष अलंकारोंका संयोजन बड़ी ही मार्मिकताके साथ किया गया है। विशेषता इस बातमें है कि कविने भावोंके सौन्दर्यको त्रुटित होने नहीं दिया है :

काव्यं विभाव्य निजमर्धनिमीलितानि
नैसर्गिकं जहति चापलमीक्षणानि ।
गृह्णन्ति तन्मसृणतां सहजां विहाय
भ्रूवल्लयस्तु कृतिनां कविपुंगवानाम् ॥स्तुति० ५।१४

स्पष्ट है कि कवि स्वयं अपने काव्यसे चमत्कृत है। उसका विश्वास है कि उसके इस स्तुतिकाव्यमें रागात्मिका प्रवृत्ति इतनी अधिक समाहित है कि प्रत्येक शब्द भक्तिभाव और रागसे परिपूर्ण होकर साकार रूपमें रस प्रवाहित करने लगता है।

भगवान् स्तुतिप्रिय हैं। वे सहृदय भक्तोंद्वारा की गयी स्तुतिको बड़े प्रेमसे सुनते हैं। स्तुतिमें भगवान्को प्रसन्नकर अपनी ओर आकृष्ट करनेकी अद्भुत क्षमता रहती है। असह्य वेदना या विपत्तिमें पड़े हुए प्राणीकेलिए कष्टसे सद्यःमुक्ति प्राप्त करनेमें स्तुति जादूका सा काम करती है। जगत्में सत्पुरुषोंके ऊपर जब उग्र आपत्ति आती है तो वे उससे मुक्त होनेकेलिए परमेश्वरकी स्तुतिका अवलम्बन ग्रहण करते हैं। स्तुतिकुसुमांजलिमें इसी तथ्यकी अभिव्यंजना बहुत ही सुन्दर रूपमें प्रस्तुत की गयी है:

मणिः सुसूक्ष्मोऽपि तथोल्लबणं विषं कृशोऽपि वह्निः सुमहद्यथा तृणम् ।
शिशुर्मृगेन्द्रोऽपि यथा गजव्रजं तनुः प्रदीपोऽपि यथा तमोभरम् ॥
यथाल्पमप्यौषधमुन्मदं गदं यथामृतं स्तोकमपि क्षयाद्भयम् ।
ध्रुवं तथैवाणुरपि स्तवः प्रभोः क्षणादघं दीर्घमपि व्यपोहति ॥[1]

स्तोताने एक साथ अनेक उपमानोंका प्रयोगकर स्तुतिकी महत्ता प्रतिपादित की है। वास्तवमें कवि भवाटवीसे मुक्ति प्राप्त करनेका एक मात्र उपाय शिवको ही सिद्ध करता है। वह कहता है :

निदाघनिर्दग्धमहामरुभ्रमक्लमच्छिदो मार्गमहीरुहादपि ।
कलिन्दकन्यासलिलौघसंगतत्रिमार्गगाम्भोभरसम्प्लवादपि ॥
सरस्वतीसौभगसारसम्भृतप्रसन्नगम्भीरपदक्रमादपि ।
कुरंगनाभीघनकुंकुमांकितस्तनांगनालिंगनविभ्रमादपि ॥[2]

---

१. स्तुति० ७।९-१०
२. वही, ७।२०-२१

वाणीकी सफलता भगवान्के गुणस्तवनमें है। जो कवि क्षुद्र पुरुषोंकी स्तुति कर अपनी वाणीका दुरुपयोग करता है, वह जगत्में वन्दनीय नहीं होता, उसकी वाणी जगत्में मलिन हो जाती है। माँ शारदा भी उसके ऐसे घृणित कार्यसे दुःखित एवं लज्जित हो जाती है। वाणी कामधेनु अथवा कल्पलताके समान कामदुहा है। महान् पुण्यके उदयसे यह प्राप्त होती है। जो स्तोता आराध्यके चरणोंमें अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है और अपनी वाणीका प्रयोग इनके गुणानुवादमें करता है, वह अलभ्य एवं दुःसाध्य पदार्थोंको भी प्राप्त कर लेता है :

अस्थाने गमिता लयं हतधियां वाग्देवता कल्पते
धिक्काराय पराभवाय महते तापाय पापाय वा।
स्थाने तु व्ययिता सतां प्रभवति प्रख्यातये भूतये
चेतोनिर्वृतये परोपकृतये प्रान्ते शिवावाप्तये ॥ स्तुति० ५।३५

अर्थात् धनलोभी कवि जो साधारण व्यक्तियोंकी स्तुति करते हैं, वे कुकवि हैं, उन्हें धिक्कार है, पर जो अपनी भूलोंकेलिए आन्तरिक पश्चात्ताप करते हैं और ईश्वर-चरणारविन्दमें अपने भावुक हृदयको वाणी द्वारा समर्पित कर देते हैं, वे कवि आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिरूप मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं।

स्तुतिकुसुमांजलिकी समस्त स्तुतियाँ इतनी सरस और आनन्दपूर्ण हैं कि भक्तहृदय उन स्तुतियोंमें तन्मय हो जाता है:

स्वैरेव यद्यपि गतोऽहमधः कुकृत्यैस्तत्रापि नाथ तव नास्म्यवलेपपात्रम्।
दृप्तः पशुः पतति यः स्वयमन्धकूपे नोपेक्षते तमपि कारुणिको हि लोकः ॥[1]

प्रस्तुत पद्यमें कविने भगवान्की असीम करुणाकी ओर संकेत किया है। उदाहरणके रूपमें दृप्त पशुको उपस्थित कर अपने अहंकार और ममकारको भी उद्घाटित कर दिया है। वास्तवमें भगवान्की करुणाबुद्धि इतनी अधिक है कि वे भक्तकी उपेक्षा नहीं कर सकते। स्तुतिकुसुमांजलिमें कविने उक्त प्रकारके भाव-सुमनोंसे गुम्फित स्तुतिरूप गुच्छोंको निबद्ध किया है।

कवि सांसारिक विषयों और स्तवनजन्य आनन्दका विवेचन करता हुआ कहता है:

---

१. स्तुति० ११।३८

तुहिनवाहिनवानिलजे मनः सहसि रंहसि रंजयति प्रिया ।
न रसिकोरसि कोष्णकुचा तथा तव गुणानुगुणा नुतिगीर्यथा ॥[1]

अर्थात् हे परमेश्वर ! गुणोंमें अनुराग रखनेवाली आपकी स्तुति-गीति जितना हृदयको आनन्दित करती है, उतना हेमन्त ऋतुमें शीतल पवनके चलते समय उष्ण कुचोंवाली प्रिया उल्लासपूर्वक छातीसे लगकर भी आनन्दित नहीं कर पाती।

स्तोता बड़े ही विश्वास और श्रद्धाके साथ स्तुतिजन्य आनन्दको विषय-जन्य आनन्दसे अनन्तगुणा अधिक मानता है ।

एक स्थानपर स्तोताने शिवको अपनी मतिका प्रियतम कहा है। मतिरूपी नायिका गुणवती होनेपर भी महेशरूपी प्रियतमके हृदयमें स्थान न प्राप्त कर सकी, अतः विरहसे व्याकुल होकर कामदेवके नाना अत्याचारोंको सहन कर रही है । कविका यह सन्दर्भ किसी भी महाकाव्यके किसी भी सन्दर्भसे कम नहीं है । यहाँ केवल रूपक अलंकारकी योजना ही नहीं है अपितु हृदयके भावोंका अभिव्यक्तीकरण काव्यके परिप्रेक्ष्यमें सरस-रूपमें सम्पन्न हुआ है । हमारा अनुमान है कि ऐसे सरस उदाहरण महा-काव्योंमें भी खोजनेपर ही मिलेंगे ।

संक्षेपमें स्तुतिकुसुमांजलिने संस्कृत स्तुतिकाव्यको एक नया मोड़ दिया है । शैव स्तोत्रोंमें इस स्तुतिकाव्यने यमकके चमत्कारका समर्थन तो किया ही है, साथ ही रसके विशाल भंडारका उद्घाटन भी कर दिया है । भक्ति-रसका जैसा समुद्र इस स्तुतिकाव्यकी ३८ स्तुतियोंमें निबद्ध १४२५ पद्योंमें है, वैसा अन्यत्र नहीं पाया जाता ।

---

१. स्तुति० २७।२५

तृतीय अध्याय

स्तुतिकुसुमांजलिमें वर्णित शिव तथा पार्वती

'शिव' शब्दकी व्युत्पत्ति और उसका देवत्व-विकास

√शीङ् धातुसे वन् प्रत्यय करके √शीङ् धातुको ह्रस्व कर देनेपर 'शेतेऽस्मिन् सर्वमिति शिवः' निष्पन्न होता हैं। शिवकी दूसरी व्युत्पत्तियाँ भी उपलब्ध होती हैं—शिवं कल्याणं विद्यतेऽस्य शिवः, श्यति अशुभमिति शिवः, शेरते अवतिष्ठन्ते अणिमादयो अष्ट गुणाः अस्मिन् इति शिवः। इस प्रकार उक्त व्युत्पत्तियोंके आधारपर जिनमें समस्त मंगल विद्यमान हैं, वे शिव हैं, अथवा जो अशुभका निरसन करते हैं, वे शिव हैं या जिनमें अणिमादि अष्ट-ऐश्वर्य अवस्थित हैं, वे शिव हैं। इस प्रकार 'शिव' शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ मंगलकारक, कल्याणदायक या अशुभविनाशक है। शिव ऐसे देवता हैं जो जगत्‌का सभी प्रकारसे मंगल करते हैं।

शिवका यह देवत्व किस प्रकार विकसित हुआ यह भी एक मनोरंजक विषय है। रामायणके पहले शिवका पौराणिक रूप उपलब्ध नहीं होता है। ऋग्वेदमें रुद्रके रूपमें शिवकी स्तुतिकी गयी है।[1] भण्डारकरने रुद्रको विनाशकारी शक्तियोंका प्रतीक माना है।[2] कीथने रुद्रको झंझावातके विनाशकारी रूपका ही प्रतीक माना है, हितकारी रूपका नहीं।[3] हमारा अपना विचार है कि पौराणिक शिवका विकास वैदिक रुद्रसे हुआ है। यह सत्य है कि रुद्रमें विरोधी शक्तियोंका समवाय दिखलाया गया है। वह भयावह होनेके साथ-साथ सौम्य भी है। रुद्रमें हमें दोनों प्रकारकी शक्तियाँ दिखलायी पड़ती हैं। जब वे उग्र रूप धारण करते हैं तो मनुष्य और पशुओंका संहार करते हैं और जब वे कल्याणकारी हो जाते हैं तो उनकी शक्ति जीवनदायिनी बन जाती है। सन्तान और समृद्धिकेलिए लोग रुद्रसे प्रार्थना करते हैं। उनका वर्ण

---

१. ऋग्वेद, २।३३।१-३

२. वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म, पृ० १०२-१०३

३. रिलिजन एण्ड माइथोलौजी ऑफ ऋग्वेद, पृ० १४७

बभ्रु है, पर वे कभी-कभी श्वेत और सुनहले भी दिखलायी पड़ते हैं। रुद्र को भिषजोंमें सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। यह मरुतोंके पिता हैं।[1]

ऋग्वेदमें रुद्रका रूप विभिन्न विरोधी धर्मोंके साथ उपलब्ध होता है। वे लोगोंका विनाश भी करते हैं और उनका संस्थापन भी। इनकी तीन उपाधियाँ प्राप्त होती हैं—गोघ्न, नृघ्न और क्षयद्वीर।[2] रुद्रकी एक उपाधि कपर्दिन् भी है, जिसका अर्थ है जटाजूटधारी।[3] आकाशमें उमड़-घुमड़ कर आती हुई धूमिलवर्णकी मेघमालाएँ जटाजूट जैसी प्रतीत होती हैं और उनमें जब विद्युत् चमकती है, तब रुद्रकी कपर्दिन् उपाधि सार्थक हो जाती है। ऋग्वेदमें रुद्रकी दिवोवराह,[4] कल्मलीकिन्[5] एवं भिषक्[6] आदि अनेक उपाधियाँ उपलब्ध होती हैं। दिवोवराहका अर्थ है आकाशका वराह। कृष्णवर्णके मेघोंसे निकली हुई श्वेत विद्युत् श्वेत दंष्ट्रावाले कृष्ण-वराहसे समता रखती है। कल्मलीकिन् का अर्थ है दहन करनेकी शक्तिवाला। हमारा अनुमान है कि इसी उपाधिसे त्रिपुरदाह की कल्पना प्रादुर्भूत हुई है। रुद्रको महाभिषक् इसलिए कहा जाता है कि वे व्याधिनाशक शीतगुणप्रधान ओषधियोंको उत्पन्न करते हैं। यदि ऋग्वेदकालीन रुद्रको हम आकाश मान लें तो वर्षा ऋतुमें निष्पन्न होने वाली ओषधियाँ निश्चयतः नये जीवनका संचार करने वाली मानी जा सकती हैं। ऋग्वेदके रुद्रका सम्बन्ध पेड़-पौधोंसे विशेषरूपसे है। वर्णनके अध्ययनसे ऐसा ज्ञात होता है कि रुद्र उर्वरशक्तिको बढ़ानेवाले देवता हैं। रुद्रकी एक अन्य उपाधि वृषभ भी आयी है।[7] यह शब्द √वृष् धातुसे निष्पन्न है। √वृष् धातुके दो अर्थ होते हैं—वर्षा करना और प्रजनन शक्ति-सम्पन्न करना। पौराणिक युगमें शिवके साथ जो वृषभका सम्बन्ध निष्पन्न हुआ हैं उसका मूलाधार भी रुद्रकी वृषभ उपाधि हैं। ऋग्वेदके एक अन्य मन्त्रमें रुद्रका स्तवन करते हुए सोमका भी निर्देश आया है। सोम उत्तरकालीन वैदिक साहित्यमें सन्तान-प्राप्तिकेलिए सौम्यरुद्रके रूपमें अभिहित हुए हैं। जिस प्रकार रुद्र स्वास्थ्य और बलप्रदान

---

१. ऋग्वेद, २।३३।९
२. वही, १।११४।१०
३. वही, १।११४।१
४. वही, १।११४।५
५. वही, २।३३।८
६. वही, २।३३।७
७. वही, २।३३।१३

करते हैं, उसी प्रकार सोमरस भी एक स्फूर्तिदायक ओषधि है, जो रूद्रके समान ही बल प्रदान करता है।[1]

रुद्रका एक अन्य गुण केशीके साथ विषपान करना है, जिसका वर्णन ऋग्वेदमें अंकित है।[2] यद्यपि सायणाचार्यने केशीका लाक्षणिक अर्थ ग्रहण किया है और उसका अर्थ सूर्य माना है, पर हमारा यह दृढ़ मत है कि शिवके विषपानकी कथाका प्रादुर्भाव इसी सूक्तसे सम्भव हुआ होगा।

ऋग्वेदके पश्चात् अथर्ववेदमें रुद्रका जो रूप उपलब्ध होता है, वह पर्याप्त विकसित है। अथर्ववेदमें रुद्रको पशुपति भी कहा गया है।[3] इतना ही नहीं, भूत-पिशाचादिसे रक्षणार्थ भी रुद्रका स्तवन उपलब्ध होता है। अथर्ववेदके इस वर्णनसे ऐसा ज्ञात होता है कि रुद्र वैदिक मण्डलके इन्द्र एवं अग्नि आदि बड़े-बड़े देवताओंके समान श्रेष्ठ कोटिके देवता न होकर एक ऐसे देवता थे जिनपर जनसाधारणकी आस्था थी। वे लोकप्रिय देवताके रूपमें विकसित हो रहे थे। इसी कारण अथर्ववेदमें इन्हें महादेवकी उपाधिसे विभूषित किया गया है।[4] अथर्ववेदके कुछ मन्त्रोंमें रुद्रको सहस्राक्ष माना गया है।[5] इनके पिशाचहन्ता, नीलशिखण्ड, शर्व और भव आदि नाम भी उपलब्ध होते हैं।[6] अथर्ववेदके ग्यारहवें काण्डमें रुद्रके विविध नामोंका निर्देश उपलब्ध होता है। इन नामोंके अध्ययनसे यह स्पष्ट जाना जा सकता है कि महाभारतमें शिवके जो सहस्र नाम अंकित किये गये हैं उनका बीजसूत्र यही विविध नामावलि है। सोलहवें काण्डमें शतरुद्रीय सूक्त समाविष्ट है जिसमें रुद्रके सौ नाम वर्णित हैं। इस प्रकार अथर्ववेदसे रुद्रके रूपमें शिवके विकास की एक निश्चित परम्परा उपलब्ध होती है।

ब्राह्मण ग्रन्थोंमें रुद्रका रूप पर्याप्त विकसित पाया जाता है। उनका आतंक इतना अधिक है कि सभी उनसे डरते हैं। देवता और दानव भी उनसे भयभीत दिखलाई पड़ते हैं। यद्यपि उनको पशुपति कहा गया है और

---

१. ऋग्वेद, ६।७४।१-२
२. वही, १०।१३६।१
३. अथर्व० १।३४।१
४. वही, ९।७।७
५. वही, ११।२।७
६. वही, ६।३२।२, ६।९३।१, २

पशुओंको उनके संरक्षणमें रखा गया है तो भी उनकी कल्पना पशुहन्ताके रूपमें उपलब्ध होती है। कौशीतकि ब्राह्मण में स्तोता प्रार्थना करता हुआ कहता है कि उसके पशु रुद्रके सम्पर्कमें न आवें।[1] ब्राह्मण-कालमें जब वैदिक कर्मकाण्डका विकास हुआ तो रुद्र भी विकसित होते गये और उनमें अनेक गुणधर्मोंका समवाय होता गया। अध्ययनसे ऐसा पता चलता है कि ब्राह्मण ग्रन्थोंके समय तक रुद्र वैदिक देवताओंसे पृथक् होकर अपना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके थे। जनसामान्यमें इनका प्रचार बढ़ता जा रहा था। इनकी उपासना आर्यजातिमें समृद्ध होती जा रही थी। समाजमें नीति और सदाचारकी भावनाका सम्बन्ध ऋतकी कल्पनाके साथ है। रुद्रका शक्तिशाली रूप ऋतके रूपमें परिवर्तित होता हुआ परिलक्षित होता है। रुद्रकी विभिन्न शक्तियोंके कारण सभी देवता उनसे डरते थे, इसी कारण वे देवाधिपति भी कहलाते थे।[2] ईशान और महादेव उनके साधारण नाम हो गये थे। इस प्रसंगमें ऐतरेयब्राह्मणका वह सन्दर्भ जिसमें प्रजापतिकी सरस्वतीके प्रति अगम्य गमनकी कथा वर्णित है, विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रजापतिके अपराधसे देवता क्रुद्ध हो जाते हैं और अन्तमें उनको दण्ड देनेकेलिए रुद्रको नियुक्त करते हैं।[3] इस कथासे यह व्यंजित होता है कि रुद्रकी शक्ति और नैतिक बल अन्य देवताओंकी अपेक्षा अधिक है। बताया गया है कि देवताओंने मानवमात्रके कर्मोंका अवलोकन करने और धर्मके विरुद्ध आचरण करनेवालेका विनाश करनेके उद्देश्यसे रुद्रकी सृष्टि की। रुद्रका यह नैतिक उत्कर्ष ही था जिसके कारण उनका पद ऊँचा था। कथासे यह भी ज्ञात होता है कि जब वे प्रजापतिको दण्ड दे चुके तो देवोंने पारितोषिकके रूपमें रुद्रको कुछ देना चाहा। रुद्रने विश्वकी प्रत्येक वस्तुको अपना बतलाया। नाभानेदिष्ठकी[4] कथा ऐतरेय ब्राह्मणमें आती है जिस कथासे रुद्रका विश्वपर अधिकार सिद्ध होता है। अतएव पौराणिक शिवके स्वरूप एवं उपासनाके बहुतसे अंश वैदिक रुद्रके स्वरूपसे ग्रहण किये गये हैं। शिव नाम भी वदिक रुद्रका प्रशंसासूचक है। यह नाम सर्वप्रथम यजुर्वेदके शतरुद्रीय सूक्तमें आया है। शिवके अन्य

---

१. कौशीतकि, ३।४

२. **देवयजतं रुद्रमधिपतिम्। वही,** २३।३

३. **ऐत० ब्रा०** ३।१३।९

४. **वही,** ५।२२।९

नामोंकी उत्पत्ति क्रमशः गुण और उपाधियोंके कारण हुई है। उनके तीन नेत्रोंकी कल्पनाका आधार त्र्यम्बक उपाधि है। कपर्दिन् और केशिन् उपाधियों से शिवके जटाधारी रूपकी कल्पना सम्पन्न हुई है। वैदिक रुद्रका आवास उत्तरी पर्वतोंमें आया है। आगे चलकर यही शिवके कैलाशवासके रूपमें परिवर्तित हो गया। शतरुद्रीय सूक्तमें रुद्रके धनुषका नाम पिनाक आता है। उत्तरकालमें यही नाम शिवके धनुषके लिए तो आया ही है, शिवके नामके रूपमें भी जुट गया।

ब्राह्मण-कालके पश्चात् उपनिषद्-काल आरम्भ होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद्में[1] सृष्टि-प्रक्रियाका वर्णन आता है। पुरुष या ब्रह्मद्वारा विश्वकी सृष्टि होती है। वह पुरुष या ब्रह्म अनादि है। प्रकृति जो कि पुरुषकी समीपवर्तिनी है, उसका सृष्टिके सर्जनमें सबसे अधिक योगदान रहता है। पुरुष स्वयं स्रष्टा नहीं, अपितु एकबार प्रकृतिको क्रियाशील बनाकर वह पृथक् हो जाता है और केवल प्रेक्षकके रूपमें स्थित रहता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् का यह पुरुष अन्य कोई नहीं है, रुद्र ही है जिसे शिव और ईश कहा गया है। अतएव स्पष्ट है कि श्वेताश्वतरोपनिषद्के अनुसार शिव सांख्यसिद्धान्तानुयायी लोगोंके आराध्य बन गये थे।

मैत्रायणी उपनिषद्में[2] रुद्रका तमोगुणसे और विष्णुका सत्त्वगुणसे सम्बन्ध वर्णित है। प्रश्नोपनिषद्में[3] रुद्रको परिरक्षित कहा गया है। इस प्रकार रुद्रकी उपासना उपनिषद्कालमें प्रचलित थी और वे एक शक्तिशाली देवके रूपमें मान्य थे। सूत्रकालमें धार्मिक आचार-विचारोंका विकास पूर्णतया उपलब्ध होता है। इन सूत्रोंका सम्बन्ध प्रधानतया गृहस्थकी विधियोंसे है। रुद्र अपना प्रमुख रूप धारण कर रहे थे और उनके नये नाम शिव और शंकर प्रचलित हो गये थे।[4] बताया गया है कि वृक्ष, श्मशान भूमि, पुण्यतीर्थ एवं चौराहोंपर शंकर निःशंक और निडर होकर विचरण करते थे। जनता अपने

---

१. श्वेताश्वतरोपनिषद् ४।१-११

२. मै० उप० ४।५

३. इन्द्रस्त्वं प्राणतेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता। प्रश्न० उप० २।९

४. पशुपतये शिवाय शंकराय पृषातकाय स्वाहेति।
आश्व० गृ० सू० २।२।२

अनिष्टको दूर करनेकेलिए इन भयान्वित स्थानोंमें शंकरकी आराधना करती थी। इस प्रकार रुद्रका श्मशानके साथ सम्बन्ध स्थापित हो गया।[1]

बौधायन-गृह्यसूत्रमें[2] रुद्रको विश्वव्यापी परम ब्रह्म माना गया है। आगे चलकर अन्य स्थलपर रुद्रको पुरुष और विश्वस्रष्टा कहा गया है। इस प्रकार रुद्रका दार्शनिक और जनसाधारण-सम्मत रूप प्रतिष्ठित होता गया। सूत्रग्रन्थोंमें शिवका आराधनाकी दृष्टिसे पूर्ण विकसित रूप उपलब्ध है।

सूत्र-ग्रन्थोंके पश्चात् भारतीय वाङ्मयमें पाणिनिकी अष्टाध्यायी और कौटिल्यका अर्थशास्त्र सांस्कृतिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। बौद्धोंका त्रिपिटक साहित्य भी इतिहास और संस्कृतिकी दृष्टिसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। दीघनिकायमें विष्णु और शिव दोनोंका उल्लेख आता है। पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें रुद्र और उनकी उपाधियों—भव और शर्व—का तो उल्लेख किया है, पर शिव और शंकरका निर्देश नहीं किया। रुद्र, भव और शर्व शब्दोंसे स्त्रीलिंग बनानेके नियम भी दिये गये हैं।[3] पाणिनिके समयमें शिवके विकसित स्वरूपका सबसे बड़ा प्रमाण है माहेश्वरसूत्र जो अष्टाध्यायीके ही नहीं अपितु तत्कालीन समस्त संस्कृत-व्याकरणके आधार हैं। इन सूत्रोंमें संस्कृत वर्णोंका एक विशेष क्रमसे वर्गीकरण किया गया है जिससे प्रत्येक वर्गका एक छोटा सा नाम बन जाता है जिसे प्रत्याहार कहते हैं।

पाणिनिकी अष्टाध्यायीके अनन्तर ईस्वी पूर्व चौथी शताब्दीका कौटिल्य का अर्थशास्त्र माना जाता है। इस ग्रन्थमें दुर्गोंके भीतर बने शिव और अन्य देवताओंके मन्दिरोंका स्पष्ट उल्लेख आया है।[4] रामायण और महाभारतमें शिवका पूर्ण विकास उपलब्ध होता है और यह रूप पौराणिक शिवके रूपके प्रायः समान है। रामायणमें रुद्रके साथ शिव नामका अधिक प्रचार दिखलायी पड़ता है। महादेव, शंकर, महेश्वर एवं त्र्यम्बक आदि नाम बड़े आदरके साथ व्यवहृत होने लगे थे। रामायणके एक सन्दर्भसे ज्ञात होता है कि रुद्र ऐसे देवता नहीं हैं जिनके प्रकोपसे और जिनकी भयानक वाणीसे

---

१. मानवगृह्यसूत्र, २।३।५

२. बौधायनगृह्यसूत्र १।२।७-२३

३. इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक्।
अष्टाध्यायी, ४।१।४९

४. अर्थशास्त्र, २।२०।४

सभी लोग डरते हों, अपितु वे सदा ही मानवमात्रके कल्याणमें संलग्न रहनेवाले हैं तथा उन्हें देवताओंमें सर्वोत्तम और देवोंका देव कहा गया है ।[१] अमरलोकमें भी उनकी उपासना होती है । वे देवताओंकी सहायताकेलिए स्वर्गलोकमें भी दौड़कर जाते हैं । एक सन्दर्भसे तो ऐसा ज्ञात होता है कि स्वयं विष्णु भगवान् अन्य देवोंको लेकर शंकरकी शरणमें आते हैं ।[२] रामायणमें मदन-दहनका भी प्रकरण बिलकुल पुराणके प्रकरणके समान ही है ।[३] कार्त्तिकेयके जन्मके आख्यानमें हिमवत्पुत्री उमाके साथ शंकरके विवाह होनेका वर्णन भी आया है ।[४] गंगावतरण प्रसंगमें गंगा शंकरकी जटाओंमें उलझकर रह जाती है; बहुत प्रार्थना करनेके पश्चात् वे जटाओंसे गंगाको मुक्त करते हैं ।[५]

शिवद्वारा विषपानका आख्यान भी आया है । देव और दानवोंने मिलकर समुद्रमन्थन किया । समुद्रमेंसे निकले हुए हालाहलका शंकरने पान कर लिया, जिससे उनका कण्ठ नीला हो गया ।[६] रामायणमें शिवधनुषका वर्णन भी विस्तारपूर्वक आया है ।[७] विश्वामित्र शिवकी पूजा सम्पन्न करते हैं ।[८] कुबेरभी शिवकी पूजा करता है ।[९] इस प्रकार रामायणमें शकरका पर्याप्त विकसित रूप उपलब्ध होता है ।

महाभारतमें शिवके चार मुखोंका वर्णन आया है ।[१०] ये चारो मुख चारो दिशाओंकी ओर हैं । महाभारतमें अर्जुनकी तपस्याका आख्यान भी आता है । शिव किरातरूप धारणकर अर्जुनकी परीक्षा करते हैं और

---

१. देवदेव महादेव लोकस्यास्य हिते रत ।
   सुराणां प्रणिपातेन प्रसादं कर्तुमर्हसि ।। बाल० ३६।९
२. वही, ४५।२०-२२
३. वही, २३।११-१२
४. वही, ३६।५-७
५. वही, ४३।९-११
६. वही, ४५।२५-२६
७. वही, ६६।८-१४, ७५।११-१२
८. वही, ५५।१२-१३
९. उत्तर० १३।२१-३१
१०. आदि० २००। ८४-८५

उसकी वीरतासे प्रसन्न होकर अस्त्र प्रदान करते हैं।[1] गंगावतरण,[2] स्कन्दजन्म,[3] कृष्णद्वारा शिवकी स्तुति,[4] त्रिपुरदाह,[5] दक्षयज्ञविध्वंस,[6] अश्वत्थामाद्वारा शिवके काल्पनिक रूपकी आराधना,[7] शिवके तृतीय नेत्र का महत्त्व[8] एवं कापालिक शिवका स्वरूप[9] विस्तारपूर्वक महाभारतमें आया है। महाभारतके शिव अत्यन्त प्रभावशाली, सर्वशक्तिमान् और देवाधिदेवके रूपमें चित्रित हैं। काव्यग्रन्थोंमेंसे बुद्ध चरित,[10] सौन्दरनन्द,[11] मृच्छकटिक,[12] नाट्यशास्त्र,[13] मालविकाग्निमित्र,[14] मनुस्मृति,[15] विक्रमोर्वशीय,[16] अभिज्ञानशाकुन्तल[17] मेघदूत[18] और रघुवंश[19] आदि ग्रन्थोंमें शिवके महत्त्व, शक्ति एवं गुणोंका विवेचन पाया जाता है। अग्निपुराणमें स्त्रीरूप विष्णुपर शिवके मुग्ध होने तथा गणेश, रुद्र एवं चण्ड आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है।

---

१. वन० ३५।२
२. वही. ८५।२२-२५, ८६।२-१०
३. वही, १८३।५-५६, १८४।१-१८
४. द्रोण० १६९।२९-३२
५. कर्ण० २४।५८-७३
६. सौप्तिक० १८।१-२३
७. वही, ६।३२-३३, ७।२-१०
८. अनुशासन० ११२।२६-३४
९. वही, १४।५-१८
१०. बुद्ध० १।८८
११. सौन्दर० १०।९
१२. मृच्छ० १०।४५
१३. नाट्य० १।४५
१४. माल० १।१
१५. मनु० ३।१५२, ४।३९,१३०,१५३
१६. विक्रम० १।१
१७. शाकु० १।१
१८. पूर्वमेघ० ३४-३६
१९. वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥ रघु० १।१

पुराणकालमें शिवकी अनेक लीलाओंका वर्णन आता है । शिव पर्वत-वासी हैं, उसी कारण वे गिरिश कहलाते हैं । उनका वर्ण कर्पूरधवल है। हिमगिरिके कैलाशशृंगपर रजतगिरिनिभ कर्पूरगौर महादेव पद्मासन लगाकर बैठते हैं । बायीं ओर गिरिजा सुशोभित होती हैं । वे पिनाकपाणि और त्रिशूलधारी हैं । डमरू और कपालभी उनके हाथमें शोभा प्राप्त करते हैं। परशुको उनका आयुध बताया गया है। वे जटाजूटधारी, वृषवाहन, वृषध्वज और नीलकण्ठ कहलाते हैं । भुजंगमाला ही उनके अंगप्रत्यंगका आभूषण है । पुराणमें शिवलीलाके अनेक रूप आये हैं ।

शिवका एक नाम कपाली है । इस नामके साथ शिवकी एक लीला संश्लिष्ट है । वामनपुराणमें आता है कि पूर्वकालमें समस्त जगत् के एकार्णवमें जलमग्न हो जानेके कारण स्थावर, जंगम, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, अनल एवं अनिल आदि समस्त पदार्थ नष्ट हो गये थे । उस समय सभी कुछ अप्रतर्क्य और अज्ञेय था । वृक्षलतादि समस्त वस्तुएँ जलमें मग्न हो गयी थीं । क्षीरसमुद्रशायी भगवान् एक सहस्र प्रमित दिव्य वर्ष प्रमाण जलमें निद्रित थे । निद्रा टूटनेपर उन्होंने रजोगुणसे पंचवदन ब्रह्माकी और तमोगुणसे पंचवदन शंकरकी सृष्टि की । कपर्दीने उत्पन्न होते ही अक्षमाला लेकर योग धारण किया । शंकरने योगप्रभावको देखकर अवगत किया कि इस प्रकार सृष्टिका कार्य नहीं हो सकता। अब प्रश्न इस समस्याके समाधानका था, अत: उन्होंने अहंकारका सृजनकर समस्याका समाधान करना चाहा । ब्रह्मा और शकर दोनों ही अहंकारके अधीन हुए और अपने अपनेको शक्ति-शाली मानने लगे । दोनोंमें भीषण कलह उपस्थित हुआ । शंकरने अपने नखने ब्रह्माका एक मस्तक काट डाला । तभीसे ब्रह्मा चतुर्मुख हुए तथा छिन्न-मस्तक शंकरके करतलमें संलग्न हो गया । इसी समयसे महादेव कपालीके नामसे प्रसिद्ध हुए । जब ब्रह्महत्याके पापके कारण शंकरका तेज घटने लगा, तब उसके पापसे मुक्ति प्राप्त करनेकेलिए महादेवने अनेक तीर्थोंकी यात्रा की । कहीं भी वह नरकपाल उनके हाथसे नहीं गिरा । क्योंकि ब्रह्महत्यासे मुक्ति प्राप्त की जानकारीका आधार करतलसे उस कपालका अलग हो जाना ही था, पर तीर्थयात्राके प्रभावसे भी उस कपालसे उन्हें मुक्ति न मिल सकी । जब उन्होंने सर्वतीर्थाग्रगण्य ह्रदमें स्नान किया, तो स्नान करते ही कपाल उनके हाथसे नीचे गिर गया । यह स्थान कपालमोचन नामसे प्रसिद्ध है ।

दक्षयज्ञविनाश शिवलीलाकी एक जगत्प्रसिद्ध कथा है। इस कथामें बताया गया है कि दक्षप्रजापतिकी कन्या सतीके साथ शिवका विवाह हुआ। किसी समय दक्षप्रजापतिने एक यज्ञ करना आरम्भ किया। उस यज्ञमें शिवको छोड़ सभी देवता एवं ऋषि आदि निमंत्रित किये गये। दक्ष प्रजापति अनेक कारणोंसे शिवके प्रति असंतुष्ट थे। दक्षके असन्तोषके भिन्न-भिन्न पुराणोंमें भिन्न-भिन्न कारण वर्णित हैं। शिव-पत्नी सती इस यज्ञमें विना निमन्त्रणके ही सम्मिलित हुई। प्रजापति अपनी कन्याके समक्ष ही शिवके प्रति अवमानना-सूचक कटुवचन कहने लगे। इसपर पतिप्राणा सतीको मर्मान्त वेदना हुई और उसने उसी समय प्राणत्याग कर दिया। सतीके देहत्यागका संवाद कैलाशतक पहुँच गया। महादेवके हृदयमें क्रोध धधकने लगा। वे एक क्षण भी ठहर न सके और भूत-प्रेत आदि प्रमथोंके साथ दक्षालयको चल दिये। वहाँ पहुँचकर सहस्रों शिवगणोंने दक्षके यज्ञका विध्वंस किया और यज्ञमें आये हुए देवता एवं ऋषिगणोंपर घोर अत्याचार किया। यज्ञस्थलमें भीषण युद्ध हुआ। पिनाकपाणि महादेवने दक्षको सभी प्रकारसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। आशुतोषने स्तवसे संन्तुष्ट हो क्षतिग्रस्त देवताओंकी हानिको दूर किया। युद्धक्षेत्रमें जिसका जो अंग बेकार हो गया था अथवा जो अंग बेडौल दिखलायी पड़ने लगा था उसे ठीक नये रूपमें प्रादुर्भूत किया, जिससे ऋषि-मुनियोंको त्राण मिला।

पौराणिक मान्यताओंके अनुसार शंकर देवताओंके प्रधान चिकित्सक हैं। अस्त्र-विद्या और भैषज्य-विद्याके वे आचार्य हैं। जहाँ उनमें जगत्‌को ध्वस्त करनेकी क्षमता और शक्तियाँ निहित हैं वहाँ संसारको अपनी महनीय शक्तियोंसे सुख और त्राण पहुँचानेकी योग्यता भी उनमें वर्त्तमान है।

पुराणोंमें सती-वियोग की कथा आती है। इस कथासे शंकरके प्रेमी हृदयका पूरा परिचय प्राप्त होता है। सती-विरहसे वे उन्मत्त हो गये और सतीके मृत शरीरको अपने कन्धेपर रखकर विचरण करने लगे। उनका यह रूप बहुत ही विलक्षण रूपसे चित्रित है। कभी वे उन्मत्तकी तरह ताण्डव नृत्य करते हैं तो कभी उदासीन हो परिभ्रमण करने लगते हैं। उनके हृदय की द्वन्द्वावस्थाका चित्रण पुराणोंमें महाकाव्योंके समान ही हुआ है। शंकरको इस व्यामोहसे छुटकारा दिलानेकेलिए विष्णुने एक युक्ति सोची। उन्होंने शंकरके स्कन्धपर आसीन सतीके मृत शरीरको सुदर्शनचक्रसे काटना आरम्भ किया। सतीका एक-एक अंग पृथक्-पृथक् स्थानोंपर गिरा। जहाँ-जहाँ

सती-देहका अंग गिरा था, वहाँ वहाँ तीर्थभूमियाँ वन गयीं। सतीके देह-त्यागके पश्चात् शंकरने एक निर्जन वनमें प्रवेश किया और वहाँ वे घोर तपश्चरण करने लगे। वे समाधिमें लीन हो गये तथा उन्हें तन-बदनकी सुध न रही। कुछ समय पूर्व जो शिव सतीके विरहसे उत्पन्न दुःखकी ज्वालामें भस्म हो रहे थे वही शिव अब शान्त समाधिमें लीन थे। उनका अन्तस्तेज बढ़ता जा रहा था। अतः उनके तेजका उपयोग करनेकेलिए देवताओंने तारकासुरके वधके हेतु शंकरको समाधिसे विचलित करनेकेलिए वसन्तके साथ मदनको भेजा। महायोगी महादेवने अपने तृतीय नेत्रके उद्घाटनद्वारा कामको भस्म कर दिया। यह कामदहनका आख्यान इतना लोकप्रिय है कि पुराण, महाकाव्य एवं स्तोत्र आदि सभी प्रकारके वांङ्मयमें इसे स्थान प्राप्त है।

स्तुतिकुसुमांजलिमें अनेक स्थानोंपर इस आख्यानको निबद्ध किया गया है। शंकरका महनीय रूप और उनका परम शिवत्व स्तुतिकुसुमांजलिके अनेक पद्योंमें निपुणतापूर्वक अंकित दिखलाई पड़ता है। शंकरके तृतीय नेत्रके तेज का और उससे प्रवाहित होनेवाली भीषण अनलधाराका पुराणोंमें बहुतही जीवन्त चित्रण किया गया है।

स्तुतिकुसुमांजलिमें प्रतिपादित शिवका स्वरूप

हम ऋग्वेदसे पुराण-काल तक विकसित होनेवाले शिवके स्वरूपका एक चित्र अंकित कर चुके हैं। स्तुतिकुसुमांजलिकारने अपने आराध्यका स्वरूप पुराणोंमें विकसित दिव्य शिवके समान ही वर्णित किया है। वे महाभारत, वामन-पुराण, शिवपुराण एवं लिंगपुराण आदि ग्रन्थोंसे विशेष प्रभावित हैं। शिवके सम्बन्धमें जितने आख्यान-उपाख्यान पौराणिक साहित्यमें उपलब्ध होते हैं, उनका यथास्थान संकेत भी कवि जगद्धरभट्टने किया है। उनके इस स्तुति-काव्यमें शिवका पूर्ण रूप उपलब्ध होता है। इस स्तुतिकाव्यको हम शिव-सम्बन्धी विकासकी अन्तिम कड़ी मान सकते हैं। यहाँ वे शिव या सदाशिवकी रूपाकृति एवं उनके आंतरिक और बाह्य गुणोंकी पूर्ण विकसित अवस्थाका चित्रण करते हैं।

स्तुतिकुसुमांजलिमें शिवको दिगम्बर, वृषभारोही, त्र्यम्बक एवं अर्द्ध-नारीश्वरके रूपमें चित्रित किया गया है। इनके जटाजूटों की विशेष महत्ता है।

ऋग्वेदका केशीसूक्त जटाधारी शंकरके रूपको प्रस्तुत करता है। स्तुतिकुसुमांजलिकारको भी शिवकी जटाएँ बहुत प्रिय हैं। उसने शंकरके जटाजूटकी स्तुति करते हुए बताया है कि उनकी जटाएँ दिव्य-सुमनोंके कुड्मलोंसे सुशोभित रहती हैं और वे कल्पवृक्षके समान भक्तोंकी समस्त इच्छाओंको पूर्ण करने की शक्ति रखती हैं।[1] कविका यह वर्णन शिवके नामके ही महत्त्वका सूचक नहीं है बल्कि शिवके सम्पर्कमें उनके अंगरूपमें रहनेवाली जटाओंके महत्त्वका भी सूचक हैं।

शंकरके चरणोंमें समस्त देवदानव इसी कारण नम्रीभूत रहते हैं क्योंकि उनका मस्तक कल्याणोत्पादक चन्द्रकिरणोंसे मण्डित है। दैहिक, दैविक और भौतिक संतापोंको वे क्षणभरमें नष्ट करनेवाले हैं।[2]

शंकरकी वेषभूषाका वर्णन भी विचित्र रूपमें आया है। चन्द्रकिरण, भुजंग, गंगा एवं जटाजूट—इन उपकरणोंको लेकर कविने शंकरके विविध स्वरूप और गुणोंका चित्रण किया है।

कविने बताया है कि शंकरके ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित है। इस चन्द्रकी रश्मियोंसे गंगा अत्यन्त श्वेत हो जाती हैं और फेनपिण्डके समान स्वच्छ मन्दहास्यसे युक्त उनकी दिव्य-मूर्ति अपना नया प्रकाश विकीर्ण करती है।[3] शंकरके ललाटपर अर्द्धचन्द्र मुकुटके समान सुशोभित होता है। यह शंकरमें अमृतत्व और श्वेतत्वका सृजन करता है। पुराणकालमें शंकरके

---

१. नमः समस्तसंकल्पकल्पनाकल्पशाखिने।
विकासिकलिकाकान्तकलापाय स्वयम्भुवे॥ स्तुति० २।५

२. नमस्तमस्वतीकान्तखण्डमण्डितमौलये।
तापान्धकारनिर्वन्धविच्छेदवेदिने॥ वही, २।४

३. मूर्ध्नि चन्द्रकरसुन्दरत्विषं फेनपिण्डपरिपाण्डुरस्मिताम्।
देहिनां वहति तापहारिणीं सिद्धसिन्धुमतनुं तनुं च यः ॥वही, १।१८
गंगाधौतकलापाय... (वही, २।१७), द्विभविताविरलसिद्धसरित्तरंगा... (वही, ३।२५), चान्द्रं च धाम सुरनिर्झरिणी जलं च....(वही, ३।२८), इन्दुरपि.... (वही, ३।३७), द्युतिभिः कलामविकलां कलावतः (वही, १६।४), अग्राहि यत् नतलोकमनुग्रहीतुं बालेन्दुलक्ष्म भवता तदिदं गुणाभि (वही, १८।१), मयूखमौलिरत्नम्....(वही, २१।१), मुकुटगतो मृगांकखण्डः... (वही, २१।२), चान्द्री मूर्ध्नि कलेव...(वही, ३३।२३)

मस्तकपर चन्द्रमाका अस्तित्व उनकी उपद्रवकारी शक्तिको सन्तुलित करनेकेलिए मान्य हुआ है। स्तुतिकारभी अपने आराध्यको समस्तगुणमण्डित एवं सृजन, पालन एवं संहारकी शक्तिसे सम्पन्न सिद्ध करना चाहता है। अतः उसने प्रायः सभी स्तोत्रोंमें चन्द्र, चन्द्र-रश्मियों, उनके उज्ज्वल प्रकाश एवं भवबाधाविनाशक शक्तिका चित्रण किया है। भारतीय वाङ्मयमें चन्द्रमाको कल्याण और मंगलका प्रतीक माना है। यह आह्लाद, सौन्दर्य एवं मृदुता आदि समस्त गुणोंको एक साथ उपस्थित करता है। शंकरका जटाजूट जब चन्द्रके प्रकाशसे उद्भासित हो जाता है तब उनका समस्त शरीर ही दिव्य आभामय दिखलाई पड़ने लगता है।

शंकरकी यह अपार शक्ति है कि उनके नेत्रोंमें सूर्य और ललाटमें चन्द्रमा निवास करते हैं। इन दोनों विरोधी तत्त्वोंको यदि एक साथ किसी एकही देवमें प्रदर्शित किया गया है तो वे देव शिव ही हैं। स्तुतिकारको शिवका रौद्ररूप प्रिय नहीं है। उन्होंने शिवके इस रूपका अत्यल्प चित्रण किया है। रुद्रसे शिवकी परिणति जीवन और साहित्य दोनोंकेलिए मंगलमयी है। शिव भी सामान्य शिव नहीं, सदाशिव हैं। जिसके मस्तकपर सुधाकर स्थित रहे, वह देव जनताकेलिए शिवरूप क्यों नही हो सकता है? कवि भक्ति-विभोर हो शंकरको त्रिजगद्गुरु बतलाता है। वह उन्हें राकेन्दुसे भी अधिक सुन्दर, सुन्दरी युवतीसे भी सुकुमार, अमृतसे भी अधिक प्रिय, मुक्तहारसे भी अधिकमनोहर एवं बालकके मनोहर वचनोंसे भी अधिक अमृतवाणीवाला वर्णित करता है।[1] चन्द्रमा कविकेलिए इतना अधिक प्रिय है कि अर्द्धनारीश्वरके ललाटपर चित्रित करनेके उपरान्त भी जब उसे अवसर प्राप्त होता है, तब वह उपमानोंके रूपमें भी चन्द्रमाका वर्णन कर देता है। वस्तुतः शंकरके आभूषणोंमें चन्द्रमा ही ललित मुकुट है। कविने अनेक पद्योंमें तथा अनेक रूपोंमें चन्द्रमाका निरूपण किया है।

चन्द्रमाके पश्चात् दूसरा स्थान वासुकिका है। वे भुजाओं और हाथोंमें

---

१. राकेन्दोरपि सुन्दराणि हृदयग्राहीणि बलांगना-
मुग्धालापकथामृतादपि परं हारीणि हारादपि।
अत्युत्तालशिशालबालवचसः सम्पूर्णकर्णामृत-
स्यन्दीनि त्रिजगद्गुरोः स्तुतिकथसूक्तानि पुष्णन्तु वः॥ स्तुति० ३।५

केयूर एवं कंकणके समान सुशोभित होते हैं।[१] एक स्तोत्रमें वासुकिका चित्रण कण्ठहारके रूपमें भी आया है।[२] शंकर जटाजूट बांधनेकेलिए भी शेषनागका उपयोग करते हैं।[३] सहस्र फणोंसे युक्त शेषनागको धारण करनेपर शंकरका सौन्दर्य वृद्धिगत हो जाता है।[४] द्वादश स्तोत्रमें कविने शेषनागका चित्रण बाजूबद और कंकणके रूपमें विशेष रूपसे किया है।[५]

उन्नीसवें स्तोत्रमें शंकरके गुल्फोंपर लिपटे हुए भुजगेन्द्रोंका चित्रण आया है। भक्तकविने घुटनोंपर लिपटे हुए शेषनागके शरीर-रूपी मनोहर आलवाल से सुशोभित अभीष्ट फल देनेवाली एवं सांसारिक सन्तापोंसे उत्पन्न हुए खेदको शान्तकर देनेवाली भगवान् शंकरकी जंघारूपी कल्पलतिकाओंका सकल विपत्ति-निवारण-हेतु आश्रय ग्रहण करनेका निर्देश किया है।[६]

कविने एक स्थानपर वासुकि आदि सर्पोंके फणोंकी मणिकान्तिसे अरुणिमाको प्राप्त और भस्मराशिसे शुभ्र सदाशिवके वक्षस्थलका चित्रण किया

---

१. भोगिभिश्च भुजगैर्विभूषितं ·· (वही, १।२१), अंगं भुजंगरचितांगदभंगि-तुगं ··· (वही, ३।८), शेषाहिरंगदपदे स चकास्ति यस्य · (वही, ३।४२), भवभुजंग ··· (वही, ३।४५)

२. हारीकृतोल्बणफणीन्द्रफणेन्द्रनील ·· वही, ३।३२

३. आपीडबन्धनविधौ शयने च वर्ष्म पर्याप्तभोगविभवं बहुमन्यमानः ।
यत्र प्रहृष्यतितरामुरगाधिराजस्तन्मंगलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः ॥ वही, ४।२

४. यद्वद्विभो तव हृदि प्रविभाति नागस्तद्वन्ममापि भवदेकपरायणस्य ।
वही, ११।९५
कर्णेक्षणादचरणात्त्रिफणात्कृतान्तपाशात्त्रसन्धृतसहस्रफणोरगेन्द्रम् ॥
वही, ११।११९

५. यदेष सेहे परशुक्षतव्यथां प्रभोः प्रियः स्यामिति चन्दनद्रुमः ।
भुजंगमालिंगितकन्धरो ध्रुवं बिभर्ति साम्यं गिरिजापतेरतः ॥ वही, १२।२१
मणिकटकमुदस्य यस्य शस्यं भव भवदंगदभंगिमेति भोगः । वही, १३।२०

६. जंघालतायुगलमाश्रितगुल्फमूलभोगीन्द्रभोगसुभगाभिनवालवालम् ।
शंभोरभीष्टफलदं भवतापतान्तिशान्तिक्षमं शमयितुं विपदं श्रयामि ॥
वही, १९।७

है।[१] सर्पोंका वेष्टन कविको अधिक प्रिय है। वह वासुकि आदि सर्पोंसे परिवेष्टित हुई भगवान् शंकरकी भुजाओंको संसारतापके शमनकेलिए शान्तिदायक मानता है। जिस प्रकार चन्दनवृक्षपर लिपटे हुए भुजगोंका विष चन्दनमें व्याप्त नहीं होता और वह चन्दन जगत्केलिए आह्लादकारक माना जाता है, उसी प्रकार भुजंगवेष्टित होनेपर भी शंकर सांसारिक परितापोंको शमन करनेमें समर्थ माने जाते हैं।[२]

भयंकर सर्पों के विकराल रूपका चित्रण भी कवि ने किया है। वह कर्णकुण्डलके रूपमें सर्पोंको वर्णित करता ही है, पर कंचुकीके रूपमें भी उनका प्रतिपादन करता है।[3]

वासुकिके पश्चात् तीसरा स्थान गङ्गाका है। गङ्गा शंकरके जटाजूटोंमें वेष्टित हैं। उनका उज्ज्वल फेन शंकरको श्वेत बनाता है। उस दिव्य गङ्गाके धारण करनेसे उनकी कान्ति अत्यन्त निर्मल और स्वच्छ हो जाती है। तापत्रयविनाशिनी मन्दाकिनी शंकरके मस्तकपर सुशोभित होकर जगत्का उद्धार करती है। कवि जगद्धरभट्टने शताधिक पद्योंमें गङ्गाका चित्रण किया है। गङ्गा अपने श्वेत फेनसे शिवके मस्तकपर मुकुटरूप ध्वजाके समान सुशोभित होती है। भक्त स्तोता चन्द्रमा, अमृत-कलश और गङ्गाजलके भगवान् शंकरके सम्पर्कसे महनीय होनेकी बात कहता है। वह अपने आराध्यकी

---

१. भस्मौघभास्वरमुरः पुरशासनस्य। स्तुति० १९।६

२. स्त्राभिन्नमी तव भुजा भुजगाधिराजभोगोपगूढवपुषो हृदयं मदीयम्।
आनन्दयन्ति बत भीमभवोपतापनिर्वापणेन विटपा इव चन्दनस्य॥
वही, १९।१०

३. रूपं यद्भवतो दधत्परिकरं भौजंगमं जंगमं ...(वही, २८।१५), महाहिवलयो, (वही, २९।३४), पन्नगभीमहारः (वही, ३०।१९), अहीनविभासितम् (वही, ३०।७२), फणिमण्डलज्वलदलंकरणम् (वही, ३१।६), गलमंगदरत्नशिखाशबलम् (वही, ३१।१७), पन्नगं कण्ठलग्नम् (वही, ३४।६), सहस्रशीर्षा (वही, ३८।१)

महत्ता बतलाता हुआ गङ्गामण्डित शंकरका स्तवन करता है। कविने गङ्गाका चित्रण विभिन्न रूपोंमें किया है।[1]

एक स्थानपर कविने शंकरकी जटामें निवास करनेवाली गङ्गाका चित्रण मालतीकी पुष्पमालाके रूपमें किया है। वास्तवमें इस वर्णनसे शिवके शारीरिक सौन्दर्यके साथ उनके आन्तरिक गुणोंपर भी प्रकाश पड़ता है। महेश्वर सर्व-शक्तिमान् और सभीके दुःखको दूर करनेवाले हैं। उन्होंने ऐसे आराधकोंको भी शान्ति और सुख पहुँचाया है जो अत्यन्त दुरात्मा और पापी थे। स्तोताने शंकरकी विशेषताएँ बतलाते हुए निम्नप्रकारसे उनकी स्तुति प्रस्तुत की है:

यस्यापगा स्रगिव सौमनसी जटासु
यः कौमुदीं विरचनामिव मूर्ध्नि धत्ते।
देवीं वराभयकरामपि यो बिभर्ति
प्रीतः शिवां दृशमिव प्रभुमाश्रये तम्।। स्तुति० ८।३७

शंकरके वस्त्रोंमें गजचर्मका[2] उल्लेख आता है। वे आर्द्र गजचर्मको धारण कर बहुत ही सुन्दर रूपमें सुशोभित होते हैं। चन्द्रकिरण और गङ्गाके

१. स्वर्गतरंग गगनांगनपंगिगंगय् (स्तुति० ३।८), दिव्यापगाप्लवन (वही, ३।१३), सुरसिन्धुजलोपगूढ (वही, ३।२१), मूर्ध्नोद्धतस्वर्धुनी (वही, ३।५५), द्युसिन्धुरिव (वही, ५।११), अमरस्रोतस्वतीवीचयः (वही, ५।२९), शिरःशरणनिर्झरिणीजलेन (वही, ९।९), पृथुशिरस्त्रिदशापगया श्रितं (वही, १०।५१), द्युतरंगिणीधर (वही, १०।५७), शिरसि निर्जर-निर्झरिणीमिव (वही, १०।६२), यो मूर्धनि ध्वरदनर्गलनिर्झरौघझांकारिणी-ममरनिर्झरिणीं दधानः (वही, ११।७), अम्बरसिन्धुम् (वही, ११।१७), द्युसिन्धुम् (वही, ११।२२), सिद्धसिन्धुः (वही, ११।२९), गांगस्त्वया किमिति मूर्ध्नि (वही, १२।३९), गङ्गाधरस्त्वम् (वही, ११।६७), स्खलितसिद्धसिन्धवः (वही, १६।१,) मूर्धनि स्वर्धुनीव (वही, १८।३), मूर्धनि बिबुधस्रवन्त्याः (वही, १९।३०), कल्लोलिनी (वही, २२।१२), रुन्धतीं भगवतीं गङ्गां तरंगान्तरम् (वही, २८।१३), शिखरं द्युनदीलहरीतरलं (वही, ३१।१८), स्वर्गंगः (वही, ३४।५)

२. स्थिराजिनं ... (स्तुति० १२।१४), जनिरपि कुंजरशेखरस्य (वही, १३।२२)

शीतलकणोंद्वारा वह गजचर्म विशेषरूपसे सुशोभित होता है। उत्तरीय वस्त्रके रूपमें रक्तस्रावी गजचर्मका वर्णन काव्यकी दृष्टिसे उत्कृष्ट है।[1]

शिव मुण्डमाला[2] धारण करनेपर भी शिवरूप ही हैं, अशिव नहीं। उनका यह रूपभी भक्तोंको विशेष प्रिय है। यद्यपि लोकमें मुण्डमालाको अशुभ माना जाता है, पर शंकरके सम्पर्कसे मुण्डमाला भी पवित्र और दिव्य बन जाती है। कवि मुण्डमालाका स्पष्ट चित्रण करता हुआ कहता है :

यस्येभचर्म घनशोणितपंकलिप्तमंगेषु मंगलदुगूलविलासमेति।
यस्यापि तापविधुरेषु करे कपालमालम्बतेऽमृतकमण्डलुखण्डलीलाम् ॥
यत्पादपांसुपरिमर्शशुचि श्मशानं श्रीशैलनैमिषमुखान्यधरीकरोति।
यत्संस्तवादविकलं कुशलं कपालपाली करोति कृतिनां कमलावलीव ॥[3]

मुण्डमालाका चित्रण भी काव्यके वातावरणमें किया गया है। यही कारण है कि उसे श्वेत कमलोंके समान शुभ्र,[4] चन्द्ररश्मियोंसे दीप्त होनेके कारण अमृतमय एवं नरकपालोंकी होनेके कारण भयंकर रूपमें चित्रित किया है।

मुण्डमालाके पश्चात् भस्मका चित्र प्रस्तुत होता है जो शंकरके शरीर पर कर्पूरके समान सुशोभित होती है।[5] श्मशानभूमिकी होनेपर भी वह भस्म मन्दाकिनी और चन्द्रके सम्पर्कसे पवित्र बन जाती है। भस्मावेष्ठित शंकर बड़े ही मनोहर रूपमें सुशोभित होते हैं। इस भस्मके दो-चार कणभी त्रिलोकको पवित्र करनेमें सक्षम हैं।

स्तुतिकुसुमांजलिमें सदाशिवके स्वरूपका भी चित्रण किया गया है।

---

१. स्नुतरुधिरा करीन्द्रकृत्तिः, स्तुति० २१।१२

२. विभुं मुण्डश्रेणीं (वही, ११।१२४), कपालखण्डम् (वही, १९।२८), पुरुषशिरसा (वही, २८।२५), सकपालम् (वही, ३०।७५,७६), नरमुखकल्पितशेखरमालम् (वही, ३१।१२), धृतनरशिरसम् (वही, ३१।२५), शिरःश्रेणीं बिभर्ति (वही, ३३।१४)

३. वही, ८।१२,१३

४. सरसिजभरनिभधृत.... वही, ३१।२५

५. भस्मरूक्षगात्र... (वही, ९।३०), भस्मौघभास्वरमुरः पुरशासनस्य... (वही, १९।९), अतिघस्मरभस्मरजोधवलं.... (वही, ३१।१६)

शिवके तीन नेत्र हैं।[१] सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंका एक साथ सम्पर्क होनेसे चिरकाल तक वे नेत्र अर्धनिमीलित बने रहे।[२] उनके नेत्र कमलके समान सुशोभित हैं। शंकरके अधर अरुण हैं।[३] वे विद्रुमके समान सुशोभित होते हैं। प्रातःकालीन सूर्यकी आभाके समान अरुणवर्णवाली जटाएँ अद्भुत सौन्दर्यका सृजन करती हैं।[४] हालाहलसे युक्त कण्ठ नीलवर्णकी निराली छटा प्रदर्शित करता है।[५] उनका मुख विकराल दाढ़ोंसे युक्त विचित्र मालूम पड़ता है।[६] अत्यधिक उष्णताके कारण भयानक और सुमनोहर रूप धारण करनेवाले दक्षिण नेत्रमें सूर्यकी मूर्ति सुशोभित होती है।[७] शंकरके वाम नेत्रमें चन्द्रमा प्रतिष्ठित है।[८] शंकरका भालनेत्र अत्यन्त तेजस्वी है।[९] इसमें अग्निका निवास है। जब वे क्रोधाविष्ट हो इस तृतीय नेत्रका उद्घाटन करते हैं तो जो सामने आता है वह भस्म हो जाता है।

---

१. नेत्रत्रितयं… स्तुति० १,२३
अन्तर्धृताहिमकरज्वलनोदितेन्दुः स्वःसिन्धुसंगसुभगा परमेश्वरस्य।
औदन्वतीव तनुरस्तु गजाश्वरत्नश्रीनाभक्तसुमनसाममृताय दृग्वः॥
वही, ३।३६,
श्रीधाम तत्पुररिपोर्नयनत्रयं…(वही, ३।३७), तत्त्रायतां पुररिपोर्नयनत्रयं वः
(वही, ३।३८), दृशस्ताः…(वही, ३।३९)

२. यद्दर्शनामृतसुखानुभवेन धन्या
नेत्रोत्पलानि चिरमर्धनिमीलितानि। वही, ३।१८

३. उत्तप्तहेमरुचि चन्द्रकलाकलापे
बालप्रवालरुचिरे च करे कपालम्। वही ३।३०

४. जटाः स बिभ्रत्तरुणारुणारुणाः श्रियः… वही, ७।६

५. यस्यातिघोरगरलादपि कण्ठपीठात्… वही, ८।९

६. दंष्ट्राकरालमपि घोरमघोरवक्त्रं… वही, ८।१०

७. सौरी तनुर्ननु सहस्रपदो यदीय-
नेत्रस्थिता हरति मृत्युभयं श्रितानाम्। वही, ८,२२
एवंविधोऽपि तव दक्षिणदृष्टिपात-
पात्रत्वमीश्वर कथं रुचिमानुपेतः॥ वही, ११।४४

८. द्विजपतिम् (वही, ११।५०), इन्दुनेत्रः (वही, ११।९१)

९. भवद्भालविलोचनानल, (वही, १२।१८)

शंकरके चरण देवताओंके मुकुटके अग्रभागमें जटित रत्नोंकी कान्तिसे सर्वदा अरुण होते रहते हैं ।[१] उनका मुख अत्यन्त सुन्दर तथा स्वच्छ है[२] और मूर्ति अमृतवर्त्तिकाके समान सुखदायिनी है ।[३] नीहारकणोंसे विभूषित पंखुड़ीवाले कमलयुगलकी छविके तुल्य उनके चरणद्वय हैं ।[४] वे सहस्रशिर, सहस्रनेत्र और सहस्रचरणोंवाले भी वर्णित किये गये हैं ।[५] धनुषकी आकृतिके समान कुटिल और चंचल उनका भृकुटिपल्लव है ।[६] वे अपने इस दिव्य स्वरूपद्वारा कल्पान्त कालमें भी प्राणियोंको अपने भीतर समाविष्ट कर लेते हैं । इन जैसा शक्तिशाली, साहसी और वीर अन्य कोई नहीं है ।

शिवका वक्षःस्थल सर्पों के फणोंके मणियोंकी कान्तिसे अरुणिम और भस्मराशिसे शुभ्र प्रतीत होता है ।[७] अमृतके समान स्वच्छ मुखारविन्द[८] और अग्निसे तप्त सुवर्णके समान पिंगल जटाजूट समस्त देवोंको अपने चरणोंमें नम्रीभूत कर देता है ।[९]

शंकरकी भुजाएँ लम्बी-लम्बी हैं । उन्हें आजानुबाहु कहा जाता है ।[१०] उनकी जटाओंको पिंगल, श्वेत एवं कृष्णवर्णका चित्रित किया गया है ।[११]

---

१. सुरमुकुटविटंकरत्नरोचिःखचितनखांकुरकेसराभिरामम् ।
पुरहरचरणारविन्दयुग्मं शिरसि विधत्त किरीटवांछया किम् ।।स्तुति० १३।२

२. परिणतशरदिन्दुसुन्दराभं वदनम्''' वही, १३।२४

३. मूर्तिध्रुवं तव शिवामृतवर्तिः''' वही, १९।३

४. नीहारशीकरपरिष्कृतपत्रपंक्ति-
पंकेरुहद्वितयकांति भजन्ति धन्याः ।। वही, १९।५

५. प्राज्ञः सहस्रशिरसं पुरुषं सहस्रनेत्रं सहस्रचरणं शरणं श्रयामि ।।
वही, ११।११९

६. भ्रूपल्लवस्तव'' वही, ११।१०७

७. सिन्दूरिताऽमरमतंगजकुम्भशोभि
सन्ध्याभिताम्रशरदम्बुधरानुकारि ।
वन्दे फणीन्द्रफनरत्नरुचारुणाभं
भस्मौघभास्वरमुरः पुरशासनस्य ।। वही, १९।९

८. वदनाद् भवतः सुधाच्छकान्तेः''' वही, १९।१७

९. स्वामिन्नसौ तव नवातपताम्रवेला-
शैलोपगूढ़ इव दुग्धनिधिर्न कस्य । वही, १९।२४

१०. महाभुजं''' वही, २९।७

११. कमलपरागपिशंगजटालं''' वही, ३१।१५

उनके चरण पंकज और कमलके समान सुशीतल, मृदुल और सुन्दर हैं।[१] गजचर्मसे युक्त स्कन्ध[२], उग्र कालकूटसे श्यामल कण्ठ[३], सूर्य, चन्द्र और अग्निके तेजसे उद्दीप्त नेत्र[४] एवं विचित्र कान्तिसे मण्डित दिव्य आभा भक्तोंके मनका अपहरण करती है ।

शंकर भिक्षान्नभोजी हैं ।[५] वे भिक्षाद्वारा अन्न ग्रहण करते हैं । उन्होंने, परम दयालु होनेके कारण समुद्र-मन्थनसे निकले हुए विषका भक्षण कर लिया और देवताओंको अमरत्व प्रदान किया । शिवके अस्त्र-शस्त्रोंमें धनुष एवं त्रिशूल परिगणित हैं । हाथमें धनुष रखनेके कारण ही ये पिनाकपाणि कहलाते हैं । त्रिशूलके उग्रशूल[६] आदि विशेषण भी उपलब्ध होते हैं । त्रिशूलको जलती हुई अग्निके समान तेजधारों वाला वर्णित किया गया है ।[७] इसमें सन्देह नहीं कि शिव अत्यन्त तेजस्वी, पराक्रमी, वीर और निर्भय हैं । शिवके बाणोंका वर्णन भी स्तोत्रोंमें आया है । तीव्र वेग एवं तीक्ष्ण गति ये दोनों ही उनकी विशेषताएँ हैं ।[८] इस प्रकार शंकरके अस्त्र-शस्त्र, भोजन एवं कार्य आदिका विस्तृत चित्रण स्तुतिकुसुमांजलिमें आया है ।

शंकरकी आठ मूर्तियाँ वर्णित हैं–पृथ्वीमूर्ति[९], जलमूर्ति[१०], अग्निमूर्ति[११]

---

१. ....चरणपंकजममृतशीकरशीतलम् । स्तुति० ३१।२८ तथा३१।२९-३०
२. ....स्कन्धस्थं चर्म .. वही, ३४।६
३. ....वर्षत्वच्छिन्नचंचद्‌गरगवलगलः ...वही, ३४।५
४. ....चन्द्रज्वलदनलवलत्पक्ष्मलत्र्यक्षवक्त्रः ... वही, ३४।१
५. वही, ९।४०
६. ....प्रथितोग्रशूलः .. वही १२।१
७. त्वं कालभैरववपुर्ज्वलितानलाश्रि
   लोलांगुलीवलनमण्डलितं दधानः । वही, १९।१२
८. ...रयशालिशरो हरः ...वही २७।१
९. ...भूतधात्री....नमस्ते....वही, ३३।३६
१०. ....तज्जलंनमस्ते....वही, ३३।३७
११. ....पावकस्ते नमस्ते ...वही ३३।३८

पवनमूर्ति,[१] आकाशमूर्ति,[२] यजमानमूर्ति[३], चन्द्रमूर्ति,[४] और सूर्यमूर्ति।[५] सृष्टिके निर्माणके समय शिव अपने स्वरूपको पृथ्वी, जल, अग्नि एवं पवनादि अष्टमूर्त्तियोंमें अभिव्यक्त करते हैं। उनका यह रूप अत्यन्त व्यापक और विशिष्ट है। शिवद्वारा किरात[६], ब्रह्मचारी[७] एवं मृग[८] आदि रूपोंके धारण करनेका वर्णन भी कुसुमांजलिमें आया है।

शिवके दो रूप अत्यधिक प्रसिद्ध हैं—अर्द्धनारीश्वर और हरिहर[९]। अर्द्धनारीश्वरमें उनका आधा शरीर पुरुषका और आधा स्त्रीका है।[१०] यह अर्द्धनारीश्वर रूप विभिन्न प्रकारके ताप और सन्तापोंको नष्ट करने वाला एवं अत्यन्त ललित है। शिवको अपनी पत्नीके प्रति इतनी आस्था एवं प्रेम है कि उन्होंने पार्वतीको अपने अर्द्धाङ्गमें समाहित कर रखा है। शंकर पार्वतीके आग्रह, अनुरोध एवं निवेदन आदिको सुनते तथा समझते हैं। वे उनसे सभी प्रकारसे प्रेम करते हैं। स्तुतिकुसुमांजलिमें इस अर्द्ध-नारीश्वर रूपका जैसा चित्रण हुआ है, वैसा सरस और भक्तिपूर्ण चित्र अन्यत्र प्राप्त नहीं हो सकेगा।

हरिहर रूपमें विष्णु और शिवका चित्रण एक साथ प्रस्तुत किया गया है। कवि जगद्धभट्टने विष्णुका सांगोपांग चित्रण किया है और साथ ही अपने आराध्य शंकरका भी पौराणिक रूप प्रस्तुत किया है। विष्णु और शिव दोनोंकी जानकारीकेलिए यह स्तोत्र अत्यन्त उपादेय है। लक्ष्मी, क्षीरसागर, सुदर्शनचक्र, शख एवं पद्म आदिके साथ कैलाश, नन्दी, पार्वती, गंगा एवं वासुकि आदिका भी सुन्दर वर्णन आया है।

---

१. ····मारुतस्ते नमस्ते ····स्तुति० ३३।३९
२. ···तन्नभसे नमस्ते ···वही, ३३।४०
३. ····यज्वा वपुः नमस्ते ···वही, ३३।४१
४. ···चन्द्रमास्ते नमस्ते ····वही, ३३।४२
५. ····सद्गभस्ते नमस्ते ····वही, ३३।४३
६. ····प्रवरधीवर···धीवर··· वही ३०।२६ तथा २४।२६
७. यद्व्याजगर्णितरुणस्य···वहीं, २०।३८
८. ···क्वचिन्मृगरथं विभुमाश्रयामि, वही, ८।३९
९. ··· देहार्धद्वितयमुमार्धरुद्धमूर्तेः, वही, २१।१
१०. तद्वन्दे गिरिपतिपुत्रिकार्धमिश्रं, वही २१।२

शिवके परिवारमें वामांग-वर्त्तिनी पार्वती[१], कार्त्तिकेय[२] एवं गजानन[३], नन्दी[४], भृंगीश[५] एवं महाकाल[६] प्रभृति सम्मिलित हैं। वृषभ उनका वाहन है। शंकरका परिवार सीमित होते हुए भी शक्ति और सरस्वती दोनोंका आश्रय है। विघ्नविनाशक गणेश सरस्वतीके मूर्त्तिरूप हैं। और कार्तिकेय तारकासुरके वधकेलिए शक्तिरूप हैं। कवि जगद्धरभट्टने शंकरके इस लघु परिवारका स्तवन किया है।

शिवके प्रांगणमें निवास करनेवाले गण भी कम शक्तिशाली नहीं हैं। नन्दीको द्वारपालके रूपमें वर्णित किया गया है।[७] भृंगीकी गणना प्रमथादि गणोंमें[८] की गयी है और ये शंकरके प्रधान गण हैं।[९] शंकर अपने कार्योंका संचालन गणोंकी सहायतासे करते हैं। भवानी कात्यायनी जब अपने पिता प्रजापति दक्षके यज्ञमें सम्मिलित होनेकेलिए गयी थीं तो उनके साथ उनके प्रमुख गण ही उपस्थित थे। जब दक्ष प्रजापतिने शंकरकी अवमानना की और भवानीने यज्ञकुण्डमें कूदकर अपने प्राणोंका त्याग किया था तो सर्वप्रथम शंकरके गणोंने ही दक्षके यज्ञका विध्वंस किया था। शंकरके गण कम शक्तिशाली नहीं हैं। वे अवसर पड़नेपर पूर्ण वीरताका परिचय देते हैं।

शंकरको पंचानन कहा जाता है। उनके पाँच मुख हैं। अघोर मुख और क्रूर मुख विशेषरूपसे महत्त्वपूर्ण बतलाये गये हैं।

पार्वती : स्वरूप और विकास

पर्वतस्य अपत्यम् स्त्री पार्वती—पर्वत+अण्+ङीप्। पार्वतीके स्वरूपके विकासका इतिहास भी मनोरंजक है। वैदिक साहित्यमें पार्वतीके सम्बन्धमें कोई विशेष निर्देश उपलब्ध नहीं होता है। यजुर्वेदमें रुद्रके साथ

१. ····वर्म्मणि च हैमवतीं बिभर्ति। स्तुति० ३।१६
२. ···अजनयस्तनयं कुमारं····वही, ९।४०
३. ····भवाद्गणसभेवा विनायकेन···वही, ९।४६
४. वही, ३४।३
५. ····भृङ्गीश····वही, २१।१७
६. वही, ३४।३
७. वही, ३८।२३
८. वही, ३८।२५
९. वही, ३८।२७-३०

एक स्त्री देवताका उल्लेख आया है जो उनकी बहन बतायी जाती है । पर उक्त सन्दर्भमें उसका महत्त्व या स्वरूप कुछ भी उपलब्ध नहीं होता । हाँ, वैदिककालमें शक्ति नामक एक देवताकी मान्यता अवश्यथी, जो महामाता मानी जाती थी। इसकी उपासना स्वतंत्ररूपमें होती थी और उसका पद भी शिवके तुल्य ही था । विकास-क्रमकी दृष्टिसे शक्तिकी यह उपासना ही अम्बिका या अन्य किसी स्त्री देवताके रूपमें मानी जा सकती है । मातृ-देवताकी उपासना भारतमें किस प्रकार व्याप्त हुई, यह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । विश्व इतिहासमें बेबीलोन एक ऐसा देश है जिसमें ईश्वरकी उपासनाकेलिए जिस स्त्रीको समर्पित किया जाता था उसको 'उखात्' कहते थे । 'गिलगमेश' की कथामें 'एबानी' को ऐसी स्त्री बनाया गया है जो उसे अपने व्रतसे डिगाना चाहती थी ।[१] बेबीलोनियन और यहूदियोंमें वेश्याको भी पवित्र माना गया है। माता-पिता बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी कन्याएँ मन्दिरोंको सेवार्थ समर्पित कर देते थे । इस समर्पणके पीछे देवी उपासनाकी भावना अवश्य निहित है । पश्चिम एशियामें देवीकी उपासनाके साथ एक और बहुत ही महत्त्वपूर्ण विधि प्रचलित थी। यह विधि थी मन्दिरके पुरुष पुजारियोंका उन्मत्त नृत्य । बताया गया है कि इस पूजाका स्वरूप अत्यन्त भावुक, उन्मादपूर्ण और रहस्यमय था और इसका उद्देश्य था अनेक प्रकारसे देवीके साथ अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित करना। नपुंसक पुजारीका पद प्राप्त करनेकेलिए जो पुंस्त्वहरण आवश्यक समझा जाता था उसकी उत्पत्ति भी अपने आपको देवीसे आत्मसात् करने और उसकी शक्तिसे अपनेको परिपूर्ण कर लेनेकी उत्कट कामनाके कारण हुई जान पड़ती है। यह कार्य सम्पन्न होनेपर अपने रूपपरिवर्तनको सम्पूर्ण करनेकेलिए स्त्रीवेश धारण कर लिया जाता था ।[२] अतः स्पष्ट है कि इस शक्तिके रूपमें स्त्री देवताका विकास समानान्तर रूपसे सभी देशोंमें हो रहा था ।

भारतीय वाङ्मयमें उमा या पार्वतीका विकास किस रूपमें हुआ इस पर विचार कर लेना भी आवश्यक है । केनोपनिषद्‌में[३] एक सन्दर्भ आया है कि देवताओंको ब्रह्मज्ञान उमा हेमवती नामकी एक देवताने कराया । जिन

---

१. **जेस्ट्रो— रिलिजन ऑफ बेबीलोनिया एण्ड सीरिया,** पृ० ४७५-४७६

२. **फार्नेल—कल्ट ऑफ दि ग्रीक स्टेट्स, भाग ३, अध्याय** ७, पृ० ३००

३. **केनोपनिषद्** ३।१२

बातोंको देवगण नहीं जान सकते थे उन बातोंकी जानकारी उक्त देवीने चेतन प्रज्ञाके रूपमें करायी। बृहदारण्यकमें भी उक्त आख्यानका संकेत उपलब्ध होता है।[१] उमा नाम सुनते ही हमारा ध्यान शिवपत्नीकी ओर चला जाता है। हैमवती उपाधि है, जिसका अर्थ हिमवान्‌की पुत्री है। हिमालयकी पुत्री होने के कारण हैमवती उपाधि विकसित होकर पार्वतीके रूपमें आयी होगी इसमें सन्देह प्रतीत नहीं होता है।

सूत्रग्रन्थोंसे हमें पार्वतीके स्वरूप-विकासकी एक निश्चित धारा उपलब्ध होने लगती है। बौधायन धर्मसूत्रमें रुद्र और रुद्रकी सहचरी स्त्री देवताके लिए अनेक तर्पणोंका विधान किया है।[२] इस स्त्री देवनाको स्पष्टत: रुद्रकी पत्नी कहा गया है। गणेश भी धर्मसूत्रोंमें उल्लिखित हैं। तैत्तिरीय-आरण्यकमें उन्हें वक्रतुण्ड और दन्ति कहकर वर्णित किया गया है।[३] इनकी लम्बोदर, हस्तिमुख, एवं एकदन्त आदि उपाधियाँ भी उपलब्ध होती हैं। अत: सूत्रकालमें पार्वतीके विकासके साथ ही साथ स्कन्द और गणेशका भी विकास उपलब्ध होने लगता है।[४]

बौधायन गृह्यसूत्रमें रुद्रकी पत्नी एवं रुद्रके पुत्र स्पष्ट रूपसे वर्णित हैं। हमें इन गृह्यसूत्रोंके अध्ययनसे ऐसा प्रतीत होता है कि शिवके परिवारका महत्त्व उत्तरोतर बढ़ता गया है और पार्वती, गणेश एवं कार्तिकेयके स्वरूप, शक्तियों और गुण आदिका भी पूर्णतया विकास होने लगा था। अष्टाध्यायीमें रुद्राणी, भवानी आदि नामों को सिद्ध करनेवाले सूत्र लिखे गये हैं।[५]

रामायण और महाभारत कालमें पार्वतीका पूर्ण विकसित रूप उपलब्ध होता है। रामायणमें रुद्र-पत्नीका नाम उमा है और ये कल्याणकारिणी एवं दयावती बतलायी गयी हैं। इन्हें देवी कहा जाता था और समस्त सृष्टि उनकी पूजा करती थी। बताया गया है कि जिस प्रकार भक्तजन भगवान् शिवसे कल्याणकी प्रार्थना करते हैं उसी प्रकार देवीसे भी। वह हमेशा शिवके साथ ही रहती हैं।[६] इस महाकाव्यमें शिव और पार्वती सम्बन्धी कई

१. बृहदारण्यक उपनिषद्, ६।१।३
२. बौ०ध०सू० २।५।६
३. तैत्तिरीय आरण्यक, १०।१
४. बौधायन गृ० सूत्र, २।५।८
५. अष्टाध्यायी, ४।१।४९
६. बालकाण्ड, ३५।५-६ और आगे भी

आख्यान भी वर्णित हैं । शिव और पार्वतीके विवाह एवं मदन-दहनके आख्यान भी रामायणमें आये हैं । रामायणके एक सन्दर्भसे यह भी ज्ञात होता है कि विद्युत्केश दानवको पार्वतीने गोद लिया था और शिवने उसे अमरत्व-प्राप्तिका वरदान दिया ।[१]

महाभारतमें पार्वतीका शक्तिमय रूप उपलब्ध होता है । अर्जुन कार्य-सिद्धिके हेतु श्रीकृष्णकी प्रेरणासे दुर्गाका स्तवन करते हैं। शैवधर्मका सर्वाधिक लोकप्रचलित रूप वह था जिसमें शिवको पार्वतीका पति बताया गया है और दोनोंकी साथ-साथ उपासना की गयी है । महाभारतमें शिवके साथ पार्वतीका भी मानवीकरण उपलब्ध होता है । शिवको यहाँ अत्यन्त सुन्दर आकृतिवाला और पार्वतीको रूप एवं लावण्यवती तथा स्त्रीजातिमें सर्वोत्तम माना गया है। इतना ही नहीं पार्वतीके वेश और अलंकारोंका भी वर्णन किया गया है ।[२]

पार्वतीका वर्णन करते हुए उन्हें शिवकी पत्नी और स्कन्दकी जननी माना गया है । दूसरी ओर उन्हे सतत कुमारी भी कहा गथा है । उनका आवास विन्ध्यपर्वत है और मद्य, मांस तथा पशुबलि उन्हें प्रिय है । उनकी आकृति अतिकुरूप है और जिन दानवोंका वे वध करती हैं उन्हें अपने वृकमुखसे खा जाती है ।

कालरात्रिके रूपमें भी पार्वतीका वर्णन है। वह कृष्णवर्ण है, उसका मुख रक्तवर्ण है और आँखें लाल हैं। वह रक्तपुष्पोंकी माला पहनती है और उसके शरीरपर रक्तवर्णका लेप है । उसकी आकृति प्रौढ़ा नारीकी है। वह एक हाथमें पाश लिये हुए है ।[३] उमा या पार्वतीका यह रूप कालरात्रि या कालीका है। शक्तिकी महत्ताके साथ-साथ उमाके रूपमें भी उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा था। शान्तिपर्वमें एक स्थलपर कहा गया है कि स्वयं उमाने महाकालीका रूप धारण किया था और दक्षयज्ञका विध्वंस करनेकेलिए वह वीरभद्रके साथ गयी थी ।[४]

पुराणोंमें पार्वतीके विभिन्न रूपोंका विकास उपलब्ध होता है। मत्स्य

---

१. उतरकाण्ड, १३।३४

२. अनुशासन पर्व, २३।३

३. सौप्तिक पर्व, ८।१

४. शान्तिपर्व, २८४।१

पुराणमें पार्वतीको सौम्य और दयाशीला स्त्री देवताके रूपमें प्रतिपादित किया गया है, जिनका सत्कार समस्त विश्व करता है और उनकी अनुग्रह-प्राप्तिके लिए कामना करता है।[1]

शिव जैसे परमपिता थे, पार्वती भी जगन्माता बन गयीं और अनेक स्तुतियोंमें उनको जगत्‌की नियन्त्री, सर्वशक्तियोंकी जननी, विश्वमाता एवं ससारकी कल्याणकारिणी आदि नामोंसे अभिहित किया गया है। पुराणोंमें पार्वतीकी उपासनाकी विधिका भी विस्तृत वर्णन आया है। उमा, भवानी, काली, दुर्गा एवं महाकाली आदिके रूपमें उनकी शक्तियोंका परिचय उपलब्ध होता है।

स्तुतिकुसुमांजलिमें निरूपित पार्वतीका स्वरूप

स्तुतिकुसुमांजलिमें पार्वतीका स्वरूप पुराणोंमें वर्णित पार्वती के स्वरूपके ही समान है। इन्हें निखिल लावण्यसुधासिन्धुकी अभिष्ठात्री एवं स्वतंत्र शक्तिरूपा भवानीके रूप में वर्णित किया गया है। संसारके लावण्यके समस्त तत्त्व इस महादेवीमें एकत्र हैं। इनका रूपलावण्य जितना अधिक है, उनकी शक्ति भी उतनी ही अधिक विकसित है।[2] शंकरके सान्निध्यसे पार्वतीके गुणोंका भी उत्तरोत्तर विकास होता गया। स्तुतिकारने इनको नवीन संजीवनीके समान सुखदायक, दयालु एवं वरदात्रीके रूपमें चित्रित किया है।[3]

शंकर पार्वतीको स्नेहवश अपने अर्द्धाङ्गमें धारण करते हैं। वे गिरिजा, भवानी, जगज्जननी, उमा, नगन्द्रकन्या, गिरिसुता एवं भगवती आदि नामोंसे स्मरण की गयी हैं। अर्द्धनारीश्वर स्तोत्रमें तो कविने पार्वतीका रम्य और महत्त्वपूर्ण रूप तो उपस्थित किया ही है, साथ ही उनके हृदयकी सरलता, सरसता एवं भक्तके दुःखको देखकर द्रवित होनेकी शक्तिका

---

१. मत्स्य पुराण, १८३।५१

२. स्तुति० ८।४१

३. सञ्जीवनौषधिरवैमि नवा भवाग्नि-
भस्मीकृतस्य विधिना मम निर्मितेयम्
वाणी शिवैकविषयाभिनवोढगौरी
दृष्टिच्छटेव चकिता मकरध्वजस्य ।। वही, ११।४

सुन्दर चित्रण भी किया है। इसमें सन्देह नहीं कि स्तुतिकुसुमांजलिकारने पार्वतीके जिस रूपको ग्रहण किया है, वह रूप भक्तोंकेलिए अत्यन्त उपादेय है। भक्त जब भक्तिविभोर होकर भगवती गिरिजासे प्रार्थना करते हैं तो वे जगज्जननी और माताके रूपमें भक्तोंकी प्रार्थनाको सहजमें सुनती है।[1]

पार्वतीको कविने करुणामूर्तिके रूपमें चित्रित किया है। जब शंकर भक्तकी प्रार्थना सुननेमें आनाकानी करते हैं तो पार्वती अपने अनुनय-विनयसे शंकरके हृदयको द्रवीभूत कर देती हैं और उन्हें स्तोता भक्तके दुःख-दैन्यको दूर करनेकेलिए बाध्य कर देती हैं। कवि जगद्धरभट्टने पार्वतीके हृदयको दयाका समुद्र माना है। शंकर पार्वतीके अनुरोधपर अपने संकल्प-विकल्पों का परित्याग कर देते हैं और वे पार्वतीके निवेदनानुसार कार्य करनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं। वास्तवमें स्तुतिकुसुमांजलिमें पार्वतीको हम जगज्जननीके रूपमें पाते हैं। इस रूपमें एक साथ दया, ममता और करुणाका मिश्रण है।

शंकर और पार्वतीके सम्बन्ध मधुर रूपमें भी वर्णित हैं। मानवती नायिकाके समान वे शंकरसे रूठती हैं; उनके अनुनयविनय करनेपर भी अपने मानका मोचन नहीं करतीं। रावणद्वारा कैलाश पर्वतके हिला देनेपर मानवती पार्वती भयविह्वल हो जब शंकरका आलिंगन करती हैं तो शंकर प्रसन्न हो जाते हैं और रावणके अपराधको भी अनुग्रह के रूपमें ग्रहण[2] करते हैं।

भवानीके रूपमें पार्वतीका अनेक स्थलोंपर कविने वर्णन किया है। शंकर की विशेष अनुरागवती दृष्टि और कृपा भवानीके ऊपर विद्यमान[3] हैं।

---

१. देवि प्रपन्नवरदे गुणगौरि गौरि
यदगौरियं परिमितं स्रवतीह किञ्चित्।
तत्स्वामिने समुचिते समये सुपाक-
माकूतवेदिनि निवेदयितुं प्रसीद ॥ स्तुति० ११।२६
तथा—करुणा तव शस्यते यया जितकामोऽपि भवान् वशीकृतः।
इदमन्यदियं यदम्बिकामपि देवीमनयद्विधेयताम् ॥ वही, १५।१०

२. लंकेशकम्पितकुबेरगिरिप्ररूढसंरम्भभीरुगिरिजापरिरम्भभाजः।
यत्ते रुषामवसरेऽप्युदितानवद्यहृद्यप्रसादसुमुखस्य समुज्जगाम ॥ वही, २०।७

३. देव्यां भ्रमद्भ्रुवि जयाविजयार्चितायां
सक्ता तवाऽस्तविजया विजयाय दृष्टिः। वही, ३०।७०

गिरिजाके अंग प्रत्यंगोंका चित्रण भी स्तुतिकुसुमांजलिके स्तोत्रोंमें आया है। पार्वतीके हाथोंको कमलके समान कोमल, स्निग्ध और सुन्दर कहा गया है। उनके चरण कमलके समान मृदुल, अरुण एवं लावण्यपूर्ण हैं। मुखमण्डल सदा ज्योतिसे उद्दीप्त रहता है। जब वे वचनका व्यवहार करती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनके मुखसे कमल ही निःसृत हो रहे हों।[1]

पार्वतीका वर्णन कात्यायनीके रूपमें भी आता है। यह कात्यायनी नाना प्रकारकी सुन्दर एवं मणि-माणिक्यादि विभूतियोंसे युक्त वेशभूषासे मण्डित है। कात्यायनीका रूप जगज्जननीका रूप है जो सदा अपने भक्तोंका मंगल करती है। शक्तिरूपा, महाधिष्ठात्री और विशेष अनुरागवतीके रूपमें भी कात्यायनीका वर्णन आता है।

शंकर प्रसन्न होकर पार्वतीको वरदान देते हैं। स्तोताने शंकरकी इस हार्दिक भावनाका चित्रण निम्न प्रकारसे किया है :

एका त्वमेव भवितासि मम प्रियेति दत्तं वरं स्मरसि चेद्गिरिराजपुत्र्याः।
प्रेम्णा बिभर्षि कथमम्बरसिन्धुमिन्दुलेखां च मूर्ध्नि हृदये दयितां दयां च॥[2]

अर्थात् 'हे शंकरजी! आपने पार्वतीजी को यह वरदान दिया था कि गिरिजे! मैं तुम्हारे सिवा किसी भी दूसरी स्त्रीसे प्यार नहीं करूँगा। यदि आप इसी वरको याद करते हैं अर्थात् इसी प्रतिज्ञाके भंग होनेके भयसे ही आप बिचारी मेरी वाणीके विषयमें उदासीन हो रहे हैं तब तो यह बतलाइये कि फिर आपने बड़े प्रेमसे देवगंगा और चन्द्रकलाको सिरपर क्यों चढ़ाया? और हृदयमें प्यारी करुणाको भी क्यों धारण किया? क्या इनके धारण करनेसे आपकी प्रतिज्ञाका भंग नहीं हुआ?'

उक्त प्रश्नके :समाधान-स्वरूप ही कविने अर्द्धनारीश्वरका चित्रण किया है, जिसमें पार्वतीके कोमल हृदयकी झांकी प्रस्तुत की है। कविने शिवके इस रूपको श्वेत और अरुण आभाके रूपमें निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है :

---

१. जितसुधाकरगिरिसुताकरसरसिजादरलालितं
नतपुरन्दररुचिरशेखरकुसुमकेसररञ्जितम्।
द्रुहिण-माधव-कुमुदबान्धव-कमलिनीधव-सेवितं
वितर मूर्धनि चरणपङ्कजममृतशीकरशीतलम्॥ स्तुति० ३१।२८

२. वही, ११।१७

यत्रार्धं घटयति भूरिभूतिशुभ्रं चन्द्रांशुच्छुरितकुबेरशैलशोभाम् ।
अर्धं च प्रणिहितकुंकुमांगरागं पर्यस्तारुणरुचिकांचनाद्रिमुद्राम् ॥[1]

अर्थात् 'जिस अद्भुत-रूपमे एक (दाहिना) अर्ध-भाग गाढ़ विभूति (भस्म) से धवल होकर चन्द्रमाकी किरणोंसे व्याप्त हुए कैलाश-पर्वतकी शोभा धारण करता है और दूसरा (वाम) अर्धभाग कुंकुमयुक्त अंगरागसे विलिप्त होकर सूर्यकी अरुण-कान्तिसे व्याप्त हुए शैलकी (सुमेरुकी) शोभा धारण करता है।

इस प्रकार स्तुतिकुसुमाञ्जलिमें पार्वतीके पौराणिक रूपका स्तवन मंजुल शैलीमें किया गया है।

---

१. स्तुति० २१।६

चतुर्थ अध्याय

स्तुतिकुसुमांजलिकी दर्शन एवं भक्ति-भावना

दार्शनिक भावना

काव्यमें दार्शनिक तथ्योंके प्रतिपादनकी प्रथा अश्वघोषके बुद्धचरितसे आरम्भ होती है। अश्वघोषने सरल शैलीमें बुद्धके सिद्धान्तोंका विवेचन काव्यके माध्यमसे किया है। गुप्तकालमें दार्शनिक खण्डन-मण्डनकी प्रवृत्ति प्रबल वेगके साथ आरम्भ हुई। काव्य भी इससे अछूते न रह सके। फलतः संस्कृतके प्रायः समस्त कवियोंने अपने काव्योंमें दार्शनिक तत्त्वोंका निरूपण किया है। इसका कारण हमें यह प्रतीत होता है कि धर्म और दर्शनका आधार-विन्दु मनुष्यका आध्यात्म जीवन है। जबतक मनुष्य भौतिकवादमें लिपटा रहता है तबतक उसे सुख, शान्ति एवं सन्तोष प्राप्त नहीं हो सकते। भारतीय संस्कृतिका लक्ष्य मूलत: भोग नहीं, त्याग है। यदि कदाचित भोगको स्थान प्राप्त भी है तो त्यागके ही साथ, अलग नहीं है। जनचेतना जीवनकी वास्तविक समस्याओंको अवगत करनेकेलिए सदा प्रयत्नशील रहती है। अत: काव्य-रचयिता काव्यात्मक आनन्दके साथ जीवनके उन तथ्योंकी भी विवेचना आवश्यक समझता है जिन तथ्योंको वह जीवनोत्थानकेलिए अनिवार्य मानता है। डॉ० सम्पूर्णानन्दने अपने चिद्विलासमें दर्शनशास्त्रके विषयका प्रतिपादन करते हुए दर्शनके साथ जीवनकी अनिवार्य आवश्यकताका समर्थन किया है। उनका अभिमत है, 'हम चेतन हैं, इसलिए हममें अनेक प्रकारकी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ वासनाएँ, एषणाएँ समय-समयपर उठती रहती हैं। (ये सभी शब्द मिलते-जुलते अर्थोंमें विभिन्न शास्त्रकारोंद्वारा प्रयुक्त हुए हैं)। राग एक ओर खींचता है, द्वेष दूसरी ओर; सुख ऊपर उठाता है, दु:ख नीचे डुबाता है। चित्तके इन परिणामोंके फलस्वरूप हम शरीरसे विभिन्न प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं। चेष्टा-सादृश्यसे ही हम अपनेसे बाहर चेतनाके अस्तित्वका अनुमान करते हैं। जिस शरीरकी चेष्टाएँ जितनी हमारे समान होती हैं, उतनी ही अधिक चेतना या चेतनाका उतना ही अधिक विकास हम उस शरीरमें मानते हैं।'[१]

---

१. चिद्विलास, पृष्ठ १

अद्वैतपरक उक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि जीवनकी शाश्वतिक समस्याओंका समाधान दार्शनिक विवेचनके बिना सम्भव नहीं। काव्य-रचयिताका मुख्य लक्ष्य जीवनको आह्लादित करना है पर वास्तविक आह्लाद किसी प्रबल सिद्धान्तके विवेचन बिना उपलब्ध नहीं होता है। समाजमें सभी अर्थ और कामरूप पुरुषार्थकी सिद्धि करना चाहते हैं और यह सिद्धि ही अधिकार एवं कर्त्तव्योंकी शृंखलाका नियोजन करती है। जब अधिकार और कर्त्तव्य इन दोनोंमें असंतुलन आ जाता है तो समाजका ढाँचा बिगड़ने लगता है। अतएव अधिकार और कर्त्तव्यके सन्तुलन-हेतु धार्मिक और दार्शनिक विचारोंका उपस्थितीकरण आवश्यक हो जाता है। मनुष्य चाहे अर्थ एवं कामको ही लक्ष्य मानकार चला हो, पर जैसे-जैसे उसकी बुद्धिमें यह बात आती जाती है कि आस्था, विवेक एवं आध्यात्मिक अवलम्बनके बिना अर्थ एवं काम सिद्ध नहीं हो सकते, त्यों-त्यों उसका ध्यान इनकी ओरसे हटकर आत्मा, शरीर, ईश्वर और विश्वकी रहस्यमयी समस्याओंके समाधानमें संलग्न होता जाता है। अत: जब मनुष्यकी अज्ञाननिवृत्ति होने लगती है तब वह ज्ञानसाधनामें प्रवृत्त होता है और उसकी समस्त एषणाएं आध्यात्ममूलक हो जाती हैं। इसी कारण कौटिलीय अर्थशास्त्रमें आन्वीक्षिकी विद्याको समस्त शास्त्रोंका प्रदीप[1] कहा गया है। यह शास्त्र समस्त कार्योंका साधक और समस्त कर्त्तव्य-कर्मोंका मार्गदर्शक[2] कहा गया है। डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्ने बताया है कि भारतीय विचारधारामें जीवनके आध्यात्मिक सत्य सदाही अनुस्यूत रहते हैं। काव्य, पुराण एवं अन्य प्रकारके वाङ्मयमें दार्शनिक तत्त्वोंका पाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। विविध प्रकारके इन्द्रिय-अनुभव देश, काल और कारणसे बद्ध हमारे सामने आते हैं। अत: ज्ञानकी प्रत्येक शाखाका सम्बन्ध दर्शनके साथ जुड़ा हुआ है। उनका कथन है,' भारतीय जीवनमें आध्यात्मिक प्रयोजनका स्थान सदा ही सर्वोपरि रहता है। भारतीय दर्शनकी रुचि मानव-समुदायमें है, किसी काल्पनिक एकान्तमें नहीं। इसका उद्भव जीवनसे होता है और विभिन्न शाखाओं एवं सम्प्रदायोंमें से होकर यह पुन: जीवनमें ही

---

१. प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता ।। १।१

२. द्रष्टव्यः इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, १९१८, पृष्ठ १०२

प्रवेश करता ।'[1] अतएव स्पष्ट है कि दर्शनका सम्बन्ध प्रत्येक शास्त्रके साथ अवश्य रहता है ।'

हमारा यह मत है कि प्रत्येक पन्थ या सम्प्रदायका अपना विचार, विश्वास एवं आचार होता है । आचार बनता है विचारसे और विचार बनता है विश्वाससे । अत: विश्वास, विचार और आचार इस त्रिकोणमें ही मानवकी वृत्तियाँ, अनुभूतियाँ और एषणाएँ समाहित हैं । कोई भी काव्यरचयिता अपने काव्य-ग्रन्थमें जीवनके शोधन, प्रकाशन और विकासकी चर्चा किसी विशेष उद्देश्यसे करता है, उसका कोई विशेष सिद्धान्त उसमें वर्णित रहता है । यह सिद्धान्त साधनात्मक और अनुभूत्यात्मक दोनों रूपोंमें निहित रहता है । साधनात्मक सिद्धान्तको हम उस रचयिताका आचार-दर्शन और विचारात्मक सिद्धान्तको हम उस रचयिताका अध्यात्म-दर्शन कह सकते हैं । संसारकी प्रत्येक आत्मा चाहे वह कहीं और किसी भी रूपमें क्यों न वर्त्तमान हो उसके अन्तस्तलमें एक ही अभिलाषा और इच्छा रहती है कि शाश्वतिक सुख कहाँ है और किस प्रकार यह सुख उसे प्राप्त हो सकेगा । इस शाश्वतिक सुखका अन्वेषण ही मानसिक और शारीरिक दु:ख एवं क्लेशोंसे विमुक्तिका कारण बनता है । अनन्तकालसे आत्मा इसी इच्छा और अभिलाषाकी पूर्त्तिके प्रयत्नमें निरन्तर संसार-यात्रा करती चली आ रही है । भारतीय वाङ्मयका प्रत्येक रचयिता आत्माके साथ जड़ जगत्का भी विचार करता है । यत: संसारी जीवको खाने-पीने आदि भोग्य वस्तुओंकी उपलब्धि इस विराट् विश्वसे ही होती है, अत: जड़ जगत्का भी अपना एक अस्तित्व है, अपनी एक सत्ता है । उसकी स्थिति अनादिकालसे चली आ रही है और अनन्तकालतक बनी रहेगी । जड़ प्रकृति कभी भी अस्तित्वहीन नहीं हो सकती, क्योंकि उसकी सत्ता भी उसी प्रकार शाश्वत है जिस प्रकार जीवकी एवं आत्माकी । यह सत्य है कि जड़ प्रकृतिकी सत्ता रहनेपर भी उसमें ज्ञान एवं चेतना नहीं है । यद्यपि शंकराचार्य जैसे अद्वैतवादियोंने जड़ प्रकृतिमें भी ज्ञानकी सत्ताका अस्तित्व स्वीकार किया है, पर सभी द्वैतवादी दर्शन प्रकृति-जगत्के बाद एक दूसरा चैतन्य-जगत् भी मानते हैं । यह चैतन्य-जगत् सूक्ष्म और स्थूलसे स्थूल प्राणियों का समवाय है । अत: भारतीय तत्त्वचिन्तकोंने जड़ और चेतनात्मक जगत्

---

१. इण्डियन फिलॉसफी (हिन्दीसंस्करण)
विषय प्रवेश, पृ० २०

की व्याख्या अपने-अपने दार्शनिक विचारोंके परिवेशमें की है। हमारा लक्ष्य यहाँ उन समस्त दार्शनिक सिद्धान्तोंका विवेचन करना नहीं है। हम केवल स्तुतिकुसुमांजलिमें समाहित दर्शनकी ही व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

स्तुतिकुसुमांजलिकारके आराध्य शिव हैं। कविने शिवका पौराणिक रूप तो ग्रहण किया ही है, इसमें शैव-दर्शनके सिद्धान्तोंका भी पूर्णतया समावेश किया है।

सभी प्रकारके प्राकृतिक व्यापारोंमें सृष्टि, स्थिति और लयका ही महत्त्व अधिक था, अतएव उनके अधिष्ठाता ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ही सर्वशक्तिमान्‌के रूपमें स्वीकृत किये गये। शनैः शनैः यज्ञसे रुद्रका तादात्म्य होता गया और पुराण एवं महाकाव्यकालको प्राप्त करते ही विष्णु एवं शिवने एक शक्तिशाली स्वरूपको प्राप्त किया जिससे अन्य सभी देवता उनके प्रभावसे तिरोहित से हो गये। अदृष्टकी प्रधानताके साथ-साथ महाकालकी प्रधानता भी सम्बद्ध होने लगी। फलतः पुराण साहित्यमें वह पंचरूपोंमें अभिव्यक्त माना गया है। वे रूप हैं—सूर्य, गणेश, देवी, शिव और विष्णु। रुद्रकी महिमा ऋग्वेदमें ही व्याप्त हो चुकी थी। यजुर्वेदकी रुद्राष्टाध्यायी तो अब तक शिवपूजामें व्यवहृत होती है। हमारा यह दृढ़ मत है कि शिव आर्य और अनार्य दोनोंके ही देवता हैं। आर्योंद्वारा इनकी यज्ञपूजा और अनार्योंद्वारा की गयी इनकी लिंगपूजाका समन्वित रूप विकसित शिवपूजा है। इस शिवपूजाने कालान्तरमें पाशुपतसम्प्रदाय, कालामुखसम्प्रदाय, काश्मीरी शैवसम्प्रदाय और वीरशैवसम्प्रदाय आदि अनेक सम्प्रदायोंका रूपधारण कर लिया; पर हम यहाँ शैवदर्शनके केवल उन सिद्धान्तोंका विचार करेंगे जिनका समावेश स्तुतिकुसुमांजलिमें पाया जाता है।

अन्य दर्शनोंके समान शैवदर्शनका भी अपना एक विशिष्ट क्षेत्र है। इस क्षेत्रका एकमात्र तत्त्व महेश्वर या शिव है। महेश्वर-दर्शन परम पुरुषार्थका साधन पाशुपत शास्त्रको मानता है, जिसमें पाँच पदार्थोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है।

ऐतिहासिक और धार्मिक दृष्टिसे माहेश्वर सिद्धान्तके चार भेद हैं—पाशुपत, शैव, कालामुख और कापालिक। इस सिद्धान्तके दार्शनिक दृष्टिसे भी चार भेद उपलब्ध होते हैं—पाशुपतदर्शन, शैवदर्शन, वीरशैवदर्शन एवं प्रतिभिज्ञादर्शन या त्रिकदर्शन।

पाशुपतदर्शनके संस्थापक नकुलीश या लकुलीश हैं। शिवपुराणके कार्वणमाहात्म्यसे पता चलता है कि भृगुकच्छके पास कारबन नामक स्थानमें इनका जन्म हुआ था। नकुलीशकी मूर्त्तियाँ राजपूताना और गुजरातमें बहुत मिलती हैं। इन मूर्त्तियोंमें सिर केशसे आच्छादित रहता है, दाहिने हाथमें बीजपुरका फल एवं बायें हाथमें लगुड रहता है। लगुड धारण करनेके कारण ही इन्हें लगुडेश = लकुलीश — नकुलीश कहते हैं। शंकरके अष्टादश अवतारोंमें लकुलीश प्रथम अवतार हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे इनका समय विक्रम संवत्के आरम्भके आस-पास माना जाता है। दार्शनिक मान्यताओंकी दृष्टिसे पाशुपतों एवं न्याय-वैशेषिकोंमें घना सम्बन्ध है। गुणरत्नने नैयायिकोंको शैव तथा वैशेषिकोंको पाशुपत कहा है। भारद्वाज उद्योतकर (न्यायावतारके रचयिता) अपनेको पाशुपताचार्य कहते हैं।[1]

पाशुपतदर्शनकी मूलभित्ति निम्नांकित पांच पदार्थोंपर अवलम्बित है: कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखान्त।

कार्य

कार्यकी व्याख्या करते हुए बताया है कि जो कुछ स्वाधीन नहीं होता, वह सब कार्य कहलाता है।[2] ईश्वरके अधीन होनेसे भी इसे कार्य कहते हैं। यह तीन प्रकारका है—विद्या, कला और पशु। जीव अपने-अपने गुणोंके साथ कभी स्वतन्त्र नहीं। गुण अपने-अपने आश्रयोंके अधीन हैं। जड़ पदार्थ जीवोंके अधीन हैं। जीवोंमें भी एक दूसरेकी पराधीनता पायी जाती है। अतः यह सिद्ध होता है कि जीव और जड़-जगत् पराधीन हैं, परमेश्वरके अधीन हैं। पाशुपत दर्शनमें जीवोंको पशु कहा गया है। जीवोंके गुणोंको विद्या और गुणसहित पृथ्वी आदि जड़ द्रव्योंको कला माना जाता है। जीवोंकी गुण-विद्याके दो भेद हैं—बोध और अबोध।[3] बोध-स्वभावा विद्याका ही नाम चित् है। पशुत्वकी प्राप्ति करानेवाले धर्माधर्मसे युक्त विद्या अबोधरूपा है। चेतनके अधीन स्वयं अचेतन पदार्थ कला कहलाता है। कार्यरूपा कलामें पृथ्वी आदि पंचभूतों एवं उनके गुणोंका अन्तर्भाव हो जाता है तथा कारणरूपा कलामें

१. द्रष्टव्य : उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' सम्पादित 'सर्वदर्शनसंग्रह' पृ०२९८

२. वही, पृ० ३०७

३. वही, पृ० ३०७

त्रयोदश इन्द्रियोंका अन्तर्भाव होता है। कार्यकारण रूपी कलासे सम्बद्ध होनेपर भी शब्दादि विषयोंमें सदा परतन्त्र रहनेवाला जीव पशु कहा गया है। शरीरेन्द्रियसे सम्बद्ध जीव सांजन और असम्बद्ध जीव निरंजन कहा जाता है।[१]

शिवत्वकी प्राप्तिका उपाय गुरु है। यह नवगणोंका ज्ञाता एवं संस्कार सम्पन्न करनेवाला होता है। पशुको आत्मा कहा जाता है, इसीको क्षेत्रज्ञ भ कहते हैं। इसका ज्ञान उस गुरुद्वारा प्राप्त होता है जो गुरु निर्मल बुद्धिवाला, संसारके सुख-दुःखोंसे परे, अप्रमादी एवं क्षीणमल होता है। नवगणों पाशुपत दर्शनमें निम्न प्रकार से आया है—लाभ, मल, उपाय, देश, अवस्था, विशुद्धि, दीक्षा, बल और वृत्ति।

इस प्रकार जीवके पारतंत्र्य भावको अवगत करनेकेलिए उक्त गुणोंका ज्ञान परमावश्यक है। उपायका अर्थ—ज्ञान, तपस्, नित्यत्व, स्थिति और शुद्धि इन पाँचकी प्राप्ति-लाभ है। इन पाँचोके लाभमें जीव पारतंत्र्य भावको अवगत करता है और उससे छुटकारा भी पा लेता है। आत्मामें अवस्थित दुष्टभावोंको मल कहा जाता है। मिथ्याज्ञान, अधर्म, शक्तिहेतु, सदाचार-भ्रष्टता और पशुत्वमूल—इन पाँच मलोंका विवेकद्वारा त्याग करनेपर कार्यका बोध होता है जिससे पारतंत्र्यको सम्यक् प्रकार समझा जाता है।

साधककी शुद्धिके कारणोंको उपाय कहा है। इसके वासचर्या, जप, ध्यान, रुद्रका सदा स्मरण करना, प्रपत्ति (शरणागति) आदि भेद हैं। इनके द्वारा ही उपाय निश्चित किये जाते हैं। जहाँ रहकर अर्थों—कार्य, कारण, योग, विधि एवं दुःखान्तका अनुसन्धान किया जाय और ज्ञान तथा तपस्याकी सम्नद्धि प्राप्त की जाय, वह देश है। गुरु, जन (ज्ञानियोंकी सभा), गुहादेश या एकान्त स्थान, श्मशान तथा रुद्रको देश कहा गया है। लाभकी प्राप्ति-पर्यंन्त साधक जब एक ही प्रकारसे अवस्थित रहता है तब उस स्थितिको अवस्था कहा जाता है। मिथ्या ज्ञानादिका बिलकुल विनाश हो जाना विशुद्धि है। विशुद्धिके पाँच भेद हैं—अज्ञानहानि, अधर्महानि, आसक्ति-हेतुकी हानि,

---

१. **सर्वदर्शनसंग्रह**, पृ० ३०८; **साथ ही द्रष्टव्य—भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय**, पृ० ५६८; **वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म**, आर०जी० **भण्डारकर**, पृ० १२४ **तथा शैवसिद्धान्त, पराञ्जोति**, पृ० ३४।

च्युतिहानि और पशुत्वहानि। द्रव्य (दीक्षाके समय उपयोगी वस्तुएँ), काल, क्रिया (दीक्षाकी विधियाँ), मूर्त्ति और गुरु ये पाँच दीक्षाकार हैं। गुरुभक्ति, बुद्धिकी निर्मलता, सुख-दु:खादि द्वन्द्वोंपर विजय, धर्म और अप्रमाद इन पाँच को बल माना गया है। पाँच मलोंको क्षीण करनेकेलिए आगमोंके विरुद्ध नहीं जानेवाले पुरुषोंके अन्नार्जनके उपायोंको वृत्ति कहते हैं। इन वृत्तियोंके विशुद्धीकरणपर ही पारतंत्र्य-मुक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार कार्य-स्थितिका विश्लेषण करते हुए दार्शनिकोंने उसका विस्तारसे प्रतिपादन किया है।[1]

कारण

महेश्वर ही जगत्‌की सृष्टि, संहार एवं अनुग्रह करनेके हेतु कारणद्वारा वाच्य हैं। इनकी शास्त्रीय संज्ञा पति है। ये अपनी अपरिमित ज्ञान-शक्तिसे जीवोंका प्रत्यक्ष करते हैं और अपरिमित प्रभुशक्तिसे जीवोंका पालन करते हैं। इस ज्ञान एवं प्रभुशक्तिके आश्रय होनेके ही कारण महेश्वर पति कहलाते हैं। अनुग्रहशक्ति भी उन्हींमें निवास करती है। वे इच्छानुसार जीवोंके इष्ट-अनिष्टका संपादन करते हैं। शिवमें इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, प्रभुशक्ति एवं क्रियाशक्ति समाविष्ट है। अतः समस्त जगत्‌के उत्पादक होनेसे वे कारण-पद-वाच्य हैं।

योग

चित्तके द्वारा आत्मा तथा ईश्वरके साथ जो सम्बन्ध होता है उसके कारणोंको योग कहते हैं।[2] यह योग दो प्रकारका है—क्रियासे युक्त एवं क्रियाकी निवृत्ति वाला। जप एवं ध्यान आदिके रूपमें जो योग होता है उसे क्रियायुक्त योग कहते हैं। क्रियाकी निवृत्ति अथवा भगवान्‌में ऐकान्तिकी भक्ति, ज्ञान तथा शरणागतिको क्रियोपरम कहते हैं। पाशुपत योगका फल दु:ख-निवृत्तिके साथ परम ऐश्वर्यका लाभ है।[3]

---

१. **सर्वदर्शनसंग्रह**, पृ० ३००-३०२

२. **चित्तद्वारेणेश्वरसम्बधंहेतुर्योगः—पाशुपतसूत्र** ५।२

३. **स च द्विविधः—क्रियालक्षणः क्रियोपरमलक्षणश्चेति। तत्र जपध्यानादिरूपः क्रियालक्षणः। क्रियोपरमलक्षणस्तु निष्ठासंविद्गत्यादिसंज्ञितः।। स०द०सं० पृ० ३१०**

विधि

महेश्वरकी प्राप्ति करानेवाला साधन-व्यापार विधि है। इसके दो भेद हैं—प्रधान विधि और गौण विधि। प्रधान विधि वह है जो साक्षात् धर्मका कारण है, इसे चर्या भी कहा जाता है। इसके दो भेद हैं—व्रत और द्वार। भस्मसे स्नान, भस्ममें शयन, उपहार, जप और प्रदक्षिणा ये व्रत हैं। उपहारका अर्थ है नियमोंका पालन। इसके ६ अंग हैं—हसित, गीत, नृत्य, हुंकार, नमस्कार और जाप्य। साधकको महेश्वरकी पूजाके समय हँसना, गाना, नाचना, जिह्वा एवं तालुके संयोगसे बैल जैसी आवाज, नमस्कार एवं जप आदि करना चाहिए।[1]

भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करनेकेलिए द्वारविधि परमावश्यक है। इसके ६ भेद हैं—क्राथन, स्पन्दन, मन्दन, शृंगारण, अवितत्करण एवं अविततभाषण।

असुप्त पुरुषका सुप्त पुरुषके समान चिह्न धारण करना क्राथन है। भक्त आराध्य शिवकी भक्तिमें इतना विभोर हो जाता है कि असुप्त रहनेपर भी सुप्त पुरुषके समान चेष्टाएँ प्रदर्शित करता है। वायुरोगसे अभिभूत रोगीकी तरह अपने शरीरके अंगोंको कँपाना स्पन्दन है। टूटे हुए पैरवाले व्यक्तिकी तरह लड़खड़ाकर चलना मंदन है। रूपयौवनसम्पन्न सुन्दरीका निरीक्षण कर कामिजन-सदृश चेष्टा करना श्रृंगारण है। अविवेकीके समान निन्दित कर्मोंको करना अविततकर्म है। ऊटपटांग बोलना अविततभाषण है। अनुस्नान एवं निर्माल्य-धारण आदिको गौण विधि कहा जाता है। उक्त क्रियाओंके मूलमें भक्तिका अतिरेक आवश्यक है। यदि भक्तिके अभावमें केवल प्रथानिर्वाहकेलिए उक्त क्रियाओंको सम्पन्न किया जाय तो आडम्बरके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।[2]

दुःखान्त

अन्तिम पदार्थका नाम दुःखान्त—दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति या मोक्ष है। पशु जीवात्मा पाँच प्रकारके दोषोंसे बन्धनमें पड़ा हुआ है। ये दोष मल कहे जाते हैं। उनका विवेचन हम पहले कर चुके हैं। दोष-मुक्तिकेलिए विषयासक्ति और विषयोंके सम्पर्कका त्याग आवश्यक है। प्रपत्ति अर्थात्

---

१. स० द० सं०, पृ० ३११
२. वही, पृ० ३१२

भगवान् पशुपतिकी शरणमें जाना एवं उनके नैसर्गिक प्रसादको प्राप्त करना ही मुक्तिलाभ है।

दु:खान्त दो प्रकार के हैं—अनात्मक और सात्मक। अनात्मक दु:खान्त केवल दु:खोंकी आत्यन्तिक निवृत्तिमात्र है। सात्मक दु:खान्तमें परमैश्वर्यका लाभ होता है; दृक्शक्ति और क्रियाशक्तिकी प्राप्ति होती है; मुक्तात्मा सूक्ष्म, व्यवहृत और विप्रकृष्ट पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता है एवं दर्शन, श्रवण एवं मनन आदिकी सिद्धि हो जाती है। क्रियाशक्ति तीन प्रकारकी मानी गयी है—मनोजवित्व, कामरूपित्व एवं विकर्णधर्मित्व। किसी कार्यके अत्यन्त शीघ्र करनेका सामर्थ्य प्राप्त हो जाय तो उसे मनोजवित्व कहते हैं। कर्मादिके विना ईप्सित रूपका धारण करना उपलब्ध हो जाय तो उसे कामरूपित्व कहते हैं। इन्द्रियोंकी सहायताके विना समस्त पदार्थोंको जाननेकी क्षमताका प्राप्त हो जाना विकर्णधर्मित्व है। वस्तुतः सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्त्व एवं सर्वैश्वर्यमत्त्व इन तीनों धर्मोंकी प्राप्तिका हो जाना ही क्रियाशक्तिकी प्राप्ति है। पाशुपत-दर्शनमें पश्वादि कार्य नित्य हैं तथा कारण-निरपेक्ष भगवान् ही हैं। पाशुपत-योगका सबसे बड़ा वैशिष्ट्य इस बातमें है कि दु:खान्त रूप मोक्षलाभके साथ परमैश्वर्य भी उपलब्ध होता है। निष्कर्ष यह है कि जीव तीन प्रकारके कर्म करता है—कुछ कर्मोंसे ईश्वर प्रसन्न होता है, कुछ कर्मोंसे क्रुद्ध होता है और कुछ कर्मोंसे उदासीन रहता है। प्रथम दो प्रकारके कर्म फल देते हैं, भले ही वह फल अच्छा या बुरा हो। अन्तिम कर्म निष्फल है। जिस कर्मको वह अनुगृहीत या स्वीकार नहीं करता उसका फल नहीं मिलता। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि ईश्वरकी इच्छाके अधीन ही जीवोंकी प्रवृत्ति होती है। जिन कर्मोंके प्रति ईश्वर उदासीन रहता है उन कर्मोंका फल नहीं मिलता पर इस बातकी जानकारी प्राप्त करना दु:साध्य है कि ईश्वर किन कर्मोंके प्रति उदासीन है।[1]

परिणाम यह होता है कि कर्मके निष्फल होनेपर पुनः लोग उसके सम्पादनमें प्रवृत्त होते हैं; यथा कृषिके खराब होनेपर कृषक पुनः कृषि-कार्यमें संलग्न होता है। प्राणीमें प्रयोजन रहनेपर भी कर्म-निष्फलता देखी जाती है, यतः

---

१. सर्वदर्शनसंग्रह, पृ० ३१४

द्रष्टव्य—भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, पृ० ५७०-७१ तथा वैष्णविज्म एवं शैविज्म, आर० जी० भण्डारकर, पृ० ११९-१२४

ईश्वरकी इच्छापर ही कर्मका साफल्य निर्भर है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि फलदानके दो स्रोत हैं—ईश्वर और कर्म। ईश्वरके द्वारा दिये गये फलमें कर्मकी अपेक्षा नही होती; जबकि कर्मके द्वारा मिलनेवाले फलमें ईश्वरकी अपेक्षा रहती है। इस मान्यतासे न तो ईश्वरकी स्वतन्त्रतामें कोई कमी आती है और न जीवनकी कार्यप्रवृत्तिमें। वस्तुतः ईश्वर कार्यनिरपेक्ष है। उसमें कर्म-सम्बन्धी कोई इच्छा नहीं। अतः कर्मादि-निरपेक्ष रहनेपर भी ईश्वर अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करने वाला है। अतएव पाशुपत-दर्शनमें ईश्वरके ज्ञानसे मोक्षप्राप्ति और ईश्वरकी प्रेरणासे कार्योंकी प्रवृत्ति देखी जाती है।[1]

उक्त पाशुपतदर्शनका प्रचार प्राचीन समयमें रहा। शैवदर्शन, जो कि पाशुपत-दर्शनका ही एक विकसित रूप है, तमिल देशमें विशेष रूपसे मान्य रहा है। सातवीं-आठवीं शताब्दीके विद्वान् अप्पारज्ञानसम्बन्ध सुन्दरमूर्त्ति तथा माणिक्कवाचकने इस दर्शनको समृद्ध किया है। जहाँ उत्तर भारतमें शैवागम ग्रन्थ संस्कृतमें निर्मित हैं वहाँ तमिल देशमें तमिल भाषामें।

स्तुतिकुसुमांजलिमें शिवके पंचमुखोंका निर्देश आया है।[2] शिवने अपने पाँच मुखोंसे २८ तन्त्रोंका आविर्भाव किया है। सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष एवं ईशान उनके पाँच मुख हैं।

सद्योजातमुखसे कामिक, योगज, चिन्त्य, करण और अजित—इन पाँच आगम ग्रन्थोंका; वामदेवमुखसे दीप्त, सूक्ष्म, सहस्र, अंशुमान् और सुप्रभेद—इन पाँच आगम ग्रन्थोंका; अघोरमुखसे विजय, निःश्वास, स्वायम्भुव, अनल और वीर—इन पाँच तन्त्रोंका; तत्पुरुषमुखसे रौरव, मुकुट, विमल, चन्द्रज्ञान और बिम्ब—इन पाँच तन्त्र-ग्रन्थोंका तथा ईशानमुखसे प्रोद्गीत, ललित, सिद्ध, सन्तान, सर्वोत्तर, परमेश्वर, किरण और वातुल—इन आठ ग्रन्थोंका आविर्भाव हुआ।

---

१. कर्मादिनिरपेक्षस्तु स्वेच्छाचारी यतो ह्ययम्।
ततः कारणतः शास्त्रे सर्वकारणकारणम्॥
ज्ञानमात्रे वृथा शास्त्रं साक्षाद् दृष्टिस्तु दुर्लभा।
पंचार्थादन्यतो नास्ति यथावत्तत्त्वनिश्चयः॥
स० द० संग्रह पृ० ३१८-१९

२. पञ्चवक्त्रं विशालाक्षं सर्पगोनासमण्डितम्, स्तुतिकुसुमांजलि ११।११६ की टीकाके नोटमें उद्धृत

शैवदर्शनमें तीन पदार्थ मुख्य हैं—पशु, पाश और पति। पशुसे यहाँ अभिप्राय जीवोंसे, पाशका अर्थ जड़ पदार्थोंसे तथा पतिका अर्थ शिवसे है। विद्या, क्रिया, योग और चर्या ये चार चतुश्चरण कहलाते हैं।[1] इन पदार्थोंमें पशु स्वतंत्र नहीं है। पाश अचेतन ही है। इनसे विलक्षण स्वतन्त्र सत्तामान् और चेतन पति है। पशुओंकी (जीवोंकी) विशिष्ट सामर्थ्यके प्रतिबन्धक अनेक पाश हैं। भक्तोंके अधिकारके अनुसार ईश्वर इन पाशोंको मिटाता है। इन सबोंके अवगत कर लेनेपर ही पशु, पति और पाशको समझा जाता है। शिव मुक्तात्मा, विद्येश्वर, स्वतंत्र एवं समस्त कार्योंके विधायक हैं। वे स्वदेहादि कार्योंका निर्माण कर अन्य देहादि कार्योंका निर्माण करते हैं। कर्तृत्व-शक्ति उसमें विशेषरूपसे समाहित है। अनुमानद्वारा महेश्वरका सृष्टिकर्तृत्व सिद्ध होता है।[2]

इस शैवदर्शनके अनुसार शिव, शक्ति और विन्दु ये तीन सिद्धान्त प्रधान हैं। विन्दु ही महामाया है। यही विन्दु या शब्द वाह्य जगत्की सृष्टि करता है। शिवमें दो शक्तियाँ समाहित हैं—समवायिनी शक्ति और जड़-शक्ति। (समवायिनी शक्ति जड़रूपा है और जड़ शक्ति परिग्रहरूपा है)। विन्दुपर आघात करनेसे क्षोभ उत्पन्न होता है। यही सृष्टिका मूल है। इसमें शुद्ध विन्दुको महामाया और अशुद्धको माया कहते हैं। समवायिनी शक्तिसे विन्दु, पशुपति और मलकी कल्पनाकी जाती है। तान्त्रिकमत ज्ञान और कर्मकी अपेक्षा क्रियासे मलका अपसरण मानता है। भगवान्की अनुग्रह-शक्तिके विना यह सम्भव नहीं है। तान्त्रिक भाषामें यही शक्तिपात है। उसे दीक्षा भी कहते हैं। (परतन्त्र मत ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिमें अभिन्न शक्ति मानता है)। इस प्रकार शैवदर्शनमें जीवोंके भेद-प्रभेद, उनका पाशसे सम्बन्ध और मुक्ति आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन आया है।

स्तुतिकुसुमांजलिमें इस शैवदर्शनके अनेक सिद्धान्त समाहित हैं, पर विश्लेषणकी दृष्टिसे स्तुतिकुसुमांजलिमें निहित दर्शन प्रत्यभिज्ञा या त्रिक दर्शन है। इस दर्शनका केन्द्र कश्मीर था। अतिप्राचीन कालसे ही कश्मीर उत्तर भारतके सांस्कृतिक क्षेत्रके अन्तर्गत रहा और उत्तर भारतमें जो धार्मिक आन्दोलन हुए उन सबका प्रभाव अनिवार्य रूपसे कश्मीरपर भी पड़ा है।

---

१. स० द० सं०, पृ० ३२२

२. विवादाध्यासितं सर्वं बुद्धिमत्कर्तृपूर्वकम्।
कार्यत्वादावयोः सिद्धं कार्यं कुम्भादिकं यथा॥ वही, पृ० ३२७

आठवीं शतीके वसुगुप्तके काल तक कश्मीरमें शैवागमोंकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और उसे अतिप्राचीन माना जाता था। वसुगुप्त और कल्लटने नये दर्शनकी रूपरेखा निर्धारित की। सोमानन्द और उनके शिष्य उत्पलने प्रत्यभिज्ञा सूत्रोंकी रचना की है, इसी कारण इस दर्शनका नाम प्रत्यभिज्ञा-दर्शन है। शंकराचार्यने अद्वैतवादका प्रचार किया और उनका यह अद्वैतवादी दर्शन कश्मीरमें अद्वैतवादी शैवदर्शनके नामसे प्रख्यात हुआ। उत्पलके शिष्य अभिनवगुप्तने परमार्थसार नामक ग्रन्थकी रचना की। अभिनवगुप्तके शिष्य क्षेमराजने शिवसूत्रविमर्शिनीमें वसुगुप्तके शिवसूत्रोंकी व्याख्या प्रस्तुत की है। प्रत्यभिज्ञादर्शनसे सम्बन्धित कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

स्तुतिकुसुमांजलिमें सांख्यदर्शनके पच्चीस तत्त्वोंको ही वर्णित किया गया है। यहाँ भेद इतना ही है कि सांख्य-दर्शनमें पुरुष और प्रकृति नित्य हैं, स्वतन्त्र हैं, सांख्यदर्शन द्वैतवादकी प्रतिष्ठा करता है, पर स्तुतिकुसुमांजलिमें अद्वैत शैवदर्शनकी प्रतिष्ठाकी गयी है। शंकरके निर्गुण स्वरूपका विवेचन करते हुए बताया है :

हे सदाशिव ! जैसे आप निर्गुण (प्रकृतिके गुणोंके सम्पर्कसे रहित) हैं वैसे ही मैं भी निर्गुण (पाण्डित्य एवं दयादाक्षिण्य आदि सद्गुणोंसे रहित) हूँ। जैसे आपका परमधाम शून्य (परमज्योतिःस्वरूप) है वैसे ही मेरा भी धाम (गृह) अत्यन्त ही शून्य (अतिदरिद्रताके कारण व्यवहारोपयोगी वस्तुओंसे रहित) है। जैसे आप गौ (वृषभ) में धृति (स्थिति) रखते हैं, वैसे ही मैं भी गौ (वाणी) में प्रीति रखता हूँ। किन्तु कष्ट तो यही है कि (पूर्वोक्त प्रकारसे आपमें और मुझमें समानता होते हुए भी) आप शिव (परमकल्याणकारी एवं आनन्दसुधाके निधि) हैं और मैं अभागा अशिव (सुखविहीन) हूँ।[1]

इस दर्शनको त्रिक कहे जानेका कारण यह बताया गया है कि ९२ आगमोंमेंसे सिद्धा, नामक और मालिनी इन तीनकी प्रधानता होनेके कारण यह त्रिक सिद्धान्त कहलाता है। अथवा पर, अपर और परापरके त्रिकोंका वर्णन रहनेसे यह त्रिक कहा जाता है। एक मान्यता यह भी है कि अभेद-

---

१. त्वं निर्गुणः शिव तथाहमथ त्वदीयं
शून्यं परं किमपि धाम तथा मदीयम् ।
त्वं चेद् गवि प्रविदधासि धृतिं तथाहं
कष्टं शिवस्त्वमशिवस्तु विधिक्षतोऽहम् ॥ स्तुति० ११।९३

वादके आलोकमें अभेद, भेद और भेदाभेद इन तीनोंका वर्णन रहनेके कारण इस सिद्धान्तका नाम त्रिक पड़ा है । स्तुतिकुसुमांजलिमें शिवके उक्त तीनों रूप उपलब्ध होते हैं । सगुण और निर्गुण दोनोंही रूपोंमें उनका विवेचन पाया जाता है । हम शिवके निर्गुण रूपका पूर्वमें उल्लेख कर चुके हैं । अब यहाँ उनके सगुण रूपको प्रस्तुत करते हैं । वस्तुतः कविने तीनों रूपों—अभेद, भेद और भेदाभेद—का सुन्दर चित्रण किया है ।

रूपातीत

यत्ते परं वरद रूपमतीतमेवमार्गं गिरां तदिह कः क्षमते गृणातुम् ।
अग्राहि यत्तु नतलोकमनुग्रहीतुं बालेन्दुलक्ष्म भवता तदिदं गृणामि ॥[१]

अर्थात् हे नाथ ! अव्यक्त (माया) तत्त्वसे भी परे जो आपका निर्विशेष, निराकार मनोवचनातीत स्वरुप है, उसकी स्तुति करनेकेलिए संसारमें कौन पुरुष समर्थ हो सकता है ? क्योंकि ब्रह्मादि देवभी उसका पार न पा सकनेके कारण उसकी महिमाका नर्णन करनेमें असमर्थ हैं । किन्तु आपने भक्तजनोंके प्रति अनुग्रह करनेकेलिए जो चन्द्रकला-विभूषित, जटामुकुटमण्डित और त्रिनेत्रधारी सुमनोहर साकार स्वरूप धारण किया है उसीका थोड़ासा वर्णन करता हूँ ।

सगुणरूप

आस्तां परं यदपरं तदपि त्वदीयं दिव्यं वपुर्नहि महेश विमर्शयोग्यम् ।
यत्किंचिदेव तु विकल्पविकल्प्यमानमानन्दधाम तदपीह भवार्तिभाजाम् ॥[२]

अर्थात् अयि भगवन् ! आपके उस लोकोत्तर मनोवचनातीत निर्विशेष स्वरूपकी महिमा तो कौन कहे ? जो आपका दिव्य सगुण (साकार) स्वरूप है, उसकी ही महिमा बड़े-बड़े दिव्यदृष्टि वाले भी नहीं जान सकते, हमारे सरीखे चर्मचक्षुवालोंका तो कहना ही क्या है ? परन्तु हाँ, लोगोंने अपनी बुद्धिके अनुसार जटा-मुकुट-त्रिनयन-मण्डित, चन्द्रकलासे विभूषित इत्यादि-इत्यादि

१. स्तुति० १९।१
२. वही, १९।२

जैसा वर्णित किया है, उससे ही सांसारिक परितापोंसे सन्तप्त प्राणियोंको परम आनन्द प्राप्त हो जाता है ।

भेदाभेदरूप

मूर्त्तिध्रुवं तव शिवामृतवर्तिरेनामासाद्य यत्कतिचिदश्रुलवाः पतन्ति ।
नश्यत्यघौघपटलं तिमिरं व्यपैति रागः प्रशाम्यति दृशः प्रथते प्रसादः ॥
सत्यं महार्घगुणरत्ननिधानमेतदालम्बनं तव वपुर्विपदर्दितानाम् ।
नो चेन्नखांशुभरकेसरितं किमत्र पादाभिधं युगपदुद्गतमब्जयुग्मम् ॥[1]

अर्थात् हे सदाशिव ! आपकी मूर्ति अवश्य अमृतकी वर्त्तिका (रसायनकी बत्ती) है, क्योंकि ध्यानद्वारा इसका साक्षात्कार कर भावुकोंकी आँखोंसे कुछ आनन्दके आँसू गिरते हैं; पाप-राशि नष्ट हो जाती है, मोह-रूपी अन्धकार दूर भाग जाता है, विषयोंपर आसक्ति एकदम शान्तहो जाती है और नेत्रोंमें प्रसाद (ज्ञानका अनुग्रह) प्रकट होने लगता है ।

हे नाथ ! सांसारिक विपदाओसे पीड़ित हुए आर्त्तजनोंको अवलम्बन देनेवाला यह आपका शरीर बहुमूल्य रत्नोंकी निधि है, यह बात अत्यन्त सत्य है । क्योंकि यदि ऐसा न होता तो फिर इसमें नखोंकी किरणरूपी केसरसे पूरित चरणरूपी[2] कमलयुग्म क्यों उत्पन्न होता ? जहाँ कमलयुग्म होता है वहाँ निधि अवश्य होती है ।

कविने शिवका स्वरूप अद्वैत, द्वैत और द्वैताद्वैतके रूपमें अंकित किया है । उसका कथन है कि उसके आराध्य चन्द्रमाके सामान निर्मल, समस्त शोकोंको दूर करनेवाले, अमृतकी धारा बरसाने वाले, अद्भुत, चमत्कारी, चित्तकी ग्लानि दूर करनेवाले एवं निर्भयता प्रदान करनेवाले हैं । वे सार एवं असारके ज्ञाता, शरणागतके संतापोंके हरणकर्त्ता, सज्जनोंके निर्भयकर्त्ता, करुणार्द्र, अपारसंवित्, समस्त प्रजाके त्राता एवं दिक्-दिगन्तोंको उज्ज्वल

---

१. स्तुति० १९।३-४

२. 'देवताः पादतो वर्ण्या मनुष्या मुखतस्तथा' (अर्थात् देवताओंका वर्णन पादोंसे और मनुष्योंका वर्णन मुखसे आरम्भ करना चाहिये) नियमानुसार कविने यहाँ पहले पादपद्मका ही वर्णन करना आरम्भ किया है ।

करने वाले हैं ।[१] इन वर्णनोंसे प्रतीत होता है कि स्तोता शंकरके रूपको दार्शनिक दृष्टिसे सगुणात्मक या सगुणनिर्गुणात्मक वर्णित करता है। शंकरकी आठ मूर्तियोंका चित्रण करनेसे भी यह ज्ञात होता है कि कविने अपने इस स्तोत्रमें त्रिक दर्शनका पूर्णतया निर्वाह किया है। कविद्वारा वर्णित शंकर सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वैश्वर्यमान हैं। कविने अपने आराध्यका दार्शनिकरूपमें बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है :

सर्पत्कन्दर्पदर्पज्वरभरहरणव्यग्रवर्चःप्रपंच-
प्रत्यग्रब्रध्नचन्द्रज्वलदनलवलत्पक्ष्मलत्र्यक्षवक्त्रः ।
शर्वस्तर्षप्रकर्षश्रमशमनमनस्तर्पणस्वर्णवर्ष-
स्वस्थं तन्वन्सहर्षं जनमनघमघः कल्पयत्वक्षयं वः ।। स्तुति० ३४।१

अर्थात् महा उद्धत कन्दर्पके दर्परूपी सन्निपातज्वरको शान्त करनेमें व्यग्र तेजवाले सूर्य, चन्द्रमा और अग्निसे उज्ज्वलित पलक और नेत्रों वाला महामहिमाशाली वह भगवान् शम्भु अत्यन्त तृष्णाके वेगसे उत्पन्न हुए खेदको शान्त करनेवाली परमानन्दरूपी सुवर्णवृष्टिके द्वारा भावुकोंको अतिशय हर्षित करता हुआ आपको (हमलोगोंको) अक्षय धैर्य प्रदान करे।

उक्त पद्यमें सच्चिदानन्दस्वरूप सत्य, नित्य,आद्यन्तरहित और सर्वशक्ति-समन्वित शिवका निरूपण आया है।

यह कामेश्वर और कामेश्वरीका सामरस्य रूप है। कविने अर्द्धनारी-श्वरका जो वर्णन किया है, वही सामरस्य रूप परमतत्त्व है। यह आत्मा चैतन्यस्वरूप है तथा स्वयं निर्विकार रूपसे जगत्के समस्त पदार्थोंमें अनुस्यूत है। इसीका नाम चैतन्य, परासंवित्, अनुत्तर, परमेश्वर तथा परमशिव है। विश्वात्मकरूपसे परमशिव प्रत्येक वस्तुमें व्याप्त है। इसी कारण स्तोताने अपने आराध्यको व्यापक रूपमें चित्रित किया है।

---

१. महतामतामसमहावपुषं तव भक्तिर्मथितबतां भगवन् ।
महतामतामसमहावपुषं प्रथयन्ति कीर्तिमिह सिद्धगणाः ।।
अध्यास्यते शमजुषा भवतः प्रसादादामोदराजितरुचारु चिरं जनेन ।
दामोदराजितरुचा हरिरञ्जनेन कीर्णं तृणेन मृदुना वनमार्तवेन ।।
स्तुति० ३०।५०-११

बीसवें स्तोत्रमें शंकरकी संहारकारिणी शक्तिका विवेचन करते हुए कविने बताया है कि प्रलयके समय भी यह समस्त ब्रह्माण्ड शिवमें समाहित हो जाता है। वे ही इस समस्त ब्रह्माण्डके स्रष्टा और पालक हैं। कविके इस वर्णनसे तथा उसकेद्वारा प्रयुक्त विभु आदि विशेषणोंसे शंकरका व्यापकत्व सिद्ध होता है :

व्योम प्रचण्डभुजदण्डविघट्यमानतारावलीविरहबन्धुरितान्धकारम् ।
स्वामिन् युगान्तसमयाभिनयेषु येन संभाव्यते पुनरपि प्रचुरप्रकाशम् ॥
दिक्चक्रवाल-मुखरीकरणप्रगल्भप्रावृट्पयोधरगभीररवानुकारि ।
स्वमिन् कठोरहृदयस्य भयं विधातुं भीरोश्च दातुमभयं युगपत्क्षमं यत् ॥[1]

यह नाना विचित्रतासंवलित जगत् परमशिवसे नितान्त भिन्न है तथा उसका स्फुरण मात्र है। यह भी उक्त पद्योंसे ध्वनित होता है।

स्तुतिकुसुमांजलिमें वर्णित शिवस्वरूपसे ज्ञात होता है कि यह आत्मा परमेश्वर बननेमें समर्थ है क्योंकि इसके पास ज्ञान और क्रियाकी शक्तियाँ हैं और जो ज्ञाता और कर्त्ता होता है वह ईश्वर बन जाता है। कवि जगद्धरभट्टने ईश्वरकी कर्त्तृत्वशक्तिका बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है। उन्होंने बताया है कि इस अनादि संसारमें रजोगुणके उद्रेकसे जीव नाना प्रकारके शुभाशुभमिश्रित कर्मोंको करता है। इन कर्मोंके भोगकेलिए सदाशिव पृथ्वी आदि समस्त भुवनोंका निर्माण करते हैं। ईश्वरकी संकल्पशक्तिसे ही भुवनोका निर्माण हो जाता है। कर्त्तृत्वशक्तिका आधार ज्ञान और क्रियाशक्तियाँ हैं। इस प्रकार ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिका चित्रण त्रिक दर्शनके आधारपर सम्पन्न हुआ है। [2]

भगवन्! इस अनादि संसारमें रजोगुणके उद्रेकसे (अत्यन्त रागवश) बाधित होकर जीव शुभ, अशुभ अथवा मिश्रित कर्मोंको करते हैं। इसलिए जीवोंके उन (शुभ, अशुभ अथवा शुभाशुभ मिश्रित तीनों प्रकारके) कर्मोंके भोगकेलिए आप अतिशय करुणापूर्ण होकर जो इन पृथिव्यादि समस्त भुवनोंका निर्माण करते हैं, यह सब केवल संकल्पमात्रसे ही सम्पूर्ण जगत्को प्रकट करने वाले अखिलकोटि ब्रह्माण्डाधीश्वर आपकी एक लीलामात्र

१. स्तुति० २०।१ -१४

२. प्रत्यभिज्ञादर्शनमें उक्त प्रकारकी ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिका प्रतिपादन किया है। स० द० सं०, प्रत्य० का०, पृ० ९-१०

(क्रीडा) है, क्योंकि आपकी स्वाभाविकी (अकृत्रिम), नित्य एवं सचराचर भुवनोंकी आधारभूत क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति (ये दोनों ही) करण-निरपेक्ष हैं अर्थात् कार्यारम्भमें इन्द्रिय अथवा करणोंकी अपेक्षा नहीं रखती हैं।[1]

जीवमें जो ज्ञानशक्ति पायी जाती है, वह देशकाल और वस्तुकी उपाधियोंद्वारा सीमित है। विभिन्न ज्ञेय पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त करनेकेलिए क्रमकी अपेक्षा होती है। जीवात्मा पदार्थोंका ज्ञान क्रमशः ही प्राप्त करता है, युगपत् नहीं। पर ईश्वरका ज्ञान उपाधिरहित है वे समस्त पदार्थोंके एक ही समयमें ज्ञाता एवं द्रष्टा हैं। कवि जगद्धरभटने ईश्वरकी कर्त्तृत्व-शक्तिका विवेचन करते हुए उनकी विशुद्ध ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिका भी निरूपण किया है। वे कहते हैं :

अयि परमेश्वर! कर्त्ताके बिना यह नाना प्रकारकी विचित्र रचना हो नहीं सकती और यह कर्त्ता भी ज्ञान-रहित नहीं हो सकता। यह बात विद्वान् से लेकर बाल-गोपाल पर्यन्त सर्वत्र ही प्रसिद्ध है। इसलिए इस नानाविध जगत्का कर्त्ता अवश्यमेव कोई सर्वज्ञ ही होना उचित है। वह सर्वज्ञ परमात्मा आप ही हैं। तो फिर हाय, अन्य हतबुद्धि लोग आपके विषयमें वृथा ही वाद-विवाद क्यों करते हैं? हाँ, यदि वे पामर ऐसा कहें कि वह परमात्मा क्या किसीकी प्रेरणासे इस भुवनका निर्माण करता है, अथवा स्वयं अपनी इच्छा से? इसमें पहले पक्षमें तो प्रभुकी विभुत्त्वशक्ति ही नहीं बन सकती और दूसरे पक्षमें किस कामनासे वह प्रभु जगत्को रचता है? अर्थात् जो स्वेच्छा शक्तिमय और निरीह है, वह क्यों किसी फलके उद्देश्यसे संसारको रचेगा? और यदि वे लोग कहें कि परमेश्वरकी इच्छा यह है कि कर्मोंके क्षय हुए बिना जीवोंकी मुक्ति नहीं हो सकती; और भोगके बिना कर्मोंका क्षय नहीं हो सकता, भोग आधारके बिना नहीं हो सकता, और वह आधार—शरीर भी भुवनके बिना नहीं हो सकता। इसलिए प्राणियोंकेलिए शरीर तथा भुवन इन दोनोंका निर्माण करना उचित ही है।[2]

इस प्रकार कविने संसारको ईश्वरनिमित्तक माना है।

---

१. स्तुति० ३५।१०-११

२. वही, ३५।१२-१४

स्तोताने अपनी ओरसे शंका उठाते हुए लिखा है कि सृष्टिकी उत्पत्ति उपादान और निमित्त कारणोंके संयोगसे होती है। जगत्‌की उत्पत्तिमें परमाणु आदि उपादान कारण और शुभाशुभ कर्म और काल आदि सहकारी कारण हैं। इन दोनों कारणोंके विना जगत्‌की सृष्टि नहीं हो सकती और परमात्मा यदि उपादान और निमित्त कारणोंके योगसे सृष्टि करता है तो उस परमात्माकी आवश्यकता ही क्या ? जीवोंके शरीर उपादान एवं निमित्त कारणोंके मिलते ही स्वयं उत्पन्न हो जायेंगे जैसे घड़ा उपादान कारण मृत्तिका तथा जल, चक्र एवं सूत्र आदि निमित्त कारणोंके होनेपर स्वयं उत्पन्न हो जाता है। इन उपादान और निमित्त कारणोंके मात्र मिलते ही घटरूप कार्य उत्पन्न होता है। अतएव महेश्वर इस जगत्‌के कर्त्ता नहीं हैं, यह जगत् तो उपादन और निमित्त कारणोंके संयोगसे स्वयं ही उत्पन्न होता है।

इस आशंकाका स्तोताने स्वयं ही उत्तर दिया है जो प्रत्यभिज्ञा-दर्शनके अनुसार है। वह समाधान करता हुआ बतलाता है कि जिस प्रकार मृत्तिका, जल, चक्र एवं दण्ड आदिके मिलनेपर भी घटोत्पत्तिकेलिए कुम्भकारके प्रयत्नकी आवश्यकता होती है, उसके प्रयत्नके विना घड़ेकी उत्पत्ति नहीं होती है। उसी प्रकार वह ईश्वर घटोत्पत्तिमें कुम्भकारके समान जगत्‌के कार्योंका अधिष्ठाता है। कर्त्ताके अभावमें कार्यकी उत्पत्ति नहीं देखी जाती अतः संसारका कोई न कोई कर्त्ता अवश्य है और वह कर्त्ता महेश्वर ही हो सकता है। जगद्धरभट्टने उक्त सिद्धान्तका स्तुतिकुसुमांजलिमें बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। उनका दर्शनके गूढ़ तथ्योंका नियोजन किसी भी नैयायिकको अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है।

जगत्‌की सृष्टिमें जो परमाणु आदि उपादानकारण एवं (शुभ, अशुभ और शुभाशुभमिश्रित) कर्म तथा काल आदि सहकारिकारण हैं इन दोनों कारणोंके विना जगत्‌की सृष्टि करनेमें यदि वह परमात्मा समर्थ नहीं हो सकता है अर्थात् परमात्मा यदि अणु, कर्म एवं काल आदि निमित्तके अनुसार ही शुभाशुभ प्राणियोंको रचता है; तो फिर ऐसे परमेश्वरको माननेकी ही क्या आवश्यकता है ? क्योंकि वे दोनों उपादान और सहकारिकारण ही जीवोंके शरीर एवं भुवनको अपने आप ही रच लेंगे। इस प्रकार प्रभो ! मतिमन्दलोगोंकी बुद्धिको भ्रमित करनेकेलिए तरह-तरहके कुतर्क करनेमें वाचाल बने हुए वे अज्ञानी एवं दुर्बुद्ध लोग समस्त जड़वर्गके अधिष्ठाता, परमप्रकाशमय एवं

चेतनस्वरूप आप करुणासागर परमात्माको नहीं जानते हैं क्योंकि जैसे घटका उपादानकारण मृत्तिका और सहकारिकारण दण्ड, चक्र, जल एवं सूत्र आदि समस्त जड़ पदार्थ कुम्भकारके प्रयत्नके विना घट बनानेमें समर्थ नहीं हो सकते वैसे ही आप अधिष्ठाताके विना इस जड़ जगत्की रचना कदापि नहीं हो सकती।[1]

जीव और संसारके सम्बन्धका वर्णन करते हुए कविने बताया है कि जीव अविद्यासे अन्ध होकर कर्मबन्धन करता है और संसारके चक्रमें पड़ा रहता है। जब प्रत्यभिज्ञाके द्वारा उसे ईश्वरके स्वरूपका ज्ञान कराया जाता है तब वह ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और प्रभुशक्तिसे सम्पन्न हो मुक्त हो जाता है। परमेश्वररूप होना आत्माका स्वाभाविक गुण नहीं है। अतएव उसे प्रत्यभिज्ञाकी प्रार्थना करनी पड़ती है। कवि कहता है कि अनित्यवस्तुओंमें नित्यत्व बुद्धि, अपवित्रमें पवित्रताका भ्रम, अनात्ममें आत्मबुद्धि एवं महान् दुःखमें सुखबुद्धि—इस प्रकार चार तरहसे परिणत हुई और आत्मप्रकाशको नष्ट करनेवाली अविद्या ही इस संसाररूपी महावृक्षकी जड़ है।[2]

---

१. अथोपादानं यद्भवति परमाण्वादि जगत-
स्तथा कर्माऽनेहःप्रभृति सहकार्यंतदुभयम्।
विना सृष्टौ नैव प्रभवति त्वदीशः किममुना
तदेवाऽस्तु व्यक्तं तनुभुवननिर्माणनिपुणम्॥
इतीत्थं मुग्धानामिह मतिविमोहाय कुधियः
कुतर्कप्रागल्भीमुखरितमुखा मूढमनसः।
अधिष्ठातारं त्वां वरद जडवर्गस्य सदयं
न जानन्ति स्वामिन् परमपुरुषं चेतरममी॥
यथोपादानं मृत्तदनु सहकारीह लगुडो
जलं चक्रं सूत्रं वरद जडवर्गोऽयमखिलः।
न यत्नं कौलालं प्रभवति विना कुम्भघटने
तथाधिष्ठातारं न भवति विना त्वां भवविधिः॥ स्तुति० ३५।१६-१८

२. अनित्ये नित्याशामशुचिनि शुचित्वव्यसनिता-
मनात्मन्यात्मास्थामथ महति दुःखे सुखमतिम्।
चतुर्धा दुर्भेद्यामविरतमविद्यां परिणतां
हताशेषस्वाभामभिदधति मूलं भवतरोः॥ वही, ३५।६

इसी अविद्यासे प्राणियोंकी तात्विक दृष्टि दूषित हो जाती है और कार्या-कार्यरूप विवेकके नष्ट होनेसे इस जीवको नाना प्रकारकी योनियोंमें भ्रमण करना पड़ता है। बड़े भाग्यसे जीवात्माको भवभीतिका भेदन करनेवाली समाधिकी प्राप्ति होती है।

अज्ञानी पुरुष विना जाने समझे ही कुत्सित कर्म करता है और उस पापका परिपाक होनेपर भयंकर क्लेशरूपी दलदलमें फंसता है। अत: अविद्यारूपी अन्धकारसे अन्ध बने अज्ञानी प्राणियोंकेलिए समस्त पदार्थोंके तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले ज्ञानरूपी प्रकाशकी नितान्त आवश्यकता है। ज्ञानप्राप्तिकेलिए सदाशिवद्वारा उपदिष्ट शास्त्र ही एकमात्र साधन है। इसीसे धर्मका साक्षात्कार किया जाता है और इसीसे प्राणी जन्ममरणके भयसे मुक्त होता है। इस प्रकार जीव और संसारके संबंधका कारण माया या अविद्याको सिद्ध किया गया है।[3]

अज्ञानी पुरुष बिना जाने-बूझे ही कुटिल कर्म करता है। फिर उस पाप-कर्मका परिपाक होनेपर वह महाभयंकर क्लेशरूपी दलदलमें गिरता है। इसलिए अविद्यारूपी अन्धकारसे अन्ध बने अज्ञानी पुरुषकेलिए समस्त पदार्थोंके तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले ज्ञानरूपी प्रकाशकी नितान्त आवश्यकता है। उस ज्ञानरूपी प्रकाशको प्राप्त करनेकेलिए शास्त्रके अतिरिक्त और कोई समीचीन उपाय नहीं है। और हे प्रभो ! जो आपका उपदिष्ट नहीं, वह शास्त्र नहीं हो सकता। अतएव सज्जन पुरुष सच्छात्रकेद्वारा विवेकपूर्वक हित और अहितका विवेचन करते हुए सन्मार्गमें अनुराग करते हैं और कुमार्गका परित्याग करते हैं। इसलिए वे सज्जन लोग पतित होने योग्य नहीं हैं। वास्तवमें यह जीव सदाशिवकी महती अनुकम्पासे ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिको उपलब्ध करता है। सदाशिवमें अखण्डज्ञान, अपरिमित क्रियाशक्ति एवं अनन्त प्रभुशक्ति समाहित है। कविने सदाशिवके विराट् रूपका बहुतही सुन्दर चित्रण किया है।[२] यह सदाशिव सहस्रशीर्ष, सहस्रचक्षु, सहस्रपैर एवं अत्यन्त विराट्

---

१. नरास्तत्त्वालोके नियतमनया दूषितदृशो
विवेकप्रध्वंसाद्विदधति भवे कन्दुकगतिम् ।
उपासाभिर्लब्ध्वा भवभयभिदं निर्मलधिय:
समाधिं साधिम्ना दधति न पुनर्जन्मविपदम् ॥ स्तुति० ३५।७

२. अविज्ञायैवाऽज्ञ: परुषविषमं कर्म कुरुते
विपाके तस्यासौ निपतति भवक्लेशकलिले ।

(क्रमश:)

और अपरिमित शक्ति सम्पन्न है।[1] जो व्यक्ति विद्या-विवेकको प्राप्त कर लेता है वह अहर्निश सदाशिवके निकट पहुँचता रहता है। कविने इस दशाका हृदयग्राही दार्शनिक चित्रण किया है।

सदसद्के विचारसे रहित मुझ खलने अपना सारा समय निरर्थक ही खो डाला। किन्तु भाग्यवश अब विचार करनेपर इस अत्यन्त नि:सार प्रपञ्चसे मैंने यही एक सार निकाला है और इस महालोभी मनको ईश्वरस्तुतिरूपी वेतन देना निश्चित किया है।[2]

अन्य किसी भी वस्तुका प्रत्यभिज्ञान न होनेके कारण तन्मय भावनाद्वारा अपने सामने स्फुरित होते हुए श्री भगवान् शिवमें ही तल्लीन होता हुआ मैं, इन नूतन स्तोत्रोंको लिखते समय जिस अनिर्वचनीय दशाको प्राप्त होता हूँ, उसे केवल एक मेरे अन्तरात्मा प्रभु ही जानते हैं।[3]

सदाशिव सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों प्रकारकी शक्तियोंसे युक्त हैं। उनमें सृजन, पालन और संहरण ये तीनों ही शक्तियाँ समाहित हैं। कवि जगद्धरभट्टने सदाशिवकी इस शक्तिका बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है:

जिस प्रभुताद्वारा क्रीड़ा करते हुएसे भगवान् सदाशिव इच्छामात्रसे ब्रह्मा,

---

अतो ज्ञानालोकः प्रकटितसमस्तार्थगहनो
महामोहध्वान्तव्यवहितदृशोऽवश्यमुचितः ।।
उपायस्तत्प्राप्तौ भवति न विना शास्त्रमपरो
न शास्त्रं तत्स्वामिन्निह यदुपदिष्टं न भवता ।
विविञ्चन्तः सन्तो हितमहितमेते विदधते
हिते सक्तिं मुञ्चन्त्यहितमिति नार्हन्ति पतनम् ।। स्तुति० ३५।१९-२०

१. सहस्रशीर्षा पुरुषः पुनातु वः सहस्रचक्षुर्भगवान् सहस्रपात् ।
गलेऽङ्घ्रिमूले नयने च निश्चलास्त्रयोऽप्यमी यं पुरुषा उपासते । वही, ३८।१

२. विमर्शशून्येन मया निरर्थकः खलेन कालः सकलोऽतिवाहितः ।
इदं त्वसारादतिसारमुद्धृतं धृतं यदीशस्तुतिवेतनं मनः ।। वही, ३८।३

३. पुरः स्फुरन्तं विमृशन्महेश्वरं विलीनवेद्यान्तरवेदनो दशाम् ।
नवस्तवोल्लेखविधौ स्पृशामि यां ममान्तरात्मा विभुरेव वेत्ति ताम् ।।
वही, ३८।८

विष्णु और रुद्ररूप धारणकर त्रैलोक्यकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय किया करते हैं, उनकी वह निरंकुश और निरनुरोध प्रभुता सर्वोत्कृष्ट अर्थात् कर्त्तुम्, अकर्त्तुम्, अन्यथाकर्त्तुम् समर्थ है।[१] इसी तथ्यका विवेचन कविने अन्यत्र भी किया है। उसने बताया है कि परमेश्वर रजोगुणके प्राधान्यसे ब्रह्मारूप होकर अव्यक्त जगन्नगरको व्यक्त करता है और सत्त्वगुणके उत्कर्षसे विष्णुरूप होकर उसकी रक्षा करता हैं एवं तमोगुणके बाहुल्यसे रुद्ररूप होता हुआ समस्त जगत्का संहार करता है। एक सदाशिव ही अद्वैत रूप है, सकल चराचरमें व्याप्त है, परमशक्तिमान् है और आनन्दस्वरूप है।[२]

इस प्रकार स्तुतिकुसुमांजलिमें प्रत्यभिज्ञादर्शनके सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं। सदाशिव परमेश्वररूप हैं और उन्हींके समाराधनसे जीवात्मा परमेश्वरको प्राप्त करता है।

स्तुतिकुसुमांजलिमें समाहित संसारके क्लेश

समाधिकी सिद्धिकेलिए क्लेशोंका क्षय आवश्यक माना गया है स्तुतिकुसुमांजलिमें कवि जगद्धरभट्टने क्लेशोंका स्वरूप, उनके विनाशकी प्रक्रिया एवं क्रियायोग और भक्तियोगका विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। संसार-चक्रमें पड़े हुए प्राणियोंको अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये पाँच क्लेश दुःख देते हैं। ये पाँच क्लेश ही पाँच प्रकारके विपर्यय ज्ञान हैं। अविद्याके कारण प्राणियोंकी विवेकवृत्तिका विपर्यय हो जाता है। वह संसारबन्धनके कारणोंको हितकारी समझने लगता है। विषयाशा एवं मोहतृष्णा उसे सुखपद प्रतीत होती हैं। अविद्याका क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। यही समस्त क्लेश और पाशोंका कारण है। जीव अविवेक, अज्ञान और सदाचारहीनताके कारण जगद्बन्धनमें पड़ा रहता है और नाना प्रकारके जन्म, जरा और मरणगत दुःखोंको प्राप्त करता है। अविद्याके सम्बन्धमें आचार्योंने

१. किं वापरं द्रुहिणकृष्णहरत्वमेत्य सर्गस्थितिप्रशमनानि जगत्त्रयस्य।
क्रीडन्निव व्यधित येन निरंकुशं तत् स्वातन्त्र्यमप्रतिहतं जयतीश्वरस्य॥
स्तुति० ८।८

२. अव्यक्तं यः समग्रं जगदगनगरं व्यञ्जयत्यब्जजः स-
न्यः संरक्षत्यनन्तः स्मरयमदमनः संहरत्यक्रमं यः।
स त्र्यक्षस्तन्त्रमन्त्रप्रणयनसफलग्रन्थकर्मण्यखर्व-
ज्ञत्वः सद्गम्यवर्त्मप्रकटनपरमः स्पर्शयत्वद्वयं वः॥ वही, ३४।१२

बताया है कि अनित्यको नित्य, अशुभको शुभ, अहितको हित, अनात्माको आत्मा एवं अपवित्रको पवित्र समझना अविद्या है। मनुष्य अविद्याके कारण सांसारिक भोगोंको सुखदायक समझता है और उन्हींके आस्वादनमें प्रवृत्त होता है। जो व्यक्ति प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम-प्रमाणसे वस्तुका ज्ञान प्राप्तकर लेता है उसकी अविद्या सम्बन्धी विपर्ययवृत्ति नष्ट हो जाती है।

अविद्याका महत्त्व और उसकी विशेषता अनेक पद्योंमें वर्णित है। कवि बतलाता है कि जबतक अभिमान, मोह और क्लेश नष्ट नहीं होते तब तक शान्ति नहीं मिल सकती। अनेक अनिवार्य विपत्तियोंके सन्तापसे प्राणी कष्ट उठाता रहता है। अतएव क्लेशोंके दूर करनेका प्रधान साधन सदाशिवकी समरसता है। जो मन, वचन और कायसे एकमात्र शरणागत होकर सदाशिवकी आराधनामें संलग्न रहता है, उसके दुःख नष्ट हो जाते है और वह आनन्दमें मग्न हो जाता है। विषयजन्य सुख मृगतृष्णाके समान हैं। उनसे शान्ति और आनन्दकी प्राप्ति नहीं हो सकती। स्तोताने दुर्वारव्यसन, सन्ताप एवं विभिन्न प्रकारके राग-द्वेषादिको नष्ट करनेकेलिए त्रिक-दर्शनका अवलम्बन ग्रहण किया है। अद्वैत, द्वैत और द्वैताद्वैतरूपमें अवस्थित सदाशिव अपने अनुग्रहसे समस्त प्राणियोंको शान्ति, सुख और आनन्द प्रदान करते हैं। कवि मूलतः स्तोता एवं भक्त है, दार्शनिक चिन्तक नहीं। अतः वह दर्शनके जितने तत्त्वोंको अपने स्तोत्र-काव्यमें निबद्ध करता है उन्हें वह भक्तिरससे परिपूर्ण बना देता। तीनों लोकोंके एकमात्र अधिपति भगवान् सदाशिव भक्तोंकेलिए सब प्रकारसे सुख-शान्ति प्रदान करनेवाले हैं। कवि कहता है :

भगवन्! अब मेरा अभिमान अत्यन्त म्लान हो गया है। कृश शरीर भी अत्यन्त ग्लानि पा रहा है। मन मोहरूपी भँवर में चक्कर खा रहा है और धैर्य भी अस्त हो चला है। क्लेशों (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेशों)के भी नष्ट होनेकी सम्भावना तक नहीं दीखती और मेरी मति इस अपार संसाररूपी दुःखभूमिमें व्यर्थ ही दौड़ रही है।[1]

---

१. परिम्लानो मानस्तनुरपि तनुस्ताम्यतितमां
मनो मोहावर्ते भ्रमति धृतिरस्त व्रजति च।
कथापि क्लेशानामवतरति नोच्छेदपदवीं
दवीयस्यामस्यां भवभुवि मुधा धावति मतिः॥ स्तुति० १०।६८

इस प्रकार कवि परमेश्वरको अनन्तशक्तिसम्पन्न मानता है और उनमें चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया इन पाँचों शक्तियोंका समवाय सिद्ध करता है। उनकी चित्-शक्ति प्रकाशस्वरूपा है, जिसके द्वारा परमशिव प्रकाश्य वस्तुके अभावमें भी स्वतः प्रकाशित होते हैं। परमेश्वर निरतिशय आनन्दका स्वयं अनुभव करते हैं। वे इच्छाशक्तिसे युक्त होनेपर भी स्वतन्त्र हैं। उनकी ज्ञानशक्ति अमर्षरूपा है। इस प्रकार स्तोताने अविद्या या मायाका महत्त्व प्रदर्शित किया है।

त्रिकदर्शनका साधनामार्ग अपनी विशिष्टता लिये हुए है। यह न शुष्क ज्ञानका ही पक्षपाती है और न भक्तिका ही। इसमें ज्ञान और भक्तिका समन्वय है। भक्ति द्वैतवादपर प्रतिष्ठित है और ज्ञान अद्वैतवादपर। जबतक साधनारूप मार्ग रहता है, तब तक अज्ञानमूलक साधनारूपा भक्ति प्रतिष्ठित रहती है। अद्वैत ज्ञानके उदित होते ही साध्यरूपा भक्तिका आविर्भाव हो जाता है। इसीसे क्लेशोंका विनाश होता है। पंचक्लेशोंमें अविद्याका सर्वप्रथम स्थान है। जबतक अविद्याका विनाश नहीं होता, तब तक आनन्द, शान्ति और चैतन्यकी उपलब्धि नहीं हो पाती। कवि जगद्धरभट्टने इन क्लेशोंको दुखदायक बतलाया है।[१]

द्वितीय क्लेश अस्मिता है। पतंजलिने अपने योगसूत्रमें दृक्-शक्ति और दर्शनशक्ति इन दोनोंके एक रूप हो जानेको अस्मिता कहा है।[२] द्रष्टा-पुरुष और दर्शन-शक्ति ये दोनों सर्वथा भिन्न एवं विलक्षण हैं। द्रष्टा चेतन है और बुद्धि जड़। इनकी एकता हो ही नहीं सकती। अविद्याके कारण जीव इन दोनोंकी एकताका अनुभव करता है। इसे ही द्रष्टा और दृश्यका संयोग कहते हैं। यही प्रकृति और पुरुषके स्वरूपकी उपलब्धिका हेतु माना गया है। इस संयोगके रहनेपर भी पुरुष और बुद्धिका भिन्न-भिन्न स्वरूप विचारके द्वारा और सम्प्रज्ञात समाधिके द्वारा समझमें तो आता है पर जबतक निर्बीज समाधिद्वारा अविद्याका सर्वथा नाश नहीं हो जाता तब तक संयोगका अभाव नहीं होता और फलतः इनके शुद्धस्वरूपका अनुभव नहीं होता।

---

१. स्तुति०, १०।७२, ८२, ८३; १२।१४
२. पातंजलयोगसूत्र, २।६

जो साधक उत्साहपूर्वक योगसाधनमें लग जाता है, वह अविद्याके नाश द्वारा संयोगरूप अस्मिता नामक क्लेशका नाश कर कैवल्यकी स्थितिको प्राप्त कर लेता है।

भक्ति और ज्ञानका समन्वय ऐसा मार्ग है, जिससे अविद्या और अस्मिता का नाश सहजमें किया जा सकता है। योगी जहाँ ध्यानपर बल देता है वहाँ स्तोता भक्तिपर। इसी कारण उसने बताया है :

अविद्यादि पाँच महाक्लेशोंद्वारा महान् दुःखदेनेवाला यह विघ्नोंका समूह प्राणियोंको इस संसाररूपी महान् अरघट्टमें डालकर बारम्बार जन्म-मरणरूपी भीषण आपदाओंको उत्पन्न करते हुए बड़े-बड़े महात्माओंके भी विवेकरूपी चक्षुओंको ढँक देता है। इसी कारण सहसा इस संसाररूपी गड्ढेमें प्राणियोंका बार-बार पतन होता रहता है।[1]

सुखकी प्रतीतिके पीछे रहनेवाला क्लेश राग है।[2] जीवको जब किसी अनुकूल पदार्थकी प्राप्ति होनेपर सुखकी प्रतीति होती है तो उसके निमित्तोंमें उसकी ओर आसक्ति हो जाती है। इसी आसक्तिको राग कहते हैं। रागके कारण ही वस्तु प्रिय प्रतीत होती है। संसारकी वस्तुओंमें जो आसक्ति है, वह रागका ही प्रतिफल है। रागकी परिभाषा कोशकारोंके अनुसार प्रणयोन्मादके रूपमें की गयी है। जब किसी वस्तु में प्रेम, स्नेह या प्रीतिकी जाती है तो यह प्रीति या स्नेह रागके कारण ही सम्भव होता है। पदार्थोंके प्रति जो मूर्च्छाभाव है, वह भी रागके कारण है। वास्तवमें भौतिक जगत्के प्रति आकर्षणका एकमात्र आधार रागको माना गया है। रागकी निवृत्ति सदाशिवकी आराधनासे होती है। इसी कारण कविने लिखा है :

जो सज्जन अपने हृदयमें परम प्रकाशमय आपकी भावना करते हैं, वे पुरुष अपने अंतःकरणके मलको स्वयं ही स्वच्छ कर लेते हैं और अपनी महिमासे समस्त दिगन्तोंको पवित्र कर देते हैं एवं अविद्यादि पंच क्लेशों

---

१. अशेषक्लेशौघग्लपनपरिपन्थी प्रकटय-
न्नयं विघ्नव्रातः प्रबलविपदापादनविधिम्।
विवेकाख्यं चक्षुस्तिरयति सतां येन सहसा
भवश्वभ्रे पातः प्रतिपदमदभ्रः प्रभवति ॥ स्तुति० ३५।४

२. पातंजलयोगसूत्र, २।७

अथवा सांसारिक दु:खोंको क्षणभरमें ही तृणोंके समान काट डालते हैं।[१] और इस प्रकार रागक्लेशका विनाश सदाशिवकी आराधनासे सम्भव होता है।

दु:खकी प्रतीति होनेके पीछे रहने वाला क्लेश द्वेष कहलाता है।[२] मनुष्यको जब कभी किसी प्रतिकूल पदार्थमें दु:खकी प्रतीति होती है, तो उसमें तथा उसके निमित्तोंमें द्वेष हो जाता है। अत; द्वेषरूप क्लेश दु:ख-प्रतीतिके पश्चात् या उसके साथ-साथ होता है। वस्तुत; संसारमें दु:खके दो कारण हैं —अहंकार और ममकार अथवा राग और द्वेष। जहाँ राग रहता है, वहाँ माया और लोभ अवश्य रहते हैं। अत: विकारोंके विवेचनके सन्दर्भमें दार्शनिकोंने राग और द्वेषको संसारमें दु:खका कारण माना है। जब हमें किसी वस्तुमें अतिशय अनुराग या द्वेष होता है, तो दु:खकी उत्पत्ति होती है। अत: रागके समान द्वेष भी क्लेश है। जिस प्रकार रागवश व्यक्ति सांसारिक वस्तुओंमें आसक्ति रखता है, उसी प्रकार द्वेषवश संसार की वस्तुओंके प्रति विकर्षित होता है। पतंजलिने राग और द्वेषकी निवृत्ति के हेतु चित्तकी शुद्धिको आवश्यक माना है। यह चित्तशुद्धि यौगिक क्रियाओंके द्वारा सम्पन्न होती है। अत: इन्द्रिय-भोगोंको नि:सार समझकर जो रागद्वेषका त्याग कर देता है, वही सुख एवं शान्ति प्राप्त करता है।[३]

जो परम्परागत स्वभावसे चला आ रहा है एवं जो विवेकहीनोंकी भाँति विवेकशील पुरुषोंमें भी विद्यमान देखा जाता है, वह मरणभयरूप क्लेश अभिनिवेश कहलाता है।[४] संसारके भयोंमें मरणभयरूप क्लेश अनादि कालसे अपना महत्त्व रखता आ रहा है। जितने संसारके जीव है वे सभी जीवित रहना चाहते हैं, कोई भी मरना नहीं चाहता। अत: कीट-पतंगसे लेकर मानव-

---

१ ते पंकमंकगतमात्मनि धावयन्ति
दिङ्मण्डलं च परित: परिवावयन्ति।
क्लेशान् क्षणात्तृणगणानिव लावयन्ति
ये त्वां प्रकाशवपुषं हृदि भावयन्ति॥ स्तुति० ३६।२४

२. पातंजलयोगसूत्र, २।८

३. उमास्वातिप्रशमप्रकरण, २।३१-३२

४. पातंजलयोगसूत्र, २।९

पर्यन्त सभी मरणसे डरकर अपनी रक्षाका उपाय करते हैं। यह मरणभय प्राणियोंके अन्त:करणमें इतने भीतर तक प्रविष्ट है कि विवेकशील व्यक्ति भी इसे छोड नहीं पाते हैं। मृत्युका जितना भय और आतंक एक मूर्ख व्यक्ति को है, उतना ही भय और आतंक एक विवेकशील व्यक्तिको भी है। अत: मरणका भय अभिनिवेश है और यह क्लेश व्यक्तिको सदा आतंकित वनाये रखता है। स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और शब्द सम्बन्धी अभिलाषा यदि किसी कारणवश पूर्ण भी हो जाय तो भी व्यक्तिको शान्ति और सुखकी उपलब्धि मृत्युभयको जीते बिना नहीं हो सकती।

इस प्रकार उक्त पंचक्लेशोंकी निवृत्ति सदाशिवकी आराधनासे ही सम्भव है।

स्तुतिकुसुमांजलिमें प्रत्यभिज्ञादर्शनमें वर्णित छत्तीस तत्त्वोंका निर्देश यत्र-तत्र आया हैं। इनमें शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और आत्मतत्त्वका प्राय: प्रत्येक स्तोत्रमें भक्तिपरक निर्देश किया गया है। इन तत्त्वोंसे परे एक तत्त्व और है जिसे शक्ति-तत्त्व कहा गया है। विश्व इस शक्ति-तत्त्वका उन्मेष मात्र है। शक्तिके साथ शिव सदा सम्मिलित रहते हैं। शक्ति ही अन्तर्मुखी होनेपर शिव है और शिवही बहिर्मुख होने पर शक्ति है। अन्तर्मुख और बहिर्मुख दोनों भाव सनातन हैं। शिव-तत्त्वमें शक्ति-तत्त्व गौण और शिव-भाव प्रधान है तथा शक्तितत्त्वमें शिव-तत्त्व गौण और शक्तिभाव प्रधान है। तत्त्वातीत दशामें न शिवकी प्रधानता है और न शक्तिकी, प्रत्युत दोनोंकी साम्यावस्था है। यही शिवशक्तिका सामरस्य है। स्तुतिकारने अर्द्धनारीश्वरस्तोत्रमें इस सामरस्यका सुन्दर चित्रण किया है: 'जिस अद्भुत रूपमें (भगवान् पार्वतीजीके प्रति) हे प्रियतमे! सांसारिक पाप-तापोंसे सन्तप्त जीवोंका कल्याण करनेकेलिए तुमने अद्भुत लोकोत्तर प्रभुता धारण की है एवं (श्री-भवानीजीका शंकरके प्रति) हे प्रियतम। यह बड़ाही आश्चर्य है कि भवभय-पीड़ित आर्तजनोंके अभिलषित मनोरथोंको पूर्ण करनेकेलिए आपने एक विलक्षण प्रगल्भता धारण की है। इस प्रकार परस्पर अभिन्न भावसे मिले हुए शिव और शिवाका एक ही मुखसे निकला हुआ एक ही वाक्य परस्परमें अन्वित होकर एक दूसरेकी समरसता सिद्ध करता है।'[1]

---

१. **आश्चर्यं तव दयिते हितं विधातुं प्रागल्भ्यं किमपि भवोपतापभाजाम्।**
अन्योन्यं गतमिति वाक्यमेकवक्त्रोद्भिन्नं घटयति यत्र सामरस्यम्॥
स्तुति० २१।८

सामरस्यका चित्रण करते हुए कविने अन्यत्र भी बताया है : "जिस अद्भुत अर्धनारीश्वर रूपमें दोनों शिवों (अर्थात् शिव और शिवा) के हृदयमें जो ऐक्य था, वही ऐक्य फिर उनके वाक्य और शरीरमें भी आ गया (अर्थात् जैसे उनके हृदय अभिन्न थे, वैसे ही वचन और शरीर भी अभिन्न हो गये), क्योंकि सज्जनोंके हृदयमें जो भाव होता है, वही भाव उनके वचनमें भी होना चाहिये और जो भाव वचनमें होता है, वही उनके शरीर अथवा कार्यमें भी होना उचित है; यानी सत्पुरुषोंके हृदय, वचन और कार्य इन सबमें एकता रहती है। जिस रूपमें (भगवान्का देवीके प्रति) 'हे कान्ते ! हे शिवे ! तुम में लगा हुआ यह मेरा मन और शरीर दोनों मेरे हृदयमें अतिशय आनन्द एवं चमत्कार उत्पन्न करते हैं' और (देवीका भगवान्के प्रति) 'हे प्रियतम सदाशिव ! आपमें लगा हुआ यह मेरा मन और शरीर मुझे परम आनन्दित करते हैं', इस प्रकारके ईषद्-हास्यपूर्वक परस्पर एक दूसरेको कहे हुए वचन मुखके सहज स्मितकी सुमनोहरताका विस्तार करते हैं। इस तरह परस्पर एक दूसरे की निरुत्तरता सम्पादन करदेनेमें अत्यन्त पारंगत शिव और शिवाका यह निर्दोष, परममनोहर, उत्तमोत्तम एवं चमत्कारी अर्धनारीश्वररूप आपलोगों के कैवल्य-सम्पादनके लिए हो।"[1]

अर्द्धनारीश्वर रूपमें शिव और शिवा दोनोंके हृदयमें जो ऐक्य था, वही ऐक्य फिर उनके वाक्य और शरीरमें भी आ गया, अर्थात् जैसे उनके हृदय अभिन्न थे वैसे ही उनके वचन और शरीर भी अभिन्न हो गये। शिव जिस प्रकार पार्वतीको आनन्दित और चमत्कृत करते हैं, पार्वती भी उसीप्रकार शिवको आनन्दित और चमत्कृत करती हैं। दोनोंके शरीर, हृदय और मन आपसमें अभिन्न हैं। पार्वती हास्यपूर्वक शिवके प्रति अपनी आसक्ति प्रकट करती है और शिव भी पार्वतीके प्रति। उन दोनोंका यह ऐक्य सामरस्य ही है अन्य कुछ नहीं।

---

१. यत्र ध्रुवं हृदय एव यदैक्यमासीद्वाक्काययोरपि पुनः पतितं तदेव।
यस्मात्सतां हृदि यदेव तदेव वाचि यच्चैव वाचि करणेऽप्युचितं तदेव॥
कान्ते शिवे त्वयि विरूढमिदं मनश्च मूर्तिश्च मे हृदयसंमददायिनीति।
अन्योन्यमभ्यभिहितं वितनोति यत्र साधारणस्मितमनोरमतां मुखस्य॥
उद्यन्निरुत्तरपरस्परसामरस्यसंभावनव्यसनिनोरनवद्यहृद्यम्।
अद्वैतमुत्तमचमत्कृतिसाधनं तद्युष्माकमस्तु शिवयोः शिवयोजनाय॥
स्तुति० २१।२०-२२

संक्षेपमें स्तुतिकुसुमांजलिमें आयी हुई दर्शनभावना कामेश्वर और कामेश्वरीका सामरस्य है। यह अद्वैतरूप है और अद्वैतरूप परमेश्वर ही परमतत्त्व है। निर्विकार शिव विश्वमें अनुस्यूत हैं। शिवा या कामेश्वरीकी शक्ति के द्वारा विश्वका उन्मीलन होता है। विश्वके सृजन, पालन और संहरणमें शिवको किसी उपादानकी आवश्यकता नही होती। उनकी अपनी पाँच शक्तियाँ हैं, चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया। इनके द्वारा वह जगत् को अपनी ही भित्तिपर चित्रित करते हैं। शिव और विश्वका सम्बन्ध दर्पण और विम्बके सम्बन्धके समान है। चिन्मयी शक्तिका स्फुरण ही विश्व है। अत: वह असत्य नहीं। विश्व-सृष्टि से शिवके दो रूप हो जाते हैं। शिवरूप और शक्तिरूप। शिव प्रकाशरूप है और शक्ति विमर्शरूप। शिव 'अहम्' अंशको ग्रहण करता है और शक्ति 'इदम्' अंशको। जिस प्रकार विना दर्पणके मुख नहीं दिखलायी पड़ता, उसी प्रकार भक्तिके विना शिवका प्रकाशरूप भी अवगत नहीं होता। जैसे मधु अपनी मिठासका आनन्द स्वयं नहीं ले पाता, वैसे ही भक्त शिवरूपको अवगत किये विना स्वयं जगत्का आनन्द नहीं ले पाता। शक्तिके अन्तर्निवेशको सदाशिव कहते हैं और वाह्य उन्मेषको ईश्वर।

माया 'अहम्' और 'इदम्' को पृथक् पृथक् कर देती है। वह शक्तिपर आवरण डालती है जिसे कंचुक कहा जाता है। जीवके सर्वकर्तृत्वशक्तिको संकुचित करनेवाला तत्त्व कला है, सर्वज्ञताका संकोच करनेवाला तत्त्व अविद्या है, नित्य-तृप्तित्व गुणके संकोचका कर्त्ता राग है, नित्यत्वको संकुचित करनेवाला तत्त्व काल है और जीवकी स्वातन्त्र्यशक्तिको तिरस्कृत करनेवाला तत्त्व नियति है। ये पाँचो शिवको पुरुषरूपमें लानेकेलिए मायाकी उपाधियाँ हैं। साधक या भक्त अपनी भक्तिसे शिवको अवगत कर लेता है और उनका सामीप्य प्राप्त करनेमें समर्थ होता है।

कविने साधनाके रूपमें ज्ञान और भक्ति दोनोंका वर्णन किया है। साधनारूपी भक्ति अज्ञानमूलक है अत: उसमें द्वैतकी अपेक्षा होती है। ज्ञानके उदयसे साध्यरूपा भक्ति प्राप्त होती है, यही चिदानन्दका लाभ है। वस्तुत: यह त्रिकदर्शन पति-शिव, पशु-जीव और पाश-कर्ममलका भी प्रतिपादन करता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता भक्ति और ज्ञानके समन्वयकी है। यहाँ शिव अद्वैत, द्वैत और द्वैताद्वैत रूपमें वर्णित किये गये हैं।

स्तुतिकुसुमांजलिमें अष्टांगयोग[1] का भी निर्देश आया है। योगी अष्टांग-साधनाद्वारा अक्षय और निरंजन तत्त्वको प्राप्त कर लेता है। यही अक्षय और निरंजन तत्त्व शिव है।

स्तुतिकुसुमांजलिकी भक्तिभावना

मानव जब अपनी विवशता अथवा प्राकृतिक व्यापारोंकी विराटतामें किसी अलक्ष्य शक्तिके प्रभावकी कल्पना करने लगा तभीसे उसमें आस्तिक्य-भावका बीजारोपण हुआ। आस्तिक्य-भाव ही भक्तिका मूलाधार है। जब किसी महती शक्तिके प्रति आस्तिक्य-भाव उत्पन्न हो जाता है और उसकी विराटता में आस्था जागृत हो जाती है तब स्वयमेव इस शक्तिके प्रति प्रेमका प्रादुर्भाव हो जाता है। वास्तवमें भक्तिका मूल कारण आस्तिक्यभाव, श्रद्धा और प्रेम ही है। मानवकी मूल प्रवृत्तियोंमें सुख और दुःखसे ऊपर आनन्दकी प्रवृत्ति मानी जाती है। जब मानव बाहरकी वस्तुओंसे आनन्दप्राप्तिको छोड़ अभ्यन्तरके अनुभवोंसे तृप्ति प्राप्त करने लगता है तो भक्ति-भावना स्वयमेव विकसित हो जाती है। भक्तिकी परिभाषा 'भजनं भक्तिः' व्युत्पत्तिके अनुसार प्रस्तुत की जा सकती है। भक्ति केवल कायिक व्यवहार नहीं इसमें इन्द्रिय और मनका भी सम्बन्ध रहता है। भट्टोजी दीक्षितने 'क्लृपि सम्पद्यमाने च' वार्त्तिकके उदाहरणमें 'भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, सम्पद्यते, जायते वा'[2] उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस उदाहरणसे स्पष्ट है कि भक्ति ही ज्ञानमें परिणत होती है। जैसे मृत्पिण्ड ही घटाकारमें परिणत होता है, उसी प्रकार भक्ति ज्ञान-शुद्ध, सच्चिदानन्द-घन ब्रह्मके साक्षात्कार-रूपमें परिणत होती है। सगुण साकार परमब्रह्ममें आसक्त चित्त जब प्रेमोद्रेकसे द्रवित हो जाता है तब किसी भी प्रमेयकी प्रतीति नहीं होती क्योंकि प्रमेय-प्रतीतिके अभावमें प्रमाण और प्रमाणाश्रय प्रमाताकी प्रतीतिका अभाव होना स्वाभाविक है। अतः सिद्ध है कि जब मन और इन्द्रियाँ आराध्यके गुणोंमें पूर्णतया समाविष्ट हो जाती हैं, तब भक्तिका चरमरूप उपस्थित होता है। अतः भक्ति आनन्द-प्राप्तिका बड़ा साधन है।

---

१. यदि मनुषे यमनियमप्राणायामादि दुर्घटं कर्तुम्।
तदिमं सुगममुपायं श्रय परमपदाप्तये नुतिं शम्भोः ॥स्तुति० ३७।१७

२ सिद्धान्तकौमुदी, विभक्त्यर्थ प्रकरण, १।४।४४ सूत्रके पश्चात् चतुर्थी विभक्तिकेलिए आए हुए वार्तिकोंके अन्तर्गत।

नासदीय सूक्तमें[1] जीवन और जगत् दोनोंके मूलमें कामको प्रधान कहा गया है। कामके दो रूप हैं—प्रिय और अप्रिय। इन्हीं दो रूपोंमें मन जगत् के सूक्ष्म तथा स्थूल शब्द, रूप, रस एवं गन्ध आदि प्रपंचकी विविध दृश्यावलियों एवं व्यापारोंमें संलग्न रहता है। इस प्रकार काम नाना इच्छाओं और वासनाओंमें प्रकट होता है। कामका रूप मंगलसे मण्डित और श्रेयस्कर भी होता है। जो काम मंगलमण्डित और कल्याणका निकेतन है, उससे आनन्दकी प्राप्ति होती है। मानवकी निम्नगा प्रवृत्ति कामके विशुद्ध स्वरूपको कलुषित कर देती है पर उसकी महनीय महत्ता श्रेयस्कर रूपको उपस्थित करती है। जब उक्त मूल प्रवृत्तिसे प्रेरित हो मानवमन आन्तरिक तृप्तिमें संलग्न होता है, तो भक्तिभावना प्रादुर्भूत हो जाती है। अर्थववेदमें भक्तिभावनाकी उत्पत्ति के सम्बन्धमें उल्लेख है।[2]

जीवात्मा अपने समीपमें स्थित प्रकृतिको नहीं छोड़ता; उसके साथ बंधा हुआ अपने पार्श्वस्थ परमेश्वरका दर्शन नहीं करता। इसीलिए वह उसकी अनुभूतिसे पृथक् है, और आनन्दसे बचित है। वह वाह्य पदार्थोंद्वारा आनन्दकी प्राप्ति करना चाहता है, जहाँ आनन्दका लवलेश भी नहीं है। अतएव अपनी समस्त कामनाओंको परमात्मामें समर्पित कर देनेसे कामनाओंका उदात्तीकरण होता है और इस उदात्तीकरणका ही नाम भक्ति है। इस प्रकार भक्तिका क्षेत्र कामके परिष्कारसे ही उत्पन्न होता है। मानव अपनी चित्तवृत्तियोंको जब किसी महती शक्तिके प्रति समर्पित कर देता है, तो उसका यह समर्पणभाव भक्तिके रूपमें प्रकट हो जाता है।

भारतीय साहित्यमें भक्तिभावनाके विकासका एक सुनिश्चित क्रम है। सर्वप्रथम हमें ऋग्वेदमें भक्तिका रूप उपलब्ध होता है। इस युगमें भिन्न-भिन्न शक्तियोंकेलिए भिन्न-भिन्न विशेषताओंकी कल्पना करते हुए भी आर्योंने एकेश्वरवादपर अपनी पूर्ण आस्था रखी है और इसी आस्थाके फलस्वरूप कभी उन्होंने वरुणको सर्वशक्तिमान् कहा, कभी इन्द्रको, कभी विष्णुको और कभी रुद्रको। जिस देवताके नाममें सर्वशक्तिमत्ताका विशेष आरोप हुआ उस

---

१. ऋग्वेद, ८।७।१७

२. अन्ति सन्तं न जहाति अन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥ अथर्ववेद, १०।८।३२

देवताकी महत्ता वृद्धिगत होती गयी। उस युगके मानवने प्राकृतिक व्यापारोंमें सृष्टि, स्थिति और लयका ही महत्त्व प्रतिपादित किया और उनके अधिष्ठाता ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रकी महत्ता प्रतिपादित की। जो अदृश्य नियन्ताकी क्रियासे चमत्कृत हुए अथवा जो अदृष्टको प्रधानता देने लगे, वे यज्ञीय देवताओं की स्तुतिमें प्रवृत्त हुए। पर जिन्होंने उससे एक पग आगे बढ़कर विष्णु और शिव आदिका पूजार्चन आरम्भ किया उनकी भक्तिभावनाका विकास एक नये रूपमें हुआ। शिवकी उपासना रुद्रसूक्तके रूपमें प्रचलित हुई थी, पर आगे चलकर इस उपासनामें और अधिक विकास हुआ। अत: विकासक्रमकी दृष्टिसे वैदिककाल और उत्तरवैदिककालमें भक्तिका रूप भिन्न-भिन्न रूपोंमें उपलब्ध होता है।

भक्तिमार्गके सम्बन्धमें तीसरा युग पुराणका है। इस वाङ्मय में भक्तिमार्गका अनेक दृष्टिकोणोंसे वर्णन किया गया है। पुराण निर्माताओंने वैदिक देवताओंका और उनके सम्बन्धकी कथाओंका जैसा संस्कार किया है वह देखने और मनन करनेकी वस्तु है। उन्होंने देवताओंके गुणों और उनकी क्रियाओंके अनुसार उनके आकार, आयुध, वाहन आदिकी कल्पना की और इस सम्बन्धमें आगम-साहित्यसे पर्याप्त सहायता ली। देवताओंकी आकृति और प्रकृतिके अनुसार ही उनके चरित्र निबद्ध किये गये और उनके गुण, कर्म एवं स्वभावपर दृष्टि रखते हुए उनके नाम, रूप, लीला और धामकी महिमा बतलायी गयी। पुराणकारोंने परमात्माके व्यक्तित्वका ऐसा गठन किया जिससे वह प्रत्येक भावुक भक्तके लिए सभी प्रकारसे तुष्टि प्रदान करनेमें समर्थ है।

पुराणोंमें पाँच आधिभौतिक तत्त्वोंके अनुसार परमात्माके पाँच रूप व्यक्त हुए हैं—सूर्य, गणेश, देवी, शंकर और विष्णु। सूर्यपूजाको नवग्रहपूजाके अन्तर्गत स्थान मिला। कालान्तरमें सूर्यपूजा अभारतीयसी बन गयी। गणपति पूजा तथा देवीपूजा तान्त्रिक लोगोंने अपनायी। गौरी-गणेशको प्रथमपूजाका अधिकारी बना दिया गया। शैव सम्प्रदायका प्राबल्य तो अवश्य रहा, पर उस सम्प्रदायको लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी। सबसे अधिक लोकप्रिय वैष्णव सम्प्रदाय रहा, जिसके अनुयायी अनेक सन्त एवं कवि हुए।

भक्तिमार्गके ज्ञानका अंश निगम साहित्यसे, कर्मका अंश अर्थात् अनुष्ठान-विधि और साधनक्रिया आदिका अंश आगम साहित्यसे तथा भावका अंश नामरूप लीलाधाम-सम्बन्धी पुराणसाहित्यसे पुष्ट हुआ। भारतीय भक्ति-साहित्यकी यही त्रिवेणी तीर्थराज कहलायी।

स्तुतिकुसुमांजलिके आराध्यदेव शिव हैं। इनकी महिमा रुद्रके रूपमें ऋग्वेदमें वर्णित है। यजुर्वेदकी रुद्राष्टाध्यायी तो आजतक शिवपूजामें प्रयुक्त होती है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पाकी खुदाईसे प्राप्त अवशेषोंमें शिवपूजाके प्रमाण उपलब्ध हुए हैं।[१] बताया गया है कि सिन्धुघाटीकी लिंगोपासना उस लिंगोपासनाका एक अंगमात्र थी जो समस्त पश्चिमी एशियामें फैली हुई थी।[२] अतः स्पष्ट है कि भारतवर्षमें शिवपूजाका प्राधान्य था। यह शिवपूजा आगे चलकर पाशुपत-सम्प्रदाय, कालामुख-सम्प्रदाय एवं काश्मीरी शैवसम्प्रदाय आदि रूपोंमें विभक्त हुई। इस प्रकार भक्तिभावनाके क्षेत्रका विकास होता गया।

भक्तिमार्गके सिद्धान्त

श्वेताश्वतर, नारायण, मुण्डक एवं ईश आदि प्राचीन उपनिषदोंमें, महाभारतके शान्तिपर्व एवं भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत तथा पंचरात्र आदि आगम ग्रन्थोंमें भक्ति-सिद्धान्तोंका विकसित रूप उपलब्ध होता है। ईश्वरमें प्रकृष्ट अनुरागको भक्ति कहा गया है। भक्तिकी परिभाषाका विश्लेषण करनेपर भक्तिके निम्न तत्त्व उपलब्ध होते हैं :

१. अनुरागकी प्रबलता
२. परमात्माके प्रति समर्पण-भाव
३. श्रद्धा और आस्तिक्य-बुद्धि
४. अपनी ससीमता एवं आराध्यकी असीमतापर विश्वास
५. लौकिक और पारलौकिक कार्यसिद्धिका आराध्यमें पूर्ण समावेश
६. आराध्यकी द्रवणशीलता एवं
७. भक्त और आराध्यके सम्बन्धका परिज्ञान

अनुरागकी प्रबलता होनेपर आराध्य द्रवित हो जाता है और वह भक्तों की आंखोंके समक्ष उपस्थित हो उसके सन्तापका अपहरण करता है। भगवान्‌की भक्तिकेलिए प्रत्यक्ष स्थूल पदार्थकी आवश्यकता है। अतः वैधी

---

१. विशेष के लिए द्रष्टव्य : ऋग्वेद ऐण्ड मोहनजोदड़ो, इण्डियन कल्चर, अक्तूबर १९३७।
२. मोहनजोदड़ो एण्ड दी इन्डस सिविलाइजेशन—मार्शल, भाग १, पृ० ५२।

भक्तिको पंचांगपूर्ण माना गया है। वैधी-भक्तिका अर्थ है विधिविधानमयी शास्त्रमर्यादापूर्ण भक्ति-पद्धति। इस रागात्मिका भक्तिको अवगत कर भक्त परमानन्दकी प्राप्ति करता है। वैधी-भक्तिका प्रथम अंग है उपासक। यह अपनी शरीर-शुद्धि एवं हृदय-शुद्धि करके स्वयं देवतुल्य हो देवताकी उपासना करता है। शरीर-शुद्धिके अन्तर्गत स्नान, तिलक, माला, आसन एवं पादुका आदि वस्तुओंका उपयोग आ जाता है। हृदय-शुद्धिमें प्राणायाम, मन्त्रजाप एवं त्रिकाल-उपासना आदिकी गणना की जाती है। इन प्रयोगोंसे संकल्प-शक्तिकी वृद्धि होती है, मन स्थिर होता है और स्वाभाविक रूपसे हमारी प्रवृत्तियाँ ईश्वराभिमुख होती हैं। अत: जो उपासक या आराधक भक्ति-भावनाका अवलम्बन ग्रहण करना चाहता है वह अपने हृदय, चित्त और शरीरको शुद्ध करके ही अपने ध्येयमें प्रवृत्त हो सकता है।

भक्तिका दूसरा अंग है उपास्य। जो निर्गुण और निराकार है, उसकी उपासना सम्भव नहीं है। उपासनाकेलिए परमात्माका सगुणरूप ही लिया जा सकता है। आकृति-प्रकृतिहीन उपास्यकी ओर कोई भी आकृष्ट नहीं हो सकता। अत: गुण, कर्म और स्वभावके अनुसार भगवान्के नामरूपकी कल्पना की जाती है। उपासक भगवान्के किसी भी नाम और रूपकी आराधना कर सकता है। स्तुतिकुसुमांजलिमें सदाशिवके रूपकी कल्पना विभिन्न प्रकारसे की गयी है। स्तोता भगवती पार्वती एवं भगवान् शिवके शरणागत-रक्षकरूपकी विशुद्ध विवेचना करता है। वह भगवती पार्वतीसे प्रार्थना करते हुए कहता है: हे माँ! आप मेरे दु:खोंका निवेदन प्रभु सदाशिवसे करनेमें पूर्णतया समर्थ हैं। आपकी यह अनुशंसा मेरेलिए अत्यन्त मंगलमय होगी। आप शरणागतोंकी इच्छा पूर्ण करने वाली हैं। जिस प्रकार वत्सके देखते ही गौके स्तनोंसे दुग्धधारा प्रवाहित होने लगती है उसी प्रकार भक्तके कार्पण्यभावको देखते ही आप द्रवीभूत हो जाती हैं। आप प्रभुके आशयको भली प्रकार जानती हैं अत: आप उन्हें मेरे ऊपर कृपा करनेकेलिए निवेदित कर ही दीजिये।[1]

---

१. देवि प्रपन्नवरदे गुणगौरि गौरि यद्गौरियं परिमितं त्ववतीह किंचित्।
तत्स्वामिने समुचिते समये सुपाकमाकूतवेदिनि निवेदयितुं प्रसीद॥
स्तुति० ११।२७

कवि अपने कार्पण्य-भावको अपने आराध्य शिवके समक्ष व्यक्त करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार देवगङ्गा आपके ललाटमें स्थित अग्निको शान्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकती, उसी प्रकार मेरे हृदयमें स्थित शोकरूपी अग्नि को मेरी यह वाणी आपके अनुग्रहके विना शान्त नहीं कर सकती। दीनरक्षक प्रभो! आपका अनुग्रह ही मेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करने वाला है।[१]

भक्त भगवान्को उपालम्भ देते हुए उनकी महत्ताका उद्घाटन करता है। वह निवेदित करता है 'पुण्योदयसे यह मनुष्य-जन्मरूपी नौका मुझे प्राप्त हुई है और इस नौकाको अवलम्बन देनेवाले आप जैसे आशुतोष करुणाभूषण प्रभु प्राप्त हैं। यदि अब भी मैं संसार-समुद्रमें डूब जाऊं तो इसके लिए मेरा कोई भी उपहास नहीं करेगा, सब आपका ही उपहास करेंगे। अब बतलाइये प्रभो! तब आपकी शरणागत-भक्त-वत्सलता कहाँ रह जायगी। आप स्वामी एवं जगत्के दुःखत्राता हैं। अतः मेरा उद्धार आपके ही द्वारा सम्भव है।'[२]

इस प्रकार स्तुतिकुसुमांजलिमें उपास्यके सगुणरूपका बहुत सुन्दर विवेचन हुआ है। शिवका जैसा विशिष्ट महनीय व्यक्तित्व इस स्तोत्रकाव्यमें वर्णित है वैसा अन्यत्र सम्भवतः उपलब्ध न होगा। भक्तोंकी इच्छाशक्तिके सहारे निर्गुण एवं सगुणरूप निराकार शंकर उनकी समस्त इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिए अष्टमूर्त्तियोंके रूपमें साकार एवं सगुणरूप ग्रहण करते हैं। इनकी वे अष्टमूर्त्तियाँ भक्तोंके मनको परमानन्द प्रदान करती हैं और उनके समस्त कार्योंको सम्पन्न कर देती हैं।

शंकरकी पार्थिव-प्रतिमा विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रतिमाके अनुकूल ही मन्दिर-रचना और उसकी स्वच्छता आदि भी आवश्यक हैं। भक्तकविने आराध्यका स्वरूप निम्नरूपोंमें अंकित किया है :

---

१. भालानलं तव यथा मुकुटस्थितैव शक्नोति नो शमयितुं किल सिद्धसिन्धुः।
तद्वज्ज्वलन्तमनिशं हृदि शोकवह्निं वक्त्रे वसन्त्यपि ममात्र सरस्वतीयम्॥
स्तु॰नि॰ ११।२९

२. मानुष्यनावमधिगम्य चिरादवाप्य निस्तारकं च करुणाभरणं भवन्तम्।
यस्याभवद्भरवशस्तरितुं भवाब्धिं सोऽहम्ब्रुडामि वद कस्य विडम्बनेयम्॥
वही, ११।३२

१. जटाजूटमण्डित, आकाशगंगासमन्वित, भुजगालंकृत, भस्ममण्डित, वृषभवाहनारोही, श्मशानवासी एवं कैलाशाधिपतिके रूपमें। इस रूपमें विरोधी तत्त्व भी समाहित हैं। अमंगलके साथ मंगल, शिवके साथ अशिव, विषके साथ अमृत एवं बीभत्सके साथ सौम्यरूप का समन्वय हुआ है।[1]

२. शिवका मंगलमय रूप[2]—इसमें शिवका पार्वतीद्वारा सेवित, नन्दी आदि गणोंसे परिचारित एवं कैलाशवासीरूप चित्रित किया गया है। भक्तोंकी समस्त कामनाको पूर्ण करने वाला यही रूप है। आशुतोष शंकरका यह रूप कामधेनु है और भक्तकी समस्त इच्छाओंको पूर्ण करता है।

३. सत्त्व, रजस् और तमस् गुणसे मण्डित एवं सृजन और संहरणकी शक्तिसे युक्त त्रिदेवके रूपमें सदाशिवका शक्तिशाली स्वरूप[3]—इस स्वरूपमें शंकर आदिशक्ति माने गये हैं। यही आदि-शक्ति प्रस्फुटित हो त्रिदेवका रूप धारण करती है। सदाशिव अकेले ही मूलतत्त्व हैं और जब इस मूलतत्त्वका विकास होता है, तो वे ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूप अवतरित हो जाते हैं। इस प्रकार स्तुतिकारने सदाशिवके विराट् रूपकी झांकी प्रस्तुत की है। भक्तको आराध्यका यही विराट् रूप अपनी ओर आकृष्ट करता है। इस विराट् रूपमें अनुपम शक्ति छिपी हुई है। इस शक्तिकी एक चिनगारी भी उपासककेलिए उपादेय बन सकती है।

४. कर्तृत्वशक्तिसमन्वित शिव-स्वरूप[4]— यह शंकरका दार्शनिक स्वरूप है जो शैवदर्शनके अनुसार अत्यन्त ग्राह्य है। शंकर ज्ञान, इच्छा और प्रभु-शक्तिसे सम्पन्न होकर जगत्का निर्माण करते हैं। उनसे बड़ी अन्य कोई शक्ति नहीं है। जब सृष्टिका प्रलय होता है तब समस्त जगत् उन्हींमें लीन हो जाता है।

---

१. वारि वारितभवार्ति मूर्ध्नि ते भाति भातिधवले हिमत्विष. ।
तेन ते नतिमिमो दर्विकाङ्गदे देहि देहिषु करावलम्बनम् ॥ स्तुति० १४।१५

२. दिव्या यदि व्यायतकान्तयस्ते गौरीश गौरी शशिनः कला च ।
विघ्नन्ति विघ्नं तिमिराभिधानं तेनाऽहतेनाऽहमुपद्रुतः किम् ॥ वही, २६।२४

३. वही, १९वाँ स्तोत्र

४. वन्दे युगान्तसमयोषितसप्तलोकं लोकोत्तरं जठरमीश्वरभैरवस्य ।
यत्रैति नाभिकुहरं जगदादिसर्गनिर्यज्जनौघनवनिर्गममार्गभङ्गिम् ॥
वही, १९।८

५. हरिहररूप[1]—इस स्वरूपके वर्णनद्वारा कविने शैव और वैष्णव दोनोंका समन्वय स्थापित करनेका प्रयास किया है। शिव और विष्णु पृथक्-पृथक् दो देव नहीं हैं बल्कि एक ही देवके दो रूप हैं और ये दोनों रूप आपसमें इतने घनिष्ठ रूपमें सम्बद्ध हैं कि इन्हें किसी भी तरह पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता।

६. अर्द्धनारीश्वररूप[2]—यह नासदीय सूक्तकी कामभावनाका पूर्ण विकसित रूप है। सौन्दर्य, प्रेम एवं श्रृंगारका एकत्र समन्वय इस रूपमें दिखलाया गया है। भक्तजनोंकेलिए यह रूप कम प्रिय नहीं है। इसी रूपमें सामरस्यकी उपलब्धि होती है जो सामरस्य निर्वाण-स्वरूप है और भक्तोंकेलिए परम आकर्षक है।

७. त्रिपुरदाहक त्र्यम्बकरूप[3]—जब आसुरी शक्तियोंका प्राबल्य हो जाता है और दैवी शक्तियाँ तिरोहित होने लगती है तो शंकरका यह रूप प्रकट होता है। भक्तिभावनाकी दृष्टिसे भी यह रूप कम महत्त्वपूर्ण नहीं। शक्तिकी पूजा सभी करते हैं। शंकरके इस रूपमें विनाशकारी शक्तियोंका समवाय है। जो किसी कार्यको बिगाड़नेका सामर्थ्य रखता है वह उस कार्यको सम्पादित करनेकी भी क्षमता रखता है। अत: उपास्यके विस्तारकी दृष्टिसे शंकरका यह रूप उपादेय है।

भक्तिका तीसरा अंग है पूजा-द्रव्य। इन द्रव्योंमें कलश, शंख, घण्टी और दीप अपनी महत्ताके कारण स्वयं मांगलिक बन गये। कलशमें ब्रह्मा एवं विष्णु आदि सभी देवताओंका आवाहन हो जाता है। हमारा अनुमान है कि कलश वैदिक वरुणदेवका प्रतीक है। शंख एवं घंटानाद आदि अनिष्ट-निवारक, शक्तिवर्द्धक और एकाग्रता लाने वाले होते हैं। दीपक प्रकाशके साथ वायुमण्डलको पावन बनाता है। यह सौन्दर्यका भी सृजन करता है। पंचामृत, यज्ञोपवीत, पुष्प, चन्दन, नैवेद्य एवं ताम्बूल आदि भी पूजाद्रव्योंमें सम्मिलित हैं।

---

१. स्तुति० ४।१-८
२. वही, २१वाँ स्तोत्र
३. वही, ३।१७, ३।५८

स्तुतिकुसुमांजलि स्तोत्रकाव्य है। इसमें भक्तिकेलिए स्तुति एवं आत्म-निवेदन आदिको ही द्रव्य कहा गया है तथा भक्ति सम्पन्न करनेकेलिए आवश्यक गुण और तत्त्वोंपर प्रकाश डाला गया है : हे नाथ ! यदि मैंने पूर्वजन्ममें कोई पाप कर्म किया होता तो आपके प्रति मेरा यह दृढ़ अनुराग कैसे उत्पन्न होता ? यदि केवल पुण्य किया होता तो हृदय में दाह उत्पन्न करनेवाला अत्यन्त दुःसह यह शोकानल मेरे हृदयमें क्यों उत्पन्न होता ? आशय यह है कि मेरे पूर्वजन्मकृत शुभाशुभ कर्मोंका ऐसा उदय है, जिसके कारण मेरा आपके प्रति अनुराग है। इसी अनुरागके फलस्वरूप मैं इस भवसागरसे पार हो जाऊँगा।[1]

कविने भक्तिके साधनोंका भी निर्देश किया है : हे भगवन् ! मन, वचन और कर्मद्वारा नित्य आपकी उपासना करनेवाले, सेवापरायण, शील एवं कुलाचार आदि सद्गुणोंसे अलंकृत एवं अतिविनीत भक्तजनोंपर आप अनुग्रह करते हैं इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। सन्त पुरुष विमुख रहनेवाले और विद्वेषियोंपर भी आर्द्रचित्त होकर कृपा करते हैं। हे प्रभो ! आपकी महिमा अमित है।[2]

✓ उक्त कथनोंसे भक्तिके निम्न साधनोंपर प्रकाश पड़ता है :

१. शील एवं सदाचार की पवित्रता
२. विनीतभाव,
३. मनवचन एवं कर्मानुरक्तता,
४. सर्वतोभावेन समर्पण एवं
५. अपनी लघुताका विश्वास

चौथा तत्त्व है पूजाविधि। स्तुतिकुसुमांजलिकारने मानसिक पूजाके हेतु ध्यान, स्तवन और जपको महत्त्व दिया है। षोडशोपचार भी पूजा-विधिके ही

---

१. प्राक्चेन्मया विहितमाविलमेव कर्म स्वामिन् कुतस्त्वयि ममैष दृढोऽनुरागः।
एकान्तशुक्लमथ चेदतिदुःसहोऽयं शोकानलो हृदयदाहकरः किमन्तः॥
स्तुति० ११।३०

२. स्वामी प्रसादमुपकारिषु सेवकेषु योग्येषु साधुषु करोति किमत्र चित्रम्।
सन्तस्त्वभाजनजनेऽप्यपि निर्निमित्तं चित्तं वहन्ति करुणामृतसारसिक्तम्॥
वही ११।३३

अन्तर्गत हैं। तन्त्रसार विश्वकोषमें आसन, स्वागतप्रश्न, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अन्न, तर्पण, माला, अनुलेपन, नमस्कार और विसर्जनको पूजाविधिमें सम्मिलित किया गया है। आचारचिन्तामणिमें आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, स्नान, वसन, आभरण, चन्दन, सुमन, धूप, दीप, नैवेद्य, वन्दना और विसर्जन ये षोडशोपचार बताये गये हैं।[1]

षोडशोपचारके सम्बन्धमें बहुत मतभेद मिलता है। ताम्बूल, नीराजना एवं परिक्रमा आदि भी षोडशोपचारमें गर्भित हैं।

पंचोपचार और दशोपचार पूजन-प्रणाली भी प्रचलित हैं। पंचोपचारमें चन्दन, अक्षत, धूप, दीप एवं नैवेद्यवाली पूजा प्रशस्त मानी गयी है। जो व्यक्ति षोडशोपचार विधिके करनेमें असमर्थ हैं वे पंचोपचार और दशोपचार विधिका सम्पादन करते हैं।

वैधीविधिका पाँचवा अंग मन्त्र-जाप है। इसमें अपनी-अपनी आराधना-पद्धतिके अनुसार आराधक 'ॐ नमः शिवाय' या 'ॐ' जैसे प्रणव मन्त्रोंका जाप करता है।

स्तुतिकुसुमांजलिमें वैधीभक्तिका निरूपण नहीं है; यह तो रागात्मिका भक्ति है। शुद्ध-भक्तिका उद्देश्य भगवान्में अनन्य प्रेमकी आस्था प्रकट करना है। इसको प्रेमस्वरूपा भी कहा जा सकता है। जब ज्ञान एवं कर्म आदि साधनोंके आश्रयसे रहित और सब ओरसे स्पृहाशून्य होकर चित्तवृत्ति अनन्यभावसे भगवान्में लग जाती है, उस समय संसारके समस्त पदार्थ तुच्छ प्रतीत होने लगते हैं। कवि जगद्धरभट्टने इसी भक्तिका विवेचन अपनी स्तुति-कुसुमांजलिमें किया है। प्रेमरूपाभक्ति अमृतस्वरूप है। इसे प्राप्तकर भक्त अत्यन्त तृप्त हो जाता है। भगवत्प्रेमके प्रकट होनेपर उन्मत्तकी तरह आचरण होने लगता है और प्रेमी आनन्दमें डूबकर प्रभुके रूपमाधुर्य या उनके गुणोंकी उपासना करता है। वह भगवान्को छोड़ अन्य आश्रयोंका त्याग कर देता है। इसी कारण कभी वह उनके गुणों एवं माहात्म्यका वर्णन करता है, कभी रूपका और कभी उनके विग्रहका। जब हृदयमें भगवत्प्रेमका उद्रेक

१. देवपूजा और कुण्डनिर्माण विधान—पृ० २

होता है तो अपार आनन्दकी अनुभूति होती है। कवि जगद्धरभट्टने अपने आराध्यकी भक्तिको समस्त पाप और सन्तापोंका विनाशक माना है। उन्होंने बताया है कि जिस प्रकार प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल गंगास्नान करनेसे पवित्रता प्राप्त होती है, अग्निमें हव्य पदार्थोंके हवन करनेसे कर्म-मल-कलंक दूर होते हैं, आन्तरिक और बाह्य मलोंके नष्ट होनेसे मानसिक चपलता शान्त होती है एवं सदुपदेशद्वारा अविद्यारूपी अन्धकार नष्ट होता है, उसी प्रकार आराध्य भगवान् शंकरकी भक्तिसे आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधि-दैविक सन्ताप नष्ट हो जाते हैं। शंकरकी अनेक विशेषताओंमें जटाजूटमें गंगा, ललाटपर चन्द्रमा, एवं भालमें तृतीयनेत्रका रहना ऐसी प्रमुख विशेषता है जिससे उनकी उक्त आकृति तापत्रयकी शान्तिकेलिए परम उपादेय है।[1]

स्तुतिकुसुमांजलिमें भगवत्प्राप्तिकेलिए कविने अपनी दीन दशाका सुन्दर चित्रण किया है। भक्त जब दैन्यभावसे भगवान्के गुणोंका स्मरण करता है तो वे द्रवीभूत हो जाते हैं। जब तक दैन्यभावका प्रदर्शन नहीं किया जाता है, तब तक सर्वतोभावेन समर्पण भी नहीं हो सकता। अतः इस स्थितिमें भक्त इष्टदेवको आलम्बन-विभावके रूपमें स्मरण करता है। उनके सम्बन्धके सभी विचार एवं सभी सामग्रियाँ उद्दीपन विभाव बनती हैं। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग एवं वेपथु आदि अनुभाव होते हैं। ये अनुभाव भक्तिभावके सूचक भी रहते हैं और प्रवर्द्धक भी।

स्तुतिकुसुमांजलिकार कभी अपने आराध्यसे रूठता है, कभी उन्हें मनाता है, कभी उलाहना देता है, कभी अपना दैन्यप्रदर्शन करता है, कभी अधीर हो उठता है और कभी सुस्थिर चित्तसे उनकी ओर तन्मय हो जाता है। हृदयकी समस्त भावनाएँ भक्तिरसमें परिणत हो जाती हैं। वह आराध्यसे निवेदन करता है कि हे प्रभो! मेरी वाणी प्रौढ़तासे रहित है। मैं आपका स्तवन करनेकी क्षमता नहीं रखता। मैं तो धृष्टतावश ही आपके स्तवनमें प्रवृत्त हुआ हूँ। वास्तवमें मुझ जैसा दीन-हीन आपकी शरणका अधिकारी नहीं है। पर जब मैं आपकी शरणमें आ गया हूँ, और आपके चरणोंका उपासक बन गया हूँ तो मेरा इस प्रकारसे ढीठ होना अस्वाभाविक नहीं। मेरा मन

---

१. दिव्यापगाप्लवनपावकसेवनाभ्यां बिभ्रत्तनुं शुचिमपेतकलंकशंकाम्।
दोषानुषंगरहितस्तिमिरोपशान्त्यै भूयाद् द्विजाधिपतिरीश्वरवन्दितो वः॥
स्तुति० ३।१३

मोहरूपी व्याधिके कारण विषाद और विकारोंसे परिपूर्ण है। यदि आपका स्तवनरूपी रसायन उपलब्ध हो जाय, तो मेरी मोहरूपी व्याधि सहजमें दूर हो जायगी।[1]

कविको भगवान्‌की शरणके समक्ष लौकिक और पारलौकिक सभी सुख हीन प्रतीत होते हैं। वह निवेदन करता है कि मेरा मन षड्‌रसरूपी रसायनका पान नहीं करना चाहता है और न वह चन्द्रमुखीके अविच्छिन्न अधरामृतका ही पान करना चाहता है। केवल आपके चरणोंका सान्निध्य ही मेरे लिए सर्वाधिक सुखदायी है। हे नाथ! मुझे अमरावती भी तुच्छ प्रतीत होती है। कांचनमय सुमेरु पर्वतको देखकर मेरे मनमें कोई विशेष उल्लास जागृत नहीं होता। मैं यदि अरण्यमें भी आपके चरणोंका शरण्य प्राप्त कर लेता हूँ तो यही मेरे लिए सर्वस्व है।[2]

भगवत्कृपा

कविको भगवान्‌की कृपापर बहुत बड़ा विश्वास है।[3] वह कृपाको ही अपने जीवनकेलिए पाथेय मानता है। वह कहता है कि हे भगवन्! जैसे सूर्यकी दीप्त किरणें घने अन्धकारको छिन्न कर देती हैं, उसी प्रकार आपकी

---

१. अत्रापराध्यति गिरो हर धृष्टतेयमेषा निसर्गमुखरा मुखरागिणी यत्।
प्रौढिं पराऽनुपयत्यपि वांछति त्वां स्वामिन् हठादिव परं पुरुषं ग्रहीतुम्॥
यद्वा भवत्यसुलभो भवदाश्रितस्य शस्यः स कोऽपि महिमा न हि मादृशोऽपि।
स्वच्छन्दमन्दमपि यत्र पदं त्वदुक्षा धत्ते मही भवति हेममयी हि तत्र॥
भीष्मो विषादपि विषादपिनद्धमेतच्चेतश्चकार सविकारमकारणारिः।
मोहामयस्तमयमस्तमयं नयामि स्वामिंस्तव स्तवरसायनसेवनेन॥
स्तुति० ९।२-४

२. नास्य स्पृहास्ति सरसाय रसायनाय नायन्त्रितेन्दुवदनावदनामृताय।
निर्बन्धमेति तु भवत्सविधे विधेहि निर्बन्धमन्धकरिपो तदिदं मनो मे॥
आभाति शक्रनगरी न गरीयसी मे प्रीतिं च सिंचति न कांचन कांचनाद्रिः।
जाने परं हर शरण्यमरण्यमेव यत्र त्वदंघ्रिनलिनार्चननिर्वृतिः स्यात्॥
वही, ९।६-७

३. द्रष्टव्य—लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव। नारदभक्तिसूत्र, सूत्र ४०

अत्यन्त स्थिर एवं प्रभावशालिनी कृपा मेरे अहंकारमय गाढ़ अन्धकारको नष्ट कर देती है। भगवन्! जिस कार्यको न सूर्य कर सकता है, न चन्द्रमा कर सकता है और न संसारकी अन्य कोई शक्ति ही करनेमें समर्थ है, उस कार्यको करुणासागर भगवन्! आपकी महती अनुकम्पा ही सम्पन्न कर सकती है।[1]

कविने भगवान्की कृपाको जीवनोद्धारका सबसे बड़ा अवलम्बन माना है। उसका विश्वास है कि यह संसारबद्ध प्राणी अत्यन्त अकर्मण्य है। यदि इसे परमकृपालु भगवान्की कृपाका आधार प्राप्त हो जाय तो इसे शान्ति और सुख प्राप्त करनेमें विलम्ब न हो। भगवान् सदाशिव दयासागर हैं। उनके हृदयमें भक्तके प्रति अपूर्व ममता है। वे भक्तिवश प्रसन्न होकर अपनी कृपाकी वर्षा करते हैं। कविने भगवान्की कृपाके अवलम्बन का विवेचन करते हुए कहा है:

जिसकी कृपाके विना अकर्मण्य होनेके कारण, लोग अपने-अपने कर्ममें नहीं प्रवृत्त हो सकते और जो अतिशय करुणालु प्रभु धैर्यहीन प्राणियोंको भी आस्था प्रदान करता है, वह भगवान् शंकर आपको कृतकृत्य करे।[2]

शरणागतोंकी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले सदाशिवकी कृपा प्रत्येक भक्तको निहाल बना देती है। भगवान् सदाशिव समदृष्टि हैं। वे सभीके ऊपर समानरूपसे अपने अनुग्रहका प्रसाद वितरण करते हैं। कविने आशुतोष शंकरकी अनुग्रहपूर्ण अवस्थाका सुन्दर चित्रण किया है:

नीतिको जाननेवाले और परम चतुर दक्ष प्रजापतिने भी जिस प्रभुको अपने यज्ञमें नहीं वरा, किन्तु पीछे जब अपने अपराधको समझकर उसने नम्रता प्रकट की, तब उस अपराधीपर भी जिस दयासागरने अखण्ड प्रसादानुग्रह किया, वह अतिशय उदार ईश्वर आपकी अभिलाषा पूर्ण करे।[3]

---

१. स्थिरविभा रविभातिरिवोन्मदं मदमयं दमयन्त्यसमन्तमः।
तव दया वद यात्युदयं न चेद् भवतमी बत मीलति मे कथम्॥
स्तुति० २७।१४

२. नायं विनाऽयं विद्धाति लोकः कर्मण्यकर्मण्यतयाभियोगम्।
सत्त्वानसत्त्वानपि नेतुमास्थामर्थः समर्थः स यतोऽभ्युदेति॥ वही, २६।११

३. यज्ञे नयज्ञेन वृतो न पूर्वं दक्षेण दक्षेण शुभे विधौ यः।
तस्याऽऽनतस्याऽनघमुज्झितावसादं प्रसादं प्रददौ दयाब्धिः॥ वही, २६।९

कविने भगवत्कृपाको अमृतप्रवाह कहा है । यह अमृतप्रवाह जिसे प्राप्त हो जाता है, वह सदाकेलिए अमरत्व प्राप्त कर लेता है । भगवान्‌की कृपा मन्दाकिनीके प्रवाहकी तरह शीतल, पवित्र एवं सन्तापका हरण करनेवाली है । जिसे प्रभुकृपा प्राप्त होती है, वह भक्त कृतकृत्य हो जाता है:

हे नाथ ! कृपारूपी अमृतके प्रवाहसे सुशीतल और जरा-मरण को हरनेवाले आपके नेत्र कटाक्षके विद्यमान रहते हुए उन मूढ़ देवताओंने क्षीरसागरके मन्थनकेलिए वृथा ही महान् आयास किया ।[1]

इस प्रकार कविने भक्तिके कृपानामक अंगका विवेचन विस्तारपूर्वक किया है । भगवान्‌की कृपा व्यक्तिके स्वाभिमानको विगलित करती है और उसे अनासक्तभावसे भगवान् सदाशिवमें अनुरक्त रहनेकेलिए प्रेरित करती है ।

भक्तिके अंगभूत नामस्मरणका महत्त्व

भगवान्‌का नामस्मरण उनके गुणोंके समानही भक्तकी अभिलाषाओं और इच्छाओंको पूर्ण करता है । आचार्योंने भक्तिके साधनोंमें नामजप या नामस्मरणको विशेष महत्त्व दिया है । श्रद्धा और विश्वासके साथ भगवान्‌के गुणोंका स्मरण या नामका चिन्तन करनेसे अन्तरात्मा पवित्र हो जाती है । हमारा मन इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होता है और रम्य दृश्य उसे प्रिय मालूम पड़ते हैं । अतः विषयासक्तिको दूर करनेकेलिए सदा-शिवका ध्यान, चिन्तन, कीर्तन, भगवत्सेवा एवं सत्संग आवश्यक साधन माने गये हैं । नारदने अपने भक्तिसूत्रमें भगवान्‌के गुण-श्रवण और कीर्तनको आवश्यक साधन माना है ।[2]

विद्वानोंने भक्तिपथके तीन साधनोंका वर्णन किया है—विषयासक्तिका त्याग, सत्संग और भगवन्नामस्मरण ।

इन उक्त साधनोंका ही विस्तृत रूप सदाचार-पालन, भगवत्गुणकीर्तन, सन्तसेवा, तीर्थाटन एवं भगवान्‌के प्रति सर्वतोभावेन समर्पण आदि हैं ।

---

१. सत्येव दृग्विलसिते करुणामृतौघशीते जरामरणहारिणि तावकीने ।
नाथ व्यधायि विबुधैरबुधैर्मुधैव दुग्धोदधिप्रमथनेऽनवधिः प्रयासः ।।
स्तुति० १९।२०

२. लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात् । नारदभक्तिसूत्र, सूत्र ३७

श्रीमद्भागवतमें भक्तिके अंगोंका विवेचन बहुत ही सुन्दर रूपमें आया है। बताया गया है कि भगवान्‌की अमृतके समान कल्याणमयी कथामें श्रद्धा, निरन्तर उनके नाम और गुणोंका कीर्तन, उनकी पूजामें पूर्ण निष्ठा, स्तोत्रोंके द्वारा उनकी स्तुति, उनकी सेवामें निरन्तर आदर, सम्पूर्ण अंगोंसे उनको नमस्कार, उनके भक्तोंका विशेषरूपसे पूजन, समस्त प्राणियोंमें उनका दर्शन, उनकेलिए ही समस्त लौकिक कार्योंका सम्पादन, उनके गुणोंका कथन, मनको उनमें ही अर्पण कर देना, समस्त कामनाओंका त्याग, धन-भोग और सुखोंका त्याग, शास्त्रोक्त कर्मोंका सम्पादन एवं आत्मनिवेदन आदि प्रभु-भक्तिके प्रमुख साधन हैं।[1]

स्तुतिकुसुमांजलिकारने भक्तिके साधनोंमें नामस्मरण, सत्संग और विषयत्यागको अधिक महत्त्व दिया है। कवि भगवान्‌के नामस्मरणका महत्त्व बतलाते हुए कहता है :

वे धन्यात्मा अपने सुनिर्मल पुण्यको परिपुष्ट करते हैं और दुष्कर्मरूपी कीचड़को मनमें सुखा डालते हैं एवं महान् विरोधी क्रूर लोगोंको भी वे संतुष्ट कर देते हैं, जो विवेकीजन आपके शिव ! शिव ! ऐसे पवित्र नामकी ध्वनि करते हैं।[2]

वह भगवान् के भक्त-हृदयमें निवासके महत्त्वका वर्णन करते हुए कहता है :

स्वामिन् ! दयालु आप यदि इस हृदयमें सदा विराजमान रहें तो फिर यह काम-क्रोधादि विपत्तियोंकी टोली मनुष्यके सम्मुख आ ही कैसे सकती है ? और यदि वह सम्मुख ही न आये तो फिर बुद्धिमान् पुरुष भी असत्कर्मोंमें क्यों प्रवृत्त हों ?[3]

आत्मनिवेदन

आत्मनिवेदन भक्तिका एक अंग है। जो व्यक्ति अपने हृदयकी समस्त बातोंको भगवान्‌के समक्ष प्रस्तुत कर देता है, उसका त्रिताप दूर हो

---

१. भाग० ११।१९।२०-२४

२. ते निर्मलं सुकृतमात्मनि पोषयन्ति दुष्कर्मकर्दममलं हृदि शोषयन्ति ।
क्रूरान् विरोधविधुरानपि तोषयन्ति ये नाम ते शिवशिवेत्यभिघोषयन्ति ॥
स्तुति० ३६।२६

३. यदि भवान् विदधीत हृदि स्थितिं व्यसनसम्पदसौ प्रसरेत्कथम् ।
यदि न सा प्रसरेत्प्रसजेत्कथं बुधजनोऽप्यसमंजसकर्मसु ॥ वही, १०।८

जाता है। कविने आत्मसमर्पणकी भूमिकामें स्थित हो अपना हार्दिक निवेदन प्रस्तुत किया है :

हे नाथ! जो अपनी सूक्तियोंको आपके सम्मुख निवेदन करते हैं, वे लोग महावैरसे भरे हुए लोगोंके भी चित्तको खिन्न नहीं करते और हृदयमें दृढ़ अर्गलाके समान मोह-पटलको विदीर्ण कर देते हैं एवं कोमल मतिवालोंको भी अपना काव्य-कौशल बतला देते हैं।[1]

कवि भगवान्के औदार्यातिशयसे प्रभावित है और उनकी सम्पत्तियोंका महत्त्व बतलाता है। वह कहता है कि भगवान्के चरणोंमें देवगण अपने मुकुटके मणियोंको घर्षित करते रहते हैं जिससे उनके चरण लाल अरविन्दके समान रक्त हो जाते हैं। जो प्रभुकी चरणरजको अपने मस्तकपर धारण करते हैं, मुखसे उनके सुन्दर नामका उच्चारण करते हैं एवं हृदयमें उनके गुणोंका स्मरण करते हैं, वे व्यक्ति शिवधामको प्राप्त कर लेते हैं। भक्ति-विभोर हो कवि भगवान् शिवको पुकारते हुए निवेदन करता है :

'हे शिव! हे कल्याणदायिन्! हे शंकर! आप मुझ गतिहीन दीनको शरण दीजिए' इस प्रकार जो वाचाल पुरुष बार-बार प्रभुको पुकारता है, उसके सब दिन सफल हो जाते हैं और उस भाग्यवान्को शिव-सायुज्य (मोक्ष) भी कर-बदरवत् हस्तगत हो जाता है।[2]

कवि भगवान्की स्तुतिकी प्रशंसा करता हुआ कहता है कि जैसे कोई पुरुष लज्जा, सौशील्य एवं लावण्यादि सद्गुणोंसे अलंकृता सती अंगनाको पाकर कृतार्थ हो जाता है, वैसे ही मैं भी ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणोंसे अलंकृत इस सुमनोहर वाणी (स्तुति)से कृतार्थ हो गया हूँ और उसके प्रतापसे मुझे यह नीरोग और स्थिर शरीर एवं परमेश्वरमें दृढ़ भक्ति प्राप्त हुई है।[3]

---

१. ते विग्रहोग्रमनसोऽपि न खेदयन्ति मोहं दृढार्गलनिभं हृदि भेदयन्ति।
स्वं कौशलं मृदुमतीनपि वेदयन्ति सूक्तानि ये तव निजानि निवेदयन्ति॥
स्तुति० ३६।१२

२. शिव शिव शंकर शंकर भव गतिरिति यः प्रलापमुखरमुखः।
तस्य हि सफला दिवसाः शिवसायुज्यं च हस्तगतम्॥ वही, ३७।४

३. अहो कृतार्थोऽस्मि मनोभिरामया गिरा गुणालंकृतयेह रामया।
तनुः स्थिरेयं ध्रियते निरामया भवे च यद्भक्तिरभंगुरा मया॥ वही, ३८।६

प्रपत्ति

भक्तिका सर्वोत्कृष्ट अंग प्रपत्ति अर्थात् भगवान्‌की शरणप्राप्ति है। जो भगवच्चरणोंका आश्रय ग्रहण कर लेता है वह शीघ्रही समस्त कामनाओंसे रहित हो प्रभुके धामको प्राप्त करता है। कवि जगद्धरभट्टने प्रपत्तिका अनेक स्थानोंपर सुन्दर निर्देश किया है। उनका विश्वास है कि जो प्रभुकी शरण में पहुँच जाता है वह फिर संसारके कष्टोंको प्राप्त नहीं करता है यतः भगवान्‌की शरण महाकल्पवृक्ष है। जिसे प्रभुकी शरण प्राप्त हो जाती है, उसकेलिए लौकिक व्यक्तियोंके समाराधनकी तो बात ही क्या, त्रिदेव भी आराध्य नहीं रहते। कैलाशवासी सदाशिव भगवान् ही भक्तकेलिए एक-मात्र शरण हैं। कवि भगवान्‌के शरणागतवत्सल रूपका चित्रण करता हुआ कहता हैं :

हे भगवन् ! शरणागतकी सब प्रकारसे रक्षा करने वाले, दयासागर आपने मेरे प्रति कृपारूपी अमृतसे आर्द्र और परम पूजनीय एवं माताके समान हित करनेवाली अपनी करुणापूर्ण दृष्टि अवश्य ही डाली है। इसीलिए तो मैं अपने इस दया-दाक्षिण्यादि सद्गुणसम्पन्न अन्तःकरणमें आपके दर्शनोंकी आशासे मृत्यु और रोगोंको नष्ट करनेवाली आपकी यह स्तुति कर रहा हूँ।[1]

कविने संसाररूप दारुण दावानलसे शान्ति प्राप्त करनेहेतु शंकरकी स्तुति, चिन्तन और पूजन इन तीनोंको अनिवार्य कहा है और अष्टमस्तोत्रमें प्रपत्तिका ही महत्त्व विवेचित किया गया है। कविने अनेक रूपोंमें भगवान्‌की शरण ग्रहण करनेकी इच्छा व्यक्त की है :

जिस शरणागतवत्सलने मानो श्वेत पक्षको अपने बायें नेत्रमें आश्रित चन्द्रमाके उदयका और काले पक्षको उसके क्षयका हेतु समझकर श्वेतनामक

---

१. मयि ध्रुवं दृग्भवता बतावता कृपामृतार्द्रा महिता हिताहिता।
अतस्तवास्तप्रमयामया मया कृता नुतिः सातिशयाशयाशया ॥ स्तुति० ७।७

राजाको अपनी दयापूर्ण दृष्टिद्वारा अनुगृहीत किया और विपक्षी काल(यमराज) को दृष्टिद्वारा ही भस्म किया, उस विभुकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।[1]

काम, क्रोध, मोह एवं बुद्धिनाश आदि भगवान्के गुणस्मरण और शरण-प्राप्ति के अभावमें ही सम्भव हैं। जो भगवान्का अवलम्बन ग्रहण कर लेता है, उनकी शरणमें पहुँच जाता है, वह धन्य हो जाता है। बत्तीसवें स्तोत्रमें कविने भगवान्के शरणागत-उद्धारक रूपका चित्रण किया है। उस स्तोत्रकी अंन्तिम पंक्ति 'चतुरमुद्धर हर जगद्धरमशरणं शरणागतम्' द्वारा प्रपत्तिका रूप प्रस्तुत किया गया है। कविने भगवान्को अपनी हार्दिक व्यथा निवेदित करते हुए उन्हे वरद एवं विपत्तिमर्दक कहा है। वास्तवमें शंकर हैं भी शरणागतवत्सल। कवि कहता है :

हे स्वामिन् ! आपसे अपनी व्यथाको निवेदन करने वाले, अतीव पीड़ित और खेदरूपी नूतन विपदासे ग्रस्त हुए मुझ दीनको आनन्दित कीजिए। प्रभो, विपत्तिको दूर कीजिए। नाथ, आप इतने निर्दय क्यों हो गये हैं? हे उदारकीर्तिशाली प्रभो! मलिन हृदयको विशुद्ध करनेकेलिए विमल बोधरूपी नदीके तुल्य अपनी अनुग्रह-दृष्टि अर्पित कीजिए। हे हर! अनाथ एवं शरणागत जगद्धरका शीघ्र उद्धार कीजिए।[2]

जगद्धरभट्टने भगवान्के अनुग्रह,[3] सर्वस्व-समर्पण,[4] स्तुति-प्रार्थना[5] एवं पूजनका महत्त्व[6] अनेक पद्योंमें प्रतिपादित किया है। इसमें संदेह नहीं कि

---

१. श्वेतं विधोरुदयहेतुमवेत्य पक्षं कालं च यः क्षयकरं दृशमाश्रितस्य।
श्वेतं दयादिशदयाशु दृशानुगृह्य कालं दृशैव नयति स्म शमं विपक्षम् ॥
स्तुति० ८।१६

२. वरद नन्दय विपदमर्दय किमिति निर्दयतेदृशी
कृतनिवेदनमतुलवेदनमुदितखेदनवापदम्।
दिश यशोधन हृदयशोधन-विमलबोधनदीं दृशं
चतुरमुद्धर हर जगद्धरमशरणं शरणागतम् ॥ वही, ३२।७

३. वही, ११।३३

४. वही, ११।३५

५. वही, ९।३१

६. वही, ९।३४

इनके भक्तिमार्गका स्वरूप शास्त्रीय है। प्रपत्तिका स्वरूप उन्होंने अनेक पद्योंमें निबद्ध किया है।

भक्तियोगका ऐसा सुन्दर विवेचन अत्यत्र उपलब्ध न हो सकेगा। भक्त भगवान्‌का आशीर्वाद प्राप्तकर अमोघ शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। करुणापूर्ण हृदयसे निकली हुई प्रार्थना[1] ही कल्याणकारिणी हो सकती है। भगवान् भक्तकी प्रार्थना सुनते ही उसके कष्टोंका दमन करनेकेलिए तैयार हो जाते हैं। सदाशिव ही भक्तोंके विजयदाता और मंगलकारक हैं।

इस प्रकार कविने अपने इस स्तुतिकाव्यमें ध्यान, नामस्मरण, गुण-श्रवण एवं कीर्तन आदिका विशद प्रतिपादन किया है।

१. स्तुति० ११,१४, १२०, १३३.

पंचम अध्याय

स्तुतिकुसुमांजलिका काव्यमूल्य एवं उसकी रस-भाव-योजना

स्तुतिकुसुमांजलिके काव्यशास्त्रीय मूल्यांकनके निर्धारण हेतु उसमें प्रतिपादित जीवनके स्थायी मूल्यों, तथ्यों एवं सिद्धान्तोंपर पूर्वमें विचार किया जा चुका है। इस अध्यायमें सौन्दर्यशास्त्रीय प्रतिमानोंका विवेचन करते हुए महाकाव्योचित स्वाभाविक रस-भाव-तत्त्व, गीतिकाव्योचित माधुर्य, स्तोत्रकाव्योचित तन्मयता एवं कथाकाव्योचित रोचकतापर विचार करना आवश्यक है।

शब्दालंकार, अर्थालंकार, रस, शब्दशक्तियाँ, प्रतीक, बिम्ब, छन्दोयोजना एवं सौन्दर्य प्रभृति समस्त काव्यतत्त्व हमारे इस अध्ययनीय स्तोत्रकाव्यमें समाहित हैं। आचार्य भामहने शब्द, छन्द, अभिधान, अर्थ, इतिहासाश्रित कथा, लोक, युक्ति और कला—इन आठ काव्योपयोगी तत्त्वोंको काव्यवैखरीके रूपमें प्रस्तुत किया हैं।[1] इनकी दृष्टिसे जिस कृतिमें इस तत्त्वाष्टककी साधना समाहित रहती है, वही कृति काव्यमें परिगणित की जाती है। उनका कथन है कि सत्कवित्वके विना वाणीमें वैदग्ध्य नहीं आ सकता और विना वैदग्ध्यके कोई भी कृति चमत्कारपूर्ण नहीं हो सकती।[2]

भरतमुनिने काव्यकेलिए दशगुणों[3] को उपादेय माना है। पर भामहकी तत्त्वग्राहिणी प्रतिभाने प्रसाद, माधुर्य और ओज इन तीन गुणोंको ही अपनी स्वीकृति प्रदान की है।[4] इन्होंने वक्रोक्तिको काव्यका निष्पादक तत्त्व बतलाकर उसे काव्यकेलिए अनिवार्य और व्यापक गुण बतलाया है।[5] यद्यपि वक्रोक्ति-

---

१. काव्यालंकारसूत्र, १।९

२. रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता। वही, १।४

३. श्लेषः प्रसादः समता समाधिः माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते॥
नाट्यशास्त्र १७।९६

४. काव्यालंकार, २।१

५. वाचां वक्रार्थशब्दोक्तिरलंकाराय कल्पते। वही, ५।६६

सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा कुन्तकने की है किन्तु भामहने उसका निर्देश किया है। त्रिकालदर्शिनी प्रतिभा ही काव्य-चमत्कारका कारण हैं। निर्दोषता भी काव्यका एक मूल्य है पर इसके साथ गुणका सद्भाव आवश्यक है। आचार्य भामहके मतमें गुण, अलंकार, दोषमुक्तता एवं वक्रोक्ति आदि सत्काव्यके आवश्यक अवयव हैं।[1]

आचार्य दण्डीने बताया है कि काव्यकृतिमें मौलिकताका निर्माण कविकी आहार्य प्रतिभापर निर्भर है। श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कान्ति और समाधि ये दश गुण वैदर्भी मार्गके प्राण हैं।[2] रीति और गुणका सम्बन्ध स्थापित होनेपर ही वैदर्भ काव्यको सत्काव्य कहा जाता है।[3]

आचार्य रुद्रट् काव्यमें चारुत्वका समावेश अलंकारोंद्वारा मानते हैं। रुद्रट्के टीकाकार नमिसाधुने लिखा है कि दोषके त्याग ओर सारग्रहणका अभिप्राय है अलंकार-प्रयोग। निर्दुष्ट तथा अलंकार-युक्त रचनाशक्ति अथवा कवि-प्रतिभा, व्युत्पत्ति, निपुणता एवं प्रभूत अभ्यासके कारण ही महनीय कृतिका प्रणयन होता है।[4] व्युत्पत्तिके हेतु छन्दःशास्त्र, व्याकरण, नृत्यशास्त्र, कोशशास्त्र आदिका सम्यक् ज्ञान अपेक्षित है। इन ग्रन्थोंके अध्ययन और मननसे कृतिके प्रणयनमें गम्भीरता उत्पन्न होती है एवं रम्यता आती है। अतः ये दोनों ही काव्य-मूल्यके सबसे बड़े आधार हैं।[5]

वामनने काव्यशास्त्रके प्रतिमानोंका विवेचन करते हुए निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं :

१. काव्यका सौन्दर्य शब्द और अर्थमें निहित है।[6]

---

१. काव्यालंकार, ३।५४

२. काव्यादर्श १।४१-४२

३. वही, १।४३-४४

४. काव्यालंकार १।४ की टीका

५, वही, १।१८

६. काव्यशब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्त्तते।
काव्यालंकार सूत्र, १।१।१ १

२. माधुर्य आदि गुण काव्य-सौन्दर्यके मूलकारण होनेसे काव्यके नित्य धर्म हैं।[१] उपमा आदि अलंकार उसके उत्कर्षवर्द्धक होनेके कारण उसके अनित्य धर्म हैं।[२] अतः काव्यमें गुण और अलंकारका समावेश आवश्यक है।

३. गुणमयी पदरचना आवश्यक है। गुणके दो भेद हैं—शब्दगुण और अर्थगुण। शब्द-गुणमें वर्णयोजना एवं समासपर आश्रित सौन्दर्य समाहित रहता है और अर्थगुणमें सार्थक एवं उपयुक्त शब्दचयन एवं रागात्मक तथा प्रज्ञात्मक तथ्योंके सुचारु क्रमबन्ध आदि अपेक्षित हैं। अतएव वर्णयोजना शब्दों, भावों एवं विचारोंके कुशल प्रयोगपर आश्रित है।

४. चित्तस्फीतिके हेतु उक्त चमत्कारोंकी स्थिति एवं दोषमुक्ति।

ध्वनिकारने सरस काव्यकेलिए निम्नलिखित प्रतिमान माने हैं :

१. वाच्यसे अधिक रमणीय व्यंग्य एवं व्यंजक शब्दोंका समावेश।[३]

२. रम्य भावोंको उद्‌बुद्ध करनेवाली उक्तियाँ जिनमें बुद्धिके साथ चित्तको भी चमत्कृत कर देनेकी क्षमता हो। प्रकारान्तरसे इसे अर्थान्तरसंक्रमितव्यंग्य कहा जाता है।[४]

३. वाच्य अर्थके साथ व्यंग्यार्थमें भी रमणीयताका समावेश।[५]

४. रसके आश्रयभूत माधुर्य, ओज और प्रसादगुणोंका समावेश। माधुर्यगुण-द्वारा श्रृंगाररसकी अभिव्यंजना, ओजगुणद्वारा रौद्रादि रसोंकी अभिव्यंजना एवं प्रसादगुणद्वारा समस्त रसोंकी अभिव्यंजना।[६] आचार्य कुन्तकने किसी भी काव्यकेलिए षड्‌विध वक्रताका समावेश अनिवार्य माना है।[७] वर्ण-चमत्कार, शब्दसौन्दर्य, विषयवस्तुकी रमणीयता, अप्रस्तुतविधान एवं प्रबन्ध-

---

१. काव्यशोभायाःकर्तारो धर्माः गुणाः, काव्यालंकारसूत्र ३।१।१,
२. तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः, वही ३।१।२
३. प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु ॥ ध्वन्यालोक, १।४
४. वही, २।१
५. वही, २।४
६. वही, २।७, ९-१०
७. कविव्यापारवक्रत्वप्रकाराः भवन्ति षट्। वक्रोक्तिजीवितम्, १।२

कल्पना ये षड्विध[१] वक्रोक्तिके अन्तर्गत आते हैं। पदपूर्वार्द्ध वक्रता और पदपरार्द्ध वक्रतामें प्रातिपदिक और आख्यातोंके विन्यासवैचित्र्यके साथ प्रत्यय-विन्यासवैचित्र्यको भी काव्यबन्धकी शोभाका कारण माना गया है। रस, अलंकार, उक्तिवैचित्र्य, औचित्य एवं मार्गत्रय – सुकुमार, विचित्र और मध्यम भी काव्यचमत्कारके सृजनकेलिए अपेक्षित हैं।[२]

आचार्य मम्मटने ध्वनिसिद्धान्तका पुनर्मूल्यांकन प्रस्तुत किया। इन्होने शब्द-शक्ति, रस एवं अलंकारके प्रयोगपर नवीन ढंगसे विचार किया है। उन्होंने शब्द और अर्थ दोनोंका दोष-रहित, माधुर्यादि गुणोंसे युक्त एवं सालंकार होना काव्यकेलिए आवश्यक माना है। रसानुभूतिके तारतम्यके आधारपर ही उन्होंने काव्यके ध्वनिकाव्य, गुणीभूतव्यंग्यकाव्य एवं चित्रकाव्य ये तीन भेद किये हैं। इनकी दृष्टिमें वाच्यार्थकी अपेक्षा व्यंग्यार्थका अस्तित्व ही काव्योत्कर्षका साधन है।[३]

आचार्य विश्वनाथने मम्मटकी मान्यताका समर्थन करते हुए रसको काव्य-पुरुषकी आत्मा, माधुर्य, प्रसाद और ओजको उसके शूरवीरता, दया एवं दाक्षिण्यादि गुण, श्रुतिकटुत्वादिको इसके काणत्व आदि दोष एवं उत्प्रेक्षा तथा उपमा आदिको उसके विभिन्न अलंकार बताया है।[४] इनके मतमें रस, भाव, गुण, अलंकार एवं औचित्य काव्यके प्रतिमान हैं।

पण्डितराज जगन्नाथने रमणीय अर्थका प्रतिपादन करनेवाले शब्दको काव्य कहा है।[५] अलौकिक आनन्दजनक ज्ञानका विषय होना रमणीयता है।[६] रमणीयता अलौकिक चमत्कारत्वका पर्याय है और एक विशिष्ट प्रकारकी आनन्ददायिनी अनुभूति है। इनकी दृष्टिमें विशिष्ट चमत्कार ही

---

२. वक्रोक्तिजीवितम्, १।१९-२१

३. वही, १, ६, २३, २४, ५३

४. काव्यप्रकाश, १।२-४

५. काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरं, रसादिश्चात्मा, गुणाः शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत् रीतयो अवयवसंस्थानविशेषवत्, अलंकाराश्च कटककुण्डलादिवत्। साहित्यदर्पण, पृ० १२

६. रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। रसगंगाधर १।१

७. रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता। वही, १।१ की टीका

काव्यका सबसे बड़ा प्रतिमान है। यह शब्द एवं अर्थ दोनोंमें निवास करता है। ललित पदावली, बन्धकी प्रगाढ़ता एवं अलंकृत और चमत्कारपूर्ण पद किसी भी काव्यकृतिके प्रतिमान हैं।

स्तुतिकुसुमांजलिका काव्यमूल्य

स्तुतिकुसुकांजलिको हम स्तोत्रात्मक महाकाव्य मान सकते हैं। इसमें मनोहर काव्यचातुर्य एवं भावपूर्ण सूक्तियाँ समाहित हैं। कविने दीनाक्रन्दन, करुणाक्रन्दन एवं कृपणाक्रन्दन आदि स्तोत्रोंमें अपने निश्छल हृदयको खोलकर रख दिया है। काव्यकी दृष्टिसे ऐसी महनीय भावराशि अन्यत्र सम्भवत: नही मिल सकेगी। इसमें उपलब्ध विविध प्रकारका रचनाकौशल, हृदयहारी अगणित भाव एवं रसमय सूक्तियाँ किस सहृदयके मनको अपनी ओर आकृष्ट नहीं करती हैं। स्तोत्रका नाम ही महाकाव्यमय है। कवि प्रत्येक स्तोत्रको कुसुम मानकर उनकी अञ्जलिद्वारा अपने इष्टदेवको प्रसन्न करता है। अत: नयी-नयी उक्तियाँ, विचित्र-विचित्र उपालम्भ एवं विलक्षण शैलीमें प्रतिपादित हार्दिक भाव प्रत्येक पाठकको रसभावमग्न बनानेमें सशक्त हैं। कविद्वारा समर्पित यह पुष्पांजलि एक जन्मकी श्रद्धा और भक्तिका फल नहीं है अपितु जन्म-जन्मान्तरके पुण्योंका फल है। पुष्पोंमें सुगन्धि होती है, स्तुतिमें उत्कृष्टतारूप सुगन्धि है। भक्त पुरुषांजलि समर्पितकर अपनेको कृतकृत्य मानता है। भक्तकी पुष्पांजलिमें नवीन और ताजे सुगन्धित पुष्प रहते हैं और कविकी इस स्तुतिकुसुमांजलिमें भावसुगन्धिसे पूर्ण नवीन-नवीन स्वनिर्मित विभिन्न प्रकारके पद्य हैं। भक्तिरसका सिंचन एवं अलौकिक शब्दार्थ-चमत्कार इस स्तुतिकुसुमांजलिको महाकव्योचित गरिमासे मण्डित कर रहे हैं। इसमें कवित्व-शक्तिकी पराकाष्ठा है। कविता अतीव सरस, सरल एवं प्रसादगुणयुक्त है। कविने प्रभावोत्पादक और हृदयद्रावक शैलीमें भगवान्के समक्ष आत्मनिवेदन प्रस्तुत किया है। इन स्तोत्रोंकी करुणधारासे पाषाण-हृदय भी द्रवित हुए विना नहीं रह सकता। कविने स्तुतिकुसुमांजलिमें स्वयं ही कविताके प्रतिमानोंका निर्देश किया है :

ओजस्वी मधुर: प्रसादविशद: संस्कारशुद्धोऽभिधा-
भक्तिव्यक्तिविशिष्टरीतिरुचितैरर्थैर्धृतालंकृति: ।
वृत्तस्थ: परिपाकवानविरस: सद्वृत्तिरप्राकृत:
शस्य: कस्य न सत्कविभुँवि यथा तरयैव सूक्तिक्रम: ।। स्तुति० ५।३१

उक्त पद्यके आधार पर उत्तम काव्यके निम्नलिखित प्रतिमान स्वीकृत किये जा सकते हैं :

ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणका सद्भाव, विशुद्ध-संस्कार-संयुक्त भाषा, विशिष्ट-रीति-सम्पन्नता, सरसता, अलंकारयुक्तता, अभिधाशक्तिके साथ लक्षणा और व्यंजनाका सद्भाव, सुन्दर छन्दोंका समावेश, कैशिकी आदि वृत्तियोंका समावेश एवं उक्ति-चमत्कार ।

कविने उक्त समस्त प्रतिमानोंको अपने काव्यमें स्थान दिया है । पद-लालित्य और गेयत्व भी स्तुतिकुसुमांजलिमें पूर्णतया समाहित हैं । कविने अपने इस काव्यको भावकाव्य कहा है । जो रचनाएँ लोकको प्रधान मानकर सम्पन्न की जाती हैं वे रसकाव्य कहलाती हैं और जिन रचनाओंमें देवादिविषक प्रेम प्रतिपादित रहता है उन रचनाओंको भावकाव्य कहते हैं । भावकाव्यमें भी शब्द, अर्थ, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, गुण, दोष, रीति और अलंकार आदि तत्त्व रसकाव्यके समान ही पाये जाते हैं। भावकाव्य मुख्यत: भगवद्विषयक अनुरागको पुष्ट करते हैं और मोक्षतक पहुँचनेका साधन बनते हैं । रागात्मिका प्रवृत्तिको जगत्के विषयोंसे पृथक् कर उसे अन्तर्यामी प्रभुके चरणोंमें समर्पित करना कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । कविने शब्द-माधुर्य और अर्थव्यंगत्व दोनोंका सन्तुलितरूपमें नियोजन किया है । उन्होंने अपनी इस कविताको द्राक्षा एवं अमृत आदिसे भी अधिक सरस और मधुर बताया है :

अत्यन्त कठोर काष्ठमयी लतासे निकली हुई साक्षात् अमृत-लहरीके समान द्राक्षा, बहुत छिद्रोंवाली बाँसुरीके भीतरसे निकलती हुई स्वभावत: मधुर मूर्छना (स्वरोंका आरोह-अवरोह) एवं मेरे मुखसे सूक्तिके व्याजसे निकलती हुई यह कर्णपेया शिवरूपी भक्तिसुधा किस सचेतन पुरुषको आश्चर्यसे विकसितमुख नहीं बना देती है ।[1]

---

१. द्राक्षा साक्षादमृतलहरी कर्कशात्काष्ठकोष्ठाद्
भूरिच्छिद्रात्प्रकृतिमधुरा मूर्च्छना वंशगर्भात् ।
सूक्तिव्याजान्मम च वदनात्कर्णपेया सुधेयं
निर्गच्छन्ती जनयति न कं विस्मयस्मेरवक्त्रम् ।। स्तुति० १७।२

स्तुतिकुसुमांजलिके अध्ययनसे यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि व्यंजना प्रधान काव्य ही सर्वोत्कृष्ट काव्य है। उदात्तवर्ण, सुन्दरवृत्त एवं लाक्षणिक पद रहनेपर भी पूर्णतः काव्यका चमत्कार ध्वनिके विना सम्भव नहीं। जहाँ ध्वन्यर्थ प्रतिष्ठित है वहीं उत्तमकाव्यका अस्तित्व पाया जाता हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कवि जगद्धरभट्टने कविताका चरम निकष ध्वन्यर्थको ही माना है।

जैसे कोई पुरुष उदारवर्णवाले, रथसे जुड़े हुए, हर्षके मारे बड़े वेगसे दौड़नेवाले, सुन्दर लक्षणोंसे सुशोभित और बड़े जोरसे हिनहिनाते हुए अत्युत्तम घोड़ोंकेद्वारा अपने स्वामीकी शरणमें जाता है, वैसे ही अब मैं उदारवर्णोंवाले, परस्पर सम्बद्ध अर्थवाले, अभिधासे युक्त लक्षणाको धारण करनेंवाले और अत्युत्तम ध्वनिसे युक्त पदोंसे सहर्ष देवाधिदेव महेश्वरकी शरणको प्राप्त करता हूँ।[1]

उक्त कथनसे निम्न सिद्धान्त प्रस्फुटित होते हैं:
उदात्तवर्णोंका संयोजन, उत्तमवृत्तोंका न्यास, मुख्यार्थको बाधकर लक्ष्यार्थका प्राधान्य, ध्वन्यर्थ-जन्य रसोन्मेष एवं रसौचित्य अर्थात् रसानुकूल वर्ण-नियोजन-द्वारा रस-परिपाक।

कविने हृदय और मनको प्रसन्न करनेवाली वाणीको ही ग्राह्य बताया है। जिस प्रकार आह्लादप्रद, निर्मल एवं उत्ताल तरंगोंसे युक्त सरस्वती नदी प्राणियोंके मानसिक, वाचिक और कायिक पापोंका हरण कर इन्हें शान्ति प्रदान करती है, उसीप्रकार पदगत और अर्थगत दोषोंसे रहित, उपमा एवं उत्प्रेक्षादि अलंकार-समन्वित तथा समासोक्ति एवं ध्वनिमण्डित वाणी सहृदयोंके मनोमालिन्यको नष्ट कर उनके हृदयमें मधुधारा प्रवाहित करती है। अतः कविने रम्य रीति-समन्वित, गुणोज्ज्वल, चारुवृत्तयुक्त एवं रसान्वित वाक्यको ही काव्यके रूपमें परिगणित किया है। कवि वैदर्भी रीतिको काव्यका प्राणाधार मानता है। ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणोंसे उज्ज्वल वाणी ही काव्यकेलिए सर्वस्व है। कविने वक्रोक्ति और अलंकारोंके सद्भावको ही काव्यकेलिए उपादेय माना है:

---

१. **उदारवर्णैरथ संगतैरहं मुदाभिधावद्भिरुपोढलक्षणैः।
पदैरमन्दध्वनिभिर्महेश्वरं प्रभुं प्रपद्ये तुरगोत्तमैरिव॥ स्तुति० २९।१**

जैसे कोई सद्गुणवती एवं सच्चरित्रवती पतिव्रता स्त्री अपने प्रियतम पतिको परम अनुरागद्वारा अपने वशमें कर लेती है, वैसे ही मेरी यह निर्दोष वाणी अपनी अलौकिक सूक्तियोंसे भगवान् सदाशिवको अतीव प्रसन्नकर उन्हें अपने वशमें कर लेगी ।[1]

काव्यमें अनुभूतिकी प्रधानता होती है और कवि अपने मनके सौन्दर्य-बोधको कलाके माध्यमसे व्यक्त करता है । अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक आदि काव्यकेलिए त्याज्य माने गये हैं । रसपोषणकेलिए कवि अनेक युक्तियोंका प्रयोग करता है । उसकी अनुभूतिके आवेग जितने अधिक तीव्र होते हैं, रसका उत्कर्ष भी उतना ही अधिक बढ़ता है । जो कवि अपने भावोंको जितना अधिक तीव्र बनाता है वह प्रकृतिकी पार्श्वभूमिको भी उसी रूपमें अभिव्यक्त करता जाता है । इसकेलिए उसे सन्दर्भों और प्रतीकोंका भी प्रयोग करना पड़ता है । स्तुतिकुसुांजलिके कविने जहाँ जिस रस या सन्दर्भकी योजना की है वहाँ पर उसने रस-परिपोषक वातावरणका भी संयोजन कर दिया है । अनेक स्थानोंपर पौराणिक और ऐतिहासिक सन्दर्भोंकी योजना बड़े ही रुचिररूपमें सम्पन्न हुई है । गीतिकाव्य रहनेके कारण वर्णन सांकेतिक और मधुररूपमें उपस्थित हुए हैं । स्तुतिकुसुमां-जलिका एक काव्यात्मकमूल्य शब्द-चित्र है ! ये शब्द-चित्र काव्यरसिकोंको विशेष आनन्दित करते हैं क्योंकि उनकेद्वारा सूक्ष्म सौन्दर्यबोधकी प्रतीति होती है । अनुप्रास और यमकोंकी योजनाने इस स्तुतिकाव्यको अत्यन्त सरस और उपादेय बना दिया है । कविकी प्रतिभाका विकास उन्नतरूपमें उपलब्ध होता है । कल्पना, भावना एवं विचारोंका सुगठित रूप इस काव्यमें पाया जाता है । रोचकता, श्रुति-मधुरता एवं मसृणताका समन्वय इस काव्यमें पूर्णतया हुआ है । कविने काव्यको गुणोंसे उपचित माना है । नैसर्गिकी प्रतिभा एवं कल्पनाका उदात्त मिश्रण सरस काव्यकेलिए आवश्यक तत्त्व है :

जैसे जलको बहाती हुई, हिम और मुक्ताहारके समान सुमनोहर कान्ति-वाली एवं रमणीय और कुटिल तरंगोंकी शोभाको धारण करनेवाली आकाश-गंगा भगवान् शंकरके मस्तकपर बसती है, अथवा जिस प्रकार अमृतको

---

१. रम्यरीतिरनघा गुणोज्ज्वला चारुवृत्तरुचिरा रसान्विता ।
रंजयत्वियमलंकृता मनः स्वामिनः प्रणयिनी सरस्वती ।। स्तुति० १।३

बहाती हुई, हिम और मुक्ताहारके समान मनोहर कान्तिवाली एवं रमणीय और कुटिल शोभाको धारण करनेवाली चन्द्रकला भगवान् शंकरके ललाटमें निवास करती है, वैसे ही सुमधुर सुधारसको बहाती हुई, स्वच्छ हिम और मुक्ताहारके समान निर्दोष एवं उपचार और वक्रपदोंसे अति मनोहरताको प्राप्त हुई सूक्ति जिसके मुखमें निवास करती है उस श्रेष्ठ सुकविको हम प्रणाम करते हैं। चातुर्य, गाम्भीर्य और कोमलत्वादि गुणोंसे वृद्धिको प्राप्त हुई, प्रकृतिसे निर्मल और प्रकृतिके स्वाभाविक प्रथम परिणामको प्राप्त हुई विद्वानोंकी बुद्धि एवं ओज, प्रसाद एवं माधुर्य नामक गुणोंसे परिपूर्ण, दोषोंसे रहित और प्रकृतिके नैसर्गिक प्रथम परिणामको धारण करती हुई विद्वानोंकी वाणी भगवान् सदाशिवके प्रसादरूपी अनुग्रहसे कहींभी रोकटोकको प्राप्त नहीं होती।[1]

कवि जगद्धरभट्ट कविताकेलिए नैसर्गिकी प्रतिभाको अत्यधिक महत्त्व देते हैं। यदि काव्यरचनाकेलिए कविके पास नैसर्गिकी प्रतिभा है तो वह विभिन्न प्रकारकी कल्पनाओं, उत्प्रेक्षाओं एवं उक्ति-वैचित्र्योंका समावेश कर सकता है जिससे काव्य सहृदयोंकेलिए आस्वादनीय बन जाता है।

स्तुतिकुसुमांजलिकी अन्तरात्मा और उसके वाह्य स्थापत्यपर विचार करनेसे अवगत होता है कि कविने आन्तरिक श्रद्धा और विश्वासकी अभि-व्यंजना काव्यके परिपार्श्वमें की है। यहाँ भक्तिका बहुत ही सरस, सरल और हृदयग्राही चित्रण किया गया है। कविने बताया है कि जो व्यक्ति काव्यरचना करना चाहता है उसे सर्वप्रथम संसारका सूक्ष्मावलोकन कर अनुभूति अर्जित करनी चाहिये। अनुभूतिके अभावमें उत्तम काव्यकी रचना नहीं हो सकती है। कवि ने अनुभूति और प्रतिभाका महत्त्व स्वीकार करते हुए लिखा है :

---

१. यस्य स्रवन्त्यमृतमेव मुखे तुषारहाराभिरामरुचिरंचितवक्रभंगिः।
सूक्तिद्युसिन्धुरिव मूर्ध्नि हरस्य चन्द्रलेखेव वा वसति तं सुकविं नमामः॥
याता गुणैरुपचयं विमला प्रकृत्या नैसर्गिकीं परिणतिं प्रथमां वहन्ती।
बुद्धिः सतां शशिकलामुकुटप्रसादाद्वाणी च न क्वचिदपि प्रतिघातमेति॥
स्तुति० ५।११-१२

कवि जब काव्यचरना करता है और एकान्तमें उसका निरीक्षण करता है, तो वह अपने काव्यको देखकर उसके अलौकिक रसास्वादके चमत्कारसे स्वयं ही ऐसा आनन्दविभोर हो जाता है कि उसकी आँखे आनन्दके मारे मुकुलित एवं अर्धनिमीलित हो जाती है। वे अपनी स्वाभाविक चंचलताको त्याग देती हैं, किन्तु उनकी भौंहें अपनी स्थिरताको त्यागकर आँखोंकी चंचलताको ग्रहण कर लेती हैं। सत्कवियोंका पहले अनेक जन्मोंमें उपार्जित और तुषार तथा मुक्ताहारके समान स्वच्छ सुकृतोंका वह कोई अपूर्व अद्भुत परिपाक धन्य है, जो इस समय भगवान् शंकरकी अत्यन्त निर्मल स्तुतिरूप सूक्तियोंके रूपमें फलीभूत होता है। निर्मलमति सहृदय लोग जिस सूक्तिसुधाका आस्वादन कर सूक्ष्मार्थ—लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ—के विचारकी भावनाद्वारा उत्पन्न हुए भृकुटि-ताण्डवसे ही अपनी चैतन्य सत्ताको प्रकट करनेवाला मुख धारण करते हैं, श्रेष्ठ कवियोंकी उस सूक्ति-सुधाकी जय हो। जो मूर्खलोग शब्दार्थ मात्रको भी नहीं जानते, वे भी मूर्छना-नादको कानोंसे पीते हुए हरिणोंके समान जिस वाणीको कानोंसे सुनते हुए इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण चेष्टाओंके निरुद्ध हो जानेपर चित्रलिखित मूर्तिके समान निश्चेष्टसे हो जाते हैं, उस कवि श्रेष्ठकी वाणीको हम प्रणाम करते हैं।[1]

इस प्रकार कविने काव्यानुभूति, रसानुभूति, भावानुभूति, दिव्यानुभूति एवं विलक्षणानुभूतिको श्रेष्ठ काव्यहेतु आवश्यक माना है। जो शब्दार्थका

---

१. काव्यं विभाव्य निजमर्धनिमीलितानि नैसर्गिकं जहति चापलमीक्षणानि।
गृह्णन्ति तन्मसृणतां सहजां विहाय भ्रूवल्लयस्तु कृतिनां कविपुंगवानाम्॥
नीहारहारधवलस्य जयत्यपूर्वः पाकः स कोऽपि सुकृतस्य कृतस्य पूर्वम्।
यः सम्प्रति प्रतिफलत्यमलासु बालचन्द्रावचूलनुतिसूक्तिषु सत्कवीनाम्॥
सूक्ष्मार्थदर्शनविमर्शवशप्ररूढभ्रूकाण्डताण्डवनिवेदितचिद्विकासम्।
आस्वाद्य यत्सुमतयो मुखमुद्वहन्ति सूक्तामृतं जयति तत्कविकुंजराणाम्॥
शब्दार्थमात्रमपि ये न विदन्ति तेऽपि यां मूर्छनामिव मृगाः श्रवणैः पिबन्तः।
संरुद्धसर्वकरणप्रसरा भवन्ति चित्रस्थिता इव कवीन्द्रगिरं नुमस्ताम्॥
स्तुति० ५।१४-१७

जाता है, उसे यदि सूक्ष्म भावोंकी अभिव्यंजनाशक्ति प्राप्त नहीं है तो वह उत्तम काव्यरचना नहीं कर सकता। कविने सूक्तामृतको काव्यास्वादन के लिए परमावश्यक माना है। इसी कारण उपर्युक्त पद्योंमें सूक्तिसुधाकी जय प्रतिपादित की गयी है। सरस वाणी सहृदयोंके मनको उसी प्रकार मुग्ध कर देती है जिस प्रकार सुरीली वेणु-ध्वनि हरिणोंके चित्तको। कविने कवितामें प्रवाहगुणका रहना भी आवश्यक माना है। मन्दाकिनीके स्वच्छ एवं निर्मल प्रवाहके समान प्रवाहसे युक्त कविता पाठकोंके चित्तको आकृष्ट करती है। सुगुम्फित पदावली ही अलौकिक आनन्दका चमत्कार उत्पन्न करनेकी क्षमता रखती है। इस प्रकार कविने काव्यकेलिए उक्त प्रतिमानोंका अस्तित्व स्वीकार किया है।

स्तुतिकुसुमांजलिकी रस-भाव-योजना

काव्य जीवनके अनुभवोंका कलात्मक अभिव्यंजन है। अतः कोई भी कवि अपने काव्यमें विभिन्न प्रकारके भावोंकी अभिव्यंजना करता है। किसी वस्तु या व्यक्तिके प्रति विशेष-विशेष अवस्थाओंमें किसीकी जो मानसिक स्थिति होती है उसे भाव कहते हैं और जिस वस्तु या व्यक्तिके प्रति यह भाव उत्पन्न होता है वह विभाव कहलाता है। भाव एवं विभावका यह क्रम प्रत्येक काव्यमें अनवरत रूपसे चलता रहता है। अलंकारशास्त्रमें आश्रयकी सुख-दु;ख आदि भावस्थितियोंके ज्ञापनको भाव माना गया है। दशरूपककार धनंजयने आन्तरिक भावस्थितियोंके ज्ञापनको भाव कहा है।[१] काव्यप्रकाशकारने देवाधिविषयक रति आदि स्थायिभावोंका वर्णन भावध्वनिके अन्तर्गत किया है।[२] अतः स्पष्ट है कि देवाधिविषयक रति तथा उद्बुद्धमात्र स्थायिभावका वर्णन भाव कहलाता है। योंतो संवेगात्मक प्रतीति जब बौद्धिक प्रतीतिको बाधकर अनुभूतिके रूपमें प्रवाहित होती है तो भावका जन्म हो जाता है। भरतमुनिने अपने नाट्यशास्त्रमें[3] विभावको

---

१. दशरूपक, ४।४

२. रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथांजितः भावः प्रोक्तः। काव्यप्रकाश, ४।३५

३. विभावेनाहृतो योऽर्थस्त्वनुभावेन गम्यते।
वागंगसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः॥
वागंगमुखरागैश्च सत्वेनाभिनयेय च।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते॥ नाट्यशास्त्र, ७।१-२

कारण, निमित्त और हेतु कहा है। काव्यप्रकाशकार मम्मटने भी विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारिभावको क्रमशः लोकव्यवहारमें कारण, कार्य एवं सहकारी कारण बतलाया है।[1] पाठक या सामाजिकके हृदयमें रति आदि स्थायिभाव पहलेसे वासनारूपमें स्थित रहते हैं। विभाव उन स्थायिभावोंको उद्बुद्ध, क्रियाशील और रसदशानुगामी बनाते हैं। तथ्य यह है कि सहृदय अपनी मानसिक स्थिति और प्रवृत्तिके अनुकूल विभावसे अनुप्रेरित होता है। भावोत्पत्तिकेलिए विषय और विषयी दोनोंका संयोग आवश्यक है क्योंकि भावनिष्पत्तिके समय सहृदयके सामने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे विभावका कोई रूप अवश्य रहता है। इसी कारण विभावको उसका हेतु बताया जाता है।

स्थायिभाव विभावके संयोगसे निष्पन्न होता है अर्थात् विषय विषयीकी सक्रिय सहायतासे अपनेको अभिव्यक्त करता है। ये विभाव स्थायी एवं व्यभिचारिभावोंका विभावन करते हैं, उन्हें आस्वाद्य बनाते हैं। साधारणीकरणमें[2] यह विभावनव्यापार वर्तमान रहता है। विभाव दो प्रकारके हैं : आलम्बन और उद्दीपन। नायिका आदि आलम्बन हैं क्योंकि उनका आश्रय लेकर रसकी उत्पत्ति होती है। जो विभाव हमारे रति आदि मनोविकारोंका अतिशय दीपन—अभिवर्धन—करते हैं, वे उद्दीपन विभाव हैं। उद्दीपनके[3] अन्तर्गत नायक-नायिकादिकी चेष्टाओं और अनुकूल देशकालका समावेश किया जाता है। जिस प्रकार वीणाके घर्षणसे मात्र झंकृति उत्पन्न होती है, हृदयग्राही रागका प्रस्फुटित होना तो अंगुलियोंकी संचालन-कलापर निर्भर रहता है, उसी प्रकार विभाव भावको जगा भर देते हैं और आस्वादन योग्य बनाना तो आलम्बन और आश्रयके बाहरी कार्योंपर ही अवलम्बित रहता है। यों तो आलम्बनका क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत है कि हमारे मनके भावोंको उदय करनेमें

---

१. कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्योः।।
विभावानुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्ता स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसःस्मृतः।।
काव्यप्रकाश ४।२७-२८

२. व्यापारोऽस्ति विभावोदेर्नाम्ना साधारिणोकृतिः। साहित्यदर्पण, ३-९

३. रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्योः। वही, ३।३३-३५

कारणीभूत समस्त वस्तुएँ और व्यापार उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। जब कवि किसी प्रकृतिके रमणीय दृश्यका पूरा वर्णन उपस्थित करता है तो उस समय वह दृश्य या प्रकृति ही आलम्बन होती है। अतएव आलम्बन-विभावके अन्तर्गत आराध्यदेव, महापुरुष, दुरात्मा काल एवं देश सभीका समावेश हो सकता है। कवि अपनी कल्पनामें जिस वस्तुको ग्रहण कर उसके सहारे अपनी भावनाको पूरा-पूरा व्यक्त करता है, वह आलम्बनविभाव है।

उपर्युक्त विवेचनके आधारपर उद्दीपनके दो रूप हो सकते हैं और उनकी विस्तारसीमा आलम्बनके अन्तर्गत और उसके बहिर्गत मानी जा सकती है। प्रथममें आलम्बनकी चेष्टा, रूप, रस एवं वेश आदि और द्वितीयमें प्राकृतिक दृश्यावली और समयोचित प्रसंगोंका समावेश किया जा सकता है। साधारणतः व्यापक अर्थमें आबलम्बनविभावसे वस्तुका और उद्दीपनसे वातावरणका बोध होता है। ये दोनोंही कविकेलिए समान रूपसे ग्राह्य हैं। जहाँ किसी एकको विशेष महत्त्व दिया जाता है, वहाँ दूसरा उपेक्षित बन प्रेषणीयताको घटा देता है। अतः कविकेलिए प्रेषणीयताकी दृष्टिसे भावपक्षसे अधिक मूल्यवान् उसका विभावपक्ष है।

देश, जाति, साहित्य या धर्मकी परम्पराको हम उद्दीपनविभावके अन्तर्गत रख सकते हैं। सहृदयके हृदयमें जो वासना सूक्ष्मरूपसे वर्तमान रहती है, वह रति, भय, क्रोध एवं करुणा आदि स्थायिभावोंके रूपमें अथवा कामभावना तथा अहंभावना आदि सहज प्रवृत्तियोंके रूपमें देखी जा सकती है। आचार्योंने ऐसे सहृदयको सवासन कहा है। काम, अहं और आत्मसंर-क्षणकी भावना प्रत्येक व्यक्तिमें जन्मजात पायी जाती है। इन जन्मजात भावनाओंको अभिव्यक्त करनेकेलिए प्रयत्नशील कवि इन्हें अनुभावन व्यापार द्वारा ही अभिव्यंजित करता है। अतः हमारी दृष्टिमें विभाव और अनुभावोंका आपसमें वही सम्बन्ध है जो कली और सुवासका। नायिकाको देखनेमात्रसे शृंगार-भावना उत्पन्न नहीं होती। उसकी जब शृंगाररस-व्यंजक चेष्टाएँ परिलक्षित होती हैं तभी आनन्दका विकास होता है। अतएव जो चेष्टाएँ हृदयगत अनुभवोंका अनुभव कराती हैं वे ही अनुभावके अन्तर्गत आती हैं। अनुभावके अभावमें विकास मुकुलके तुल्य अस्फुट रहता है। उससे रसका पोषण नहीं होता। अनुरक्तिसूचक चेष्टाओंके अभावमें नायिकाश्रित भावावेश तैलहीन दीपककी लौके समान क्षणभरमें शान्त हो जाता है। अत

काव्यसृजनकेलिए भाव, अनुभूति एवं संवेग आदिका अनुभावन तो आवश्यक है ही, पर उससे भी कहीं अधिक आवश्यक है अनुभूतिका अन्य लोगों तक पहुँचाना। यदि कविके भावोंका सहृदय भलीभांति आस्वादन न कर सका, तो काव्यका मुख्य लक्ष्य ही अपूर्ण रह जाता है। जो कवि अपने हृदयके भावोंको सहृदयके लिए सम्प्रेष्य नहीं बना सकता उसका समस्त प्रयत्न बालूकी दीवालके समान निरर्थक होता है। अनुभूति अन्य सहृदयों केलिए भी संवेद्य एवं सुलभ बने इसका प्रयत्न काव्यमें अनिवार्य है। अभिव्यक्ति की निराविलता एवं स्पष्टता प्रस्तुत स्तोत्रका एक प्रधान गुण है। इसमें प्रेषणीयताका समावेश भी पूर्णरूपसे हुआ है।

भावुक कवि संवेग या अनुभूतिका आत्मनिष्ठाके साथ अनुभव करता है और साथ ही वस्तुनिष्ठताके साथ उसकी अभिव्यक्ति भी करता है। हम अपने आत्मनिष्ठ अनुभवोंको वस्तुनिष्ठ बिम्बोंद्वारा स्पष्टतयाप्रेषणीय बनाते हैं। कवि अपने संवेगके अनुरूप या समरूप बिम्बोंका वस्तु-जगत्से चयन करता है और उसी वस्तुपरक बिम्बकेद्वारा अपनी आन्तरिक अनुभूतिको प्रकट करनेमें सफल होता है। अन्तर्जगत्का भाव और वस्तुजगत्का बिम्ब दोनों ही एक दूसरेके अनुरूप सम्बद्ध और सन्तुलित होते हैं। अतएव कविके मानसमें वर्त्तमान विभिन्न प्रकारकी अनुभूतियाँ वस्तुगत बिम्बोंके माध्यमसे अभिव्यक्त होती हैं। इसी प्रक्रियाको कल्पना-चमत्कारभी कहा जा सकता है। वास्तवमें कवि अपनी अनुभूतिके आधारपर अलौकिक और अगोचर आलम्बनको बुद्धिगम्य बनाता है।

भाव दो प्रकारके होते हैं : स्थायी और अस्थायी। स्थायीकी स्थिति चिरकाल तक बनी रहती है और ये ही रस अवस्था तक पहुँचते हैं। स्थायि-भावोंके ही सहकारिकारण अस्थायिभाव कहलाते हैं। अस्थिर चित्त-वृत्तियाँ ही अस्थायी भाव हैं। ये रसकी परिणति तक नहीं ठहरते, अपितु उन्मीलित और निमीलित होते रहते हैं। इनके क्षणिक उद्रेक मुख्यरसका उसी प्रकार उत्कर्ष-साधन करते हैं जिस प्रकार नायक-नायिकाके मिलनमें सखियोंके चुटकीले विनोद। भाव सुखात्मक और दुःखात्मक दोनों प्रकारके होते हैं। सुख एवं दुःखसे राग और द्वेष प्रादुर्भूत होते हैं और इन्हींसे अनेक भावोंकी सृष्टि होती है। आलम्बनकी विशेषताके कारण भावोंमें तारतम्य उत्पन्न होता है। जिस प्रकार सम्मानित व्यक्तिके प्रति राग सम्मानका, समानके प्रति प्रीतिका और हीनके प्रति करुणाका आकार धारण कर लेता है, उसी

प्रकार जीवनमें भाव भी अनेक प्रकारके रूप धारण करता है। भिन्न-भिन्न आलम्बनके प्रति एक ही भावमें अन्तर आ जाता है। किसी अत्याचारी के अत्याचारको देखकर कोई उसपर क्रुद्ध होता है, कोई घृणासे मुह मोड़ लेता है और कोई जली-कटी सुनाने लगता है। सम्भव है कोई देखकर रोने लगे और कोई धैर्य धरकर देखता रहे। इसका प्रधान कारण स्वभावकी विलक्षणता है। यह स्वभावका वैलक्षण्य ही आलम्बन और विभावोंको अनेक रूपोंमें विभक्त करता है। संस्कारवश भाव अनेक रूपोंमें प्रस्फुटित होते जाते हैं। जो भाव हमें रसावस्था तक पहुँचानेमें समर्थ हैं, वे स्थायिभाव हैं और उन्हींके द्वारा हमारी आस्वादन-योग्यता वृद्धिगत होती है।

जो भावोंके कार्य हैं या जिनके द्वारा रति आदि भावोंका अनुभव होता है उन्हें अनुभाव कहते हैं। अनुभाव मूलत: कायिक, मानसिक, आहार्य और सात्त्विक रूपसे चार प्रकारके होते हैं।

कटाक्ष आदि कृत्रिम आंगिक चेष्टाओंको कायिक अनुभाव, अन्त:करण की वृत्तिसे उत्पन्न हुए प्रमोद आदिको मानसिक अनुभाव, आरोपित या कृत्रिम वेशरचनाको आहार्य अनुभाव एवं शरीरके अकृत्रिम अंगविकारको सात्त्विक अनुभाव कहते हैं। रसके प्रकाशक होनेके कारण सात्त्विक भाव भी अनुभाव कहलाते हैं। यों तो हाव, भाव, हेला, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता एवं औदार्य आदि अनेक भाव अनुभावोंके अन्तर्गत परिगणित हैं पर आलम्बन और आश्रयके कार्यही स्पष्टत: अनुभावकी संज्ञा प्राप्त करते हैं। आशय यह है कि जो चेष्टाएँ रसोद्दीपक होती हैं उन सभी चेष्टाओंकी गणना अनुभावोंमें की जाती है।

अस्थिर मनोविकार या चित्तवृत्तियोंको संचारिभाव कहा जाता है। ये भाव रसके उपयोगी होकर जलतरंगके समान संचरण करते हैं, इसी कारण संचारी कहे जाते हैं। विविध प्रकारसे अभिमुख होकर चलनेके कारण इन्हें व्यभिचारी भाव भी कहते हैं। ये स्थायिभावके साथी हैं। रसके समान ही संचारिभाव भी व्यंजित या ध्वनित होते हैं। संचारियोंकी संख्या तैंतीस मानी गयी है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनसे हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि कोई भी कवि विभाव, अनुभाव और संचारिभावोंके द्वारा पाठकोंको रसस्थिति तक

पहुँचाता है। यह रस अलौकिक एवं चमत्कारी आनन्द-विशेषका बोधक होता है। इसकी अनुभूति सहृदयके हृदयको द्रुत, मनको तन्मय, हृदयके व्यापारोंको एकरूप, नेत्रोंको जलाप्लुत, शरीरको पुलकित और वचन-रचनाको गद्गद रखनेकी क्षमता रखती है। साहित्यके रस-क्षेत्रमें स्व एवं परका भेद-भाव नहीं रहता। वहाँ जो भाव होता है वह सर्वसाधारण और सम्बन्धातीत होता है। ऐसे अपरिमित भावके उन्मेषसे सभी सहृदयोंको एक ही भावद्वारा उपलब्धि होती है। रसावस्थामें समस्त विचार, वितर्क और उद्देश्य तिरोहित हो जाते हैं। जब रसका स्वाद प्राप्त होने लगता है तब विषयान्तरका अनुभव पास तक नहीं फटकने पाता। उस समय एक प्रकारसे मुक्ति-स्वरूप ब्रह्मानन्दकी उपलब्धि होती है।

काव्य-वैदग्ध्यकी दृष्टिसे चमत्कार ही रसका प्राण है। चमत्कारका अर्थ है चित्तका विस्तार या विस्फार। इसी कारण चमत्कारको रसका सार भी कहा जाता है। रस-प्रतीति चाक्षुष नहीं, मानस है। सत्त्वके उद्रेकसे रसका साक्षात्कार होता है। कवि या भावुक साहित्यकार काव्यमें वर्णित विभावादि द्वारा पाठकोंको अलौकिक रूपसे अभिभूत कर देता है जिससे काव्य-सौन्दर्यकी प्रतीति सहज रूपमें होती है।

भावसम्पत्ति

कवि जगद्धरभट्टने अपने इस स्तोत्रकाव्यमें भावोंका सुन्दर चित्रण किया है। वह भगवद्ध्यानमें लीन भावविभोर अवस्थाका चित्रण करता हुआ कहता है :

भक्तलोग जब भगवद्ध्यानमें तल्लीन होकर मग्न हो जाते हैं तब भावावेशकी विशेषतासे उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंका प्रवाह झरने लगता है, उस अश्रुप्रवाहसे उनके समस्त कपोल मानों स्नान करके अत्यधिक शुद्ध हो जाते हैं। ऐसे ही समयमें वे सत्पुरुष लोग चन्द्रखण्डका भूषण धारण करनेवाले देवकी शंकर! शंकर! करते हुए स्तुति करते हैं। किन्तु हाय! इस दुःखमय कलिकालमें अथवा कामक्रोधादिसे दुःखद तारुण्य अवस्थामें नाना प्रकारकी आशाओंके कारण दिग्भ्रम हो जानेसे वृथा ही दुःखी हुआ मैं कुमार्गोंमें घूमा। किन्तु सद्भाग्यवश अब इस समय सदाशिवके स्तुतिरूप नन्दनवनमें विश्राम-

पाकर मेरा यह संसाररूपी मरुस्थलमें निरर्थक भ्रमण करनेसे उत्पन्न हुआ सम्पूर्ण खेद समाप्त हो रहा है।[1]

भगवद्ध्यानमें तल्लीन होने वाले व्यक्ति भक्तिके रसमें डूब जाते हैं। भावावेशकी विशेषताके कारण उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा विगलित होने लगती है। अश्रुप्रवाहसे उनके समस्त कपोल अभिषिक्त हो जाते हैं। भावावेशकी इस स्थितिके कारण व्यक्ति भक्तिरसमें इतना लीन हो जाता है कि उसे तन-बदनकी सुध नहीं रहती। जब भावकी यह स्थिति क्षीण होने लगती है तब कामक्रोध आदिके वशीभूत होनेके कारण प्राप्त हुए दुःखोंके लिए उसका मन पश्चात्तापसे भर जाता है। जिन नाना प्रकारकी अवस्थाओं और अभिलाषाओंने उसके चित्तको दिग्भ्रमित कर दिया था उनके लिए उसके मनमें खिन्नता उत्पन्न होती है और वह आराध्यके प्रति अपने भावोंको निवेदित करता है। भावकी यह स्थिति रसनिमग्न होनेपर ही उत्पन्न हो सकती है।

कवि ऐसे व्यक्तियोंकी भर्त्सना करता है जो आशुतोष शंकरकी आराधनाको छोड़ अन्य लोगोंकी आराधना करते हैं या उनके गुणस्तवनमें प्रवृत्त होते हैं। कविने आस्थाका बहुत ही सरस और हृदयग्राही चित्रण किया है। जो श्रद्धालु है वही ज्ञान एवं भक्तिको प्राप्त कर सकता है। श्रद्धाके अभावमें अलौकिक कार्योंकी तो बात ही क्या, लौकिक कार्योंमें भी सफलता प्राप्त नहीं होती। कवि कहता है :

शान्तिस्वरूप संयम धारण करने वाले हे चित्त! बड़े खेदकी बात हैकि जिस परम मनोहर सदाशिवको वासुकि आदि सर्पोंके शरीर विभूषित करते हैं और अतिशय पुण्यशाली एवं ज्ञानी लोग जिसकी स्तुति करके नाना प्रकारके भोगोंसे परिपूर्ण हो जाते हैं, ऐसे भगवान् आशुतोष सदाशिवको

---

१. मीलद्विलोचनसमुद्गसमुद्गताश्रुस्रोतः स्रुतिस्नपितमूलकपोलभागाः।
देवं शशांककलया कलितावतंसं शंसन्ति सन्त इह शंकर शंकरेति॥
भ्रान्तोऽस्मि वैशसमये समयेऽहमत्र मिथ्यैव दिग्भ्रमहतो महतोऽपमार्गान्।
विश्रम्य नन्दनवने नवने शिवस्य खेदस्तु सम्प्रति समेति स मेऽवसानम्॥
स्तुति० १।२४-२५

छोड़कर अन्य विषयमें समस्त पृथ्वी और आकाशमें गूँजनेवाली स्तुतियोंकी रचना करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।[1]

कविको अपने आराध्यकी शक्तिमें अनुपम विश्वास है। उसके हृदयमें भक्तिकी धारा प्रवाहित हो रही है। वह अहंकार और ममकारको नष्ट करनेका एकमात्र साधन अपने आराध्यके अनुग्रहको मानता है। जिस समय हृदयसे अहंकार और ममकारका सम्बन्ध नष्ट हो जाता है उस समय कविको सहजमें ही आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है। उसके आराध्य शंकर अन्धकासुरको जो ममताका प्रतीक है एवं कामदेवको जो अहंभावका प्रतीक है, नष्ट करनेमें सक्षम हैं। इस प्रकारका भक्तका अपने आराध्यके प्रति दृढ़ विश्वास कम ही काव्य-ग्रन्थोंमें उपलब्ध होगा। भावकी इतनी गहराई काव्यकेलिए सचमुचमें अमूल्य सम्पत्ति है। कविका कथन है:

तीव्र मदके वेगसे उन्मत्त हुए अन्धकासुरके वध और आश्वासनद्वारा अपने शासन और अनुग्रहको प्रकट करने वाले तथा तीनों लोकोंकेलिए भयंकर त्रिपुरासुरके तीनों पुररूप दावाग्निको अनायास ही शान्त करनेमें प्रलय-कालीन संवर्त्तक मेघके तुल्य भगवान् हरकी जय हो। मन, वचन तथा शरीरद्वारा उपार्जित त्रिविध पापरूप वनको नष्ट करनेमें वज्रस्वरूप, सुमतिरूपी माधवीलताको प्रफुल्लित करनेमें वसन्त ऋतुस्वरूप, कृपारूप अमृतके महासागर, संसाररूप महासागरसे पार करनेमें एकमात्र नौकारूप, विपत्तिरूपी तृणके उड़ानेमें वायुके सदृश, शरणागतोंकी इच्छाओंकी पूर्ति करनेमें चिन्तामणि और समस्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलयरूप क्रीड़ा करनेवाले भगवान् हरकी जय हो।[2]

---

१. यं भूषयन्ति कमनीयमहीनभोगाः स्तुत्वा भवन्ति कृतिनो यमहीनभोगाः।
चित्तोचितं तमपहाय महीन भोगाः कर्तुं परत्र धृतसंयम! ही न भो गाः॥
स्तुति० १।२७

२. जयत्यकलितोल्लसन्मदभरोद्धुरान्धासुर
प्रतिष्करणसान्त्वनप्रथितनिग्रहानुग्रहः।
जगत्त्रयभयंकरत्रिपुरघोरदावावली
सलीलकवलीकृतिप्रलयवारिवाहो हरः॥
जयत्यघवनाशनिः सुमतिमाधवीमाधवः
कृपामृतपयोनिधिर्भवमहार्णवैकल्पवः।
विपत्तृणसमीरणः प्रणयिचित्तचिन्तामणिः
समस्तभुवनोदयप्रलयकेलिकारो हरः॥ वही, ६।७-८

उपालम्भभाव

इस स्तोत्र-काव्यकी अनेक विशेषताओंमें कविकी उपालम्भ सम्बन्धिनी विशेषता प्रमुख है। कविने अपने इस स्तोत्रग्रन्थमें उपास्यको अनेक प्रकारसे मधुर-मधुर उपालम्भ दिये हैं। उपालम्भावस्थामें जिन भावोंकी अभिव्यक्ति हुई है वे भाव मनोविज्ञानकी दृष्टिसे चाहे कम मूल्यवान् हों पर साहित्यकी दृष्टिसे उनका पर्याप्त मूल्य है। जब कवि विनयपूर्ण निवेदन करते-करते क्लान्त हो जाता है और अपने आराध्यको अपनी ओर आकृष्ट करनेमें असमर्थ रहता है तो वह उपालम्भ देकर उनके चित्तको द्रवीभूत करना चाहता है। वह प्रेम एवं स्नेहके वशीभूत हो आराध्यको व्यंग्यात्मक उपालम्भ देता है। जिस प्रकार चुम्बक लोहेको अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है उसी प्रकार भक्त भी अपने विभिन्न भावोंसे उपास्यको मुग्ध कर अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। सांसारिक आपदाओंमें मग्न व्यक्ति प्रभुस्तुतिमें भगवत्सामीप्यको प्राप्त करता है। कवि उपालम्भभावमें कहता है:

माँ सरस्वति ! तू धैर्य धारण कर। वह पार्वती देवी, चन्द्रकला और आकाशगंगा ये तीनों स्त्रियाँ तेरी दीन प्रार्थना प्रभुसे निवेदन कर अवश्य ही तुम अबलाका पक्षपात करेंगी, अर्थात् प्रभुसे प्रार्थनाकर उन्हें तुम्हारे अभिमुख कर देंगी। माँ ! यदि वह चन्द्रकला स्वभावसे ही बड़ी कुटिल है और व्योमगंगा भी नित्य नयी तरंगोंवाली और केवल बातें बनानेमें चतुर है तो क्या ? अतिशय दयार्द्रहृदया महाभागा भगवती श्रीगिरिजा देवी तो तेरी कठोर अवहेलना कदापि न करेंगी।[1]

यहाँ कवि चन्द्रकलाको कुटिल बतलाता है और व्योमगंगाको भी नाना तरंगोंसे युक्त चंचल स्वभाववाली बतलाता है। वह केवल पार्वतीको सहानुभूतिपूर्ण जानकर उनसे प्रार्थना करता है। इस प्रकार कविने अन्योक्ति

---

१. **मात: सरस्वति बधान धृतिं त्वदीयां विज्ञप्तिमार्तिविधुरां विभवे निवेद्य।**
देवी शिवा शशिकला गगनापगा च कुर्वन्त्यवश्यमबलाजनपक्षपातम्॥
एषा निसर्गकुटिला यदि चन्द्रलेखा स्वर्गापगा च यदि नित्यतरंगितेयम्।
देवी दयार्द्रहृदया तु नगेन्द्रकन्या धन्या करिष्यति न ते निबिडामवज्ञाम्॥
स्तुति० ११।२४-२५

द्वारा चन्द्रकला-मण्डित और मन्दाकिनीके वेगसे युक्त शंकरके प्रति उपालम्भ प्रस्तुत किया है।

कवि आगे कहता है कि यदि मुझे शृंगी समझकर आप मेरा परित्याग करते हैं तो विवेकहीन नन्दीको क्यों अपना कृपापात्र बनाते हैं? यदि आप द्विजतिरस्कारक, दु:शील और गोत्रभिद् समझकर मेरी अवहेलना करते हैं तो उक्त विशेषणोंसे युक्त कार्तिकेय आपको क्यों प्रिय हैं? क्या यह आपका पक्षपात नहीं है? हे नाथ! यदि कार्तिकेयको शुचिजात और विशाख समझकर उनपर अत्यन्त प्रेम करते हैं तो ठीक वैसा ही शुचिजात और विशाख मैं भी हूँ। फिर मैं आपकी अवज्ञाका पात्र क्यों हूँ? हे भगवन्! यदि मुझे सर्वापहार करनेमें तत्पर, मदोन्मत्त होनेसे कुटिलमुख, चंचल कर्णों वाला और तुन्दिल समझकर मेरा त्याग कर रहे हैं तो फिर ठीक मेरे ही समान समस्त वस्तुओंका अपहरण करनेमें तत्पर, मदजलसे भरे, वक्रमुखवाले, बारबार कान हिलाने वाले और लम्बोदर गजाननको आपने अपना गण-नायक क्यों बना रखा है? यदि आपने दानजल (मदजल)से सिंचित रहने के कारण उन्हें अपने गणोंका अधिपति बनाया है तो मैं भी तो सदा दूसरों द्वारा दिये गये दानजलको ग्रहण करनेके कारण दानजलसे युक्त हूँ, फिर आप मेरी उपेक्षा क्यों करते हैं? क्या यही आपका न्याय है?[1]

इस प्रकार कविने मानवीय हृदयकी गहरी और मार्मिक अनुभूतिको प्रकट किया है। वस्तुत: उपालम्भ हमारी विशेष भावस्तुतिका परिणाम है जो भक्तिका विशेषरूप है। इसका मुख्य आधार साहचर्यकी अनुभूति है। उपालम्भ उलाहनामात्र नहीं है यत: उसमें न तो वास्तविक शिकायत है और न प्रेमपात्रकी निन्दा ही। इसका आधार गहरी आत्मीयता और प्रेम है। भक्तकवि अन्योक्तिपरक उपालम्भोंद्वारा आराध्यकी अनुकूलता प्राप्त करना चाहता है। इसमें भक्तिका आवेग पर्याप्त तीव्र रहता है; आशा और विश्वास पूर्णरूपसे अभिव्यक्त होते हैं। दास्यभावके भक्तोंकी

१. भृंगी विवेकरहित: पशुरुन्मदोऽयं मत्वेति चेत्परिहरस्यतिकातरं माम्।
एवंविधोऽपि वृषभश्चरणार्पणेन नीतस्त्वया कथमनुग्रहभाजनत्वम्॥
पृष्ठे भवन्तमयमुद्वहते कदाचिदेतावता यदि तवैति दयास्पदत्वम्।
स्वामिन्नहं तु हृदयेऽन्वहमुद्वहामि त्वामित्यत: कथमहो न तवानुकम्प:॥
स्तुति० ११।५३-५४ द्रष्टव्य वही, ११।५५-६२

अभिव्यक्तिके अन्तर्गत उपालम्भ-भावना मिलती है। अपने प्रभुके प्रति दृढ़ विश्वासके साथ वह मधुर उपालम्भ देता है जिससे उपास्यकी उदासीनता दूर होती है। श्रीमद्भागवतमें भी इस प्रकारके उपालम्भ मिलते हैं। अतः भावात्मक अभिव्यक्तिको सघन बनानेकेलिए ही कविको उक्त भावकी योजना करनी पड़ती है।

दैन्यभाव

भक्तिके क्षेत्रमें दीनताके भावका प्रदर्शन भी आवश्यक है। भक्त भगवान्के समक्ष आत्मनिवेदन करते हुए अपने दैन्यभावको प्रदर्शित करता है। उसकी यह दीनता लौकिक दीनतासे उच्चकोटिकी होती है। वह भगवान्के दिव्य गुणोंकी प्राप्तिहेतु उनसे नाना प्रकारके अनुनय-विनय करता है। ये अनुनय-विनय ही तो दैन्य-भाव हैं। भावसम्पत्तिकी दृष्टिसे दीनोक्तियोंका अत्यधिक मूल्य है। भक्त कविकी दृष्टिमें संसारके समस्त देवता स्वार्थपरिपूर्ण हैं। एकमात्र उसका आराध्य ही स्वार्थसे उपर रहता है। अतः वह उसके समक्ष अपने दैन्यभावका सभी प्रकारसे चित्रण करता है! कवि जगद्धरभट्टकी दीनोक्तियोंमें अनुपम काव्य-सौन्दर्य निहित है।

कवि इस मनुष्यजन्मको जन्म-जन्मान्तरोंमें अर्जित पुण्यका परिणाम मानता है। वह अपने दैन्यभावका निवेदन करता हुआ कहता है:

अरे दयनीय मन! यदि किन्हीं प्राचीन एवं अनेक जन्मोंमें उपार्जित पुण्योंके परिपाकसे वह मानुष जन्मरूप निधि तेरे हाथ लग गयी है, तो रे मूढ़! सम्पूर्ण आपत्तियोंको दूर करनेमें समर्थ उस निधिको व्यर्थ ही क्यों बरबाद कर रहा है?[1]

लक्षणरहित अर्थात् इयत्तया परिच्छेद करनेके अयोग्य, अपार बल और तेजःशाली कामदेवको शोचनीय कर देनेवाले हे महेश्वर! सत्तारूपसे सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी शरणागतजनोंके कल्याणार्थ उत्तर दिशामें प्रत्यक्ष विराजमान होते हुए आप मेरे इन कलंकदायक मलोंको दूर कर दीजिये। विज्ञान एवं प्रकाशसे भरी हुई कृपादृष्टिसे अनुगृहीत कीजिए। संसारसे उत्पन्न हुए महामोहरूपी अन्धकारको नाशकरनेवाले हे हर! अज्ञानताके

---

१. यदि वराक सुकर्मविपाकतः करतले पतितस्तव शेवधिः।
तमखिलापदपाकरणक्षमं नयसि मूढ निरर्थकतां कथम्॥ स्तुति० १०।४७

कारण निःशंक होकर इकट्ठे किये हुए, अकल्याणकारक, आधि-व्याधि, प्रिय-वियोग, अप्रिय-समागम आदि अवस्थाके परिणामोंसे भरे हुए और दूसरोंके सामने प्रकट करके तथा पश्चात्ताप आदिके द्वारा प्रायश्चित न कर सकनेके कारण और भी बढ़े हुए मेरे इन अनेक प्रकारके पापोंको दूर कर दीजिये।[1]

भावविभोर होकर अपनी दीनताका चित्रण करता हुआ वह पुनः तेजस्वी कामदेवको भस्म करनेवाले शरणागतरक्षक भगवान् शंकरसे दीनता-पूर्ण निवेदन करता है कि हे प्रभो ! मेरे कर्मकलंकको दूर करके मुझे अपना अनुग्रह प्रदान कीजिये। मैं संसारसे उत्पन्न महामोहरूपी अन्धकारमें डूबा हुआ हूँ। अज्ञानताके कारण मैं निःशंक होकर आधि-व्याधि, इष्ट-वियोग एवं अनिष्ट-संयोग आदिसे मर्माहत होकर आपके समक्ष पश्चात्ताप प्रकट करता हूँ। हे भगवन् ! मुझ सा दीन एवं शक्तिहीन संसारमें अन्य कोई भी नहीं है।

मैं चिरकालसे करुणापूर्ण विलाप करता आ रहा हूँ। नाथ ! मुझे अभिमत वरदान और अभयदान दीजिये। भावुकोंके अंतःकरणको आनन्दित एवं मदोद्धतोंके अभिमानको चूर करनेवाले सदाशिव ! आप अपनी कृपादृष्टिसे मुझे उपकृत कीजिये।[2]

इस प्रकार कविने अपनी दीनताका चित्रण स्थान-स्थान पर किया है। वह अपने अंतःकरणको पापरूपी ग्रीष्मकालसे दग्ध मानता है और अपनी समस्त प्रतिभाको विलीन समझ भयाकुल हो दीनकण्ठसे पुकारता है :

हे पिनाकपाणे ! हे तीव्र दुःखसे पार लगानेवाले सदाशिव ! अत्यन्त कातर मैं जो कुछ भी भला-बुरा विलाप कर रहा हूँ, हे कैवल्यदाता शिव !

---

१. मलमलक्षवलक्षबलस्मरस्मरणकारणकार कदंकदम् ।
हर हरस्व भजस्व भजन् दिशं दिश विभासविभासदृशं दृशम् ॥
भव-संभव-संहृत-मोहतमोदमनेदमनेकमशंकमशम् ।
सविकास-विकार-चितं रचितं हर मे हर मेदुरितं दुरितम् ॥
स्तुति० ३०।३९-४०

२. कृपणं भगवन् बहुशोऽभिहितं बहुशोभिहितं दिश मे वचनम् ।
दिशमेव च नन्दितमानस तां दितमान सतां न पतामि यतः ॥
वही, ३०।४१

मोहरूप अरण्यके महान् संकट-स्थलमें पड़े मुझ आतुरके कल्याणकेलिए आप मेरे उस विलापपर अवश्य विचार कीजिए।[१]

चाटुकारिताका भाव

भक्तकवि विभिन्न प्रकारसे आत्मनिवेदन करते हुए चाटुकारिताका भी भाव प्रदर्शित करता है। वह अपने आराध्यको प्रसन्न करनेकेलिए नाना प्रकार की ठकुरसुहाती कहता है। यदि आराध्यमें उसे कोई दोष भी दिखलाई पड़ता है तो उसे भी वह गुणके रूपमें ही ग्रहण करता है क्योंकि भक्तकी दृष्टिमें भगवान् की प्रसन्नतासे बढ़कर अन्य कुछ भी नहीं है। उसका यह विश्वास रहता है कि यदि आराध्य प्रसन्न हो गये तो अन्य वस्तुएँ स्वयमेव प्राप्त हो जाती हैं। जबतक कोई भी भक्त अपने हृदयके गाम्भीर्यको निश्चलभावसे अभिव्यक्त नहीं करता तब तक उसे प्रभुकी कृपा प्राप्त नहीं होती है। कवि जगद्धरभट्टने काव्यात्मक रूपमें इस चाटुकारीभावका विवेचन किया है :

"अज्ञानमें डूबा और अपार संसारके भ्रममें पड़ा मैं यहाँ जो बार-बार अनेक चाटूक्तियाँ कहनेकी चपलता कर रहा हूँ उसमें भगवान् गिरिजापतिकी स्पृहणीय परमोत्कृष्ट सुकुमारताका ही अपराध है। अर्थात् यदि प्रभुका अन्तःकरण इतना अधिक दयालु न होता तो मैं इतनी चपलता नहीं कर सकता। प्रभुकी अपार करुणाको ही यादकर यह धृष्टता कर रहा हूँ।"[२]

"हे भगवन् ! जैसे अपने प्रियतम-विषयक अत्यन्त अनुरागसे विह्वल किन्तु उसका मनोरंजन करनेमें असमर्थ होनेके कारण कोई कामिनी चाटु

---

२. क्रन्दाम्यतः किमपि नाम पिनाकपाणे
तीव्रार्तिनिस्तरणकारण कातरोऽहम्।
मोहाटवीविकटसंकटसंस्थितस्य
तन्मेऽवधारय शिवाय शिवातुरस्य ।। स्तुति० ११।९

३. यच्चाटुचापलमलंध्यभवभ्रमोऽहं
मोहं वहन्निह मुहुर्मुहुराचरामि।
तत्र स्पृहावहमहार्यमहार्यपुत्री
भर्तुः परार्ध्यमपराध्यति सौकुमार्यम् ।। वही, ११।६

वचनोंसे पराङ्मुख हो प्रियतममे अपना दुःख निवेदन करती है, वैसे ही यह मेरी मति भी आपके विषयमें गाढ़ अनुरागसे विह्वल है किन्तु आपका मनोरंजन करने योग्य कार्य करनेमें असमर्थ है। इस कारण आपकी चाटुकारिता न कर केवल आपसे अपना दुःख निवेदन कर रही है।"[१]

वह पुनः कहता है कि जिस प्रकार कोई कामिनी अनुरागसे विह्वल होकर अपने प्रियतम को चाटुकारीपूर्ण वचनों द्वारा प्रसन्न करना चाहती है, ठीक उसी प्रकार मैं भी आपके गुणोंमें अनुरक्त हो अपने चाटुकारीपूर्ण वचनों द्वारा आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। मैं अज्ञानमें डूबा हुआ ससारके भ्रमर-जालमें आसक्त अपनी चाटूक्तियोंका प्रयोग इसी काममें कर रहा हूँ कि आप दयालु एवं आशुतोष हैं। हे भगवन्! आपकी अपार करुणा ही मेरे लिए सुखदायिनी है। मैं बार-बार आपसे प्रार्थना और आत्मनिवेदन करता हूँ कि आप अपनी भक्तिरूपी संजीवनी मुझे प्रदान करें।

भयविह्वलताका भाव

कवि संसारके कष्टोंसे प्रताड़ित हो भयविह्वल हो जाता है और आराध्यके चरणों में दीनताभरी प्रार्थना करता है। वह कहता है कि भगवन्! आपने गंगाको अपना विशाल मस्तक सौंप दिया, करुणाको निवासार्थ अपना हृदय दे डाला और जगदम्बा पार्वतीको बैठनेकेलिए अपनी विस्तृत गोद ही समर्पित कर दी। हे भगवन्! जब आप इतने उदार और करुणाशील हैं तो फिर मैं क्यो संसारके भयोंसे त्रस्त हो रहा हूँ? आप मेरी सुधबुध क्यों नहीं लेते? मेरी मति दूषित हो चुकी है। संसारके विषयरूपी प्रचण्ड तापने मेरे मनको अभिभूत कर दिया है। मैं संसारसे बिलकुल त्रस्त हूँ। भवव्याधिके दूर करनेवाले एकमात्र आप ही हैं। इस प्रकार कवि भयविह्वल हो भगवान्के चरणोंमें अपना आत्मनिवेदन प्रस्तुत करता है:

"हे भगवन्! मैं महामूर्ख हूँ जो समस्त जनताका संहार करनेमें प्रवीण एवं क्रोधवश प्रदीप्त अग्निके समान उल्बण दृष्टिवाले यमराजसे

---

१. त्वदनुरागभरेण कदर्थिता त्वदनुरंजनकर्मणि चाक्षमा।
इति मतिर्मम चाटुपराङ्मुखी हर करोति निजार्तिनिवेदनम्॥
स्तुति० १०।५२

भयभीत होता हुआ आपकी शरणमें आया हूँ। मुझे विश्वास है कि मुझ जैसे त्रस्त व्यक्तिकेलिए आपका आश्रय ही सुख प्रदान करेगा।"[1]

इस प्रकार कविने अपनी भयविह्वल स्थितिका चित्रण अनेक पद्योंमें किया है। भक्तिसिद्धान्तके अन्तर्गत अनन्यभावसे भगवान्‌की शरणको प्राप्त करना और आकुलता और व्याकुलताकी स्थितियोंका निवेदन करना आवश्यक है।

कल्मषभाव

राग, द्वेष, घृणा और मोह आदि ऐसे विकार हैं जो आत्माको कलुषित करते रहते हैं। जो कवि पूर्ण भावुकताकी स्थितिमें उपस्थित होकर अपने कालुष्योंका निरूपण करता है वह कवि भावचित्रण की दृष्टिसे उत्तम माना जाता है। कवि जगद्धरभट्टने अपने क्रोध, लोभ एवं मोहादिका निवेदन बड़ी ही सचाईके साथ प्रभुचरणोंमें उपस्थित किया है:

"हे भगवन् ! इस अनादि संसारमें रजोगुणके उद्रेकसे बाधित होकर जीव शुभ, अशुभ अथवा मिश्रित कर्मोंको करते हैं, इसलिये जीवोंके इन तीनों प्रकारके कर्मोंके भोगकेलिए आप अतिशय करुणापूर्ण होकर जो इन पृथिव्यादि समस्त भुवनोंका निर्माण करते हैं यह सब केवल संकल्पमात्रसे ही सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकट करनेवाले आप अखिलकोटि ब्रह्माण्डाधीश्वर प्रभुकी एक लीलामात्र है, क्योंकि आपकी स्वाभाविकी, नित्य एवं सचराचर भुवनोंकी आधारभूत क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति ये दोनों ही करण-निरपेक्ष हैं।"[2]

---

१. त्रस्तः समस्तजनतापहृतिप्रगल्भा
दीप्तानलोल्बणादृशः शिव जीवितेशात् ।
प्राज्ञः समस्तजनतापहृतिप्रगल्भं
त्वां जीवितेशमनलोग्रदृशं श्रयामि ।। स्तुति० ११।१२

२. अनादौ संसारे विदधति रजोबाधितधियः
शुभं वा घोरं वा शबलमथ वा कृत्यमणवः ।
ततस्तद्भोगार्थं तरुणकरुणापूर्णहृदयो
विधत्से यत्तेषां तनुभुवननिर्माणमखिलम् ।। (क्रमशः)

कवि जगद्धरभट्ट अपने आराध्यके समक्ष विभिन्न प्रकारसे अपने दोषों और कमियोंको प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि हे अभयदान देनेवाले शंकर ! आपके गुणोंमें स्थित हमारा मन जो सभी प्रकारसे शोकरहित और निर्भय हो चुका था पुन: कलुषित हो पापरूपी कीचड़में डूबा जा रहा है। हे प्रभो ! आप ही भक्तजनोंकी अभिलाषाको पूर्ण करते हैं और आपकी आराधनासे ही समस्त क्लेश और पाप नष्ट हो जाते हैं।[१]

प्रपत्तिभाव

भगवद्रूप प्राप्य वस्तुकी इच्छा करनेवाले उपायहीन व्यक्तिकी पर्यवसायिनी निश्चयात्मिका बुद्धिमें ही प्रपत्तिका स्वरूप रहता है। अनन्यसाध्य भगवत्प्राप्तिमें महाविश्वासपूर्वक भगवान्‌को ही एकमात्र उपाय समझकर प्रार्थना करते रहना ही प्रपत्ति है और इसीको शरणागति कहते हैं।[२] शरणागतिका अर्थ होता है शरण अर्थात् घर पर आया हुआ। जब भक्त भगवान्‌को ही उपाय और उपेय (फल) समझकर उनकी शरणमें चला जाता है तो उसे अन्य किसी साधनकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। प्रपत्तिमें उपायान्तरोंका परित्याग रहनेके कारण भक्त भगवान्‌के चिन्तनमें अधिक तल्लीन रहता है। सांसारिक एषणाओंकी इच्छा नहीं रहती और न मुक्ति ही उसके लिए काम्य होती है।

प्रपत्तिकी स्थितिमें भावोंका केवल गाम्भीर्य ही नहीं रहता, बल्कि उनका

तदेतत्संकल्पप्रकटितसमस्तत्रिजगतः
प्रभोर्लीलामात्रं भुवनमहनीयस्य भवतः।
तवैकस्य स्वामिन्यदिह सहजे सर्वविषये
क्रियाज्ञाने नित्ये करण-निरपेक्षे प्रभवतः।। स्तुति० ३५।१०-११

१. यदभयद भवत्यवस्थितेऽन्तः
समहिम नो हि मनो विशोकमासीत्।
विशदविशदकर्मकर्दमे
तत्सपदि विषादि विषाद केन जातम्।। वही १३।३४

२. अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम्।
तदेकोपायतायां च प्रपत्तिः शरणागतिः।।
पंचरात्रविष्वक्सेनसंहिता—साधनांक.कल्याण, पृ० ६०

विस्तार भी पाया जाता है। पंचरात्रकी लक्ष्मी-संहितामें प्रपत्तिके निम्नलिखित छः अंगोंका वर्णन आया है। [1]

१. आनुकूल्यका संकल्प : भगवान्‌की अनुकूलताकी प्राप्तिकेलिए भक्त भावविभोर होकर अहर्निश चिन्तन करता रहता है। मन-भ्रमर अत्यन्त चंचल रहता है। वह आराध्यको छोड़कर अन्यत्र कहीं न जा सके, इसके लिए भक्त प्रयत्नशील रहता है। प्रपत्तिके इस अंगका निरूपण स्तुतिकुसुमांजलिके कई सन्दर्भोंमें आया है। कविका आशुतोष शंकरके अतिरिक्त अन्य कोई आराध्य नहीं है। वह अपने देह, गेह एवं नेह आदिका त्यागकर भगवान्‌की अनुकूल कृपाको प्राप्त करनेका संकल्प करता है और यह संकल्प उसका समर्पणरूप होता है।

२. प्रातिकूल्यका वर्जन : संग, देश काल, वर्म और स्वभाव आदि प्रपति के बाधक दोष हैं। भक्त कवि अपने इन समस्त दोषोंको त्यागकर प्रभुकी शरण प्राप्त करनेकेलिए प्रयत्नशील रहता है।

३. रक्षिष्यतीति विश्वास : भगवान् सदाशिव पापियों, पतितों और अनाथोंके रक्षक हैं अतः वे हमारी रक्षा क्यों नहीं करेंगे इस प्रकारका अडिग विश्वास भक्त कविके मानसमें रहता है। स्तुतिकुसुमांजलिमें इस प्रकारके विश्वासका निरूपण अनेक स्थलोंपर आया हैं। जब तक भक्त भावविभोर होकर भगवान्‌को अपना आत्मनिवेदन प्रस्तुत नहीं करता है तब तक उसका उत्थान नहीं हो पाता।

४. गोप्तृत्ववरण : संसार-सागरसे पार उतारनेकेलिए भगवानको ही गोप्ताके रूपमें वरण करना बड़ा आवश्यक है। कवि जगद्धरभट्टने भगवान्‌को ही सर्वोपरि दुःखरक्षकके रूपमें चित्रित किया है। उन्होंने अपने भावकी पुष्टिके लिए अनेक उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं।

५. आत्मनिक्षेप : आत्मनिक्षेपका तात्पर्य आत्मसमर्पणसे है। यह शरीर और

---

१. इन षडंगोंका चित्रण निम्न प्रकार किया गया है—
अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥
पंचरात्रलक्ष्मीसंहिता, साधनांक, कल्याण, पृ० ६०

उसके समस्त सम्बन्ध प्रभुके हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई भी शरणागत-रक्षक नहीं है।

६. कार्पण्य : भक्त जबतक अहंकारवश अपनी शक्ति पर विश्वास करता है तब तक उसका उत्थान सम्भव नहीं है। जब वह अपनेको अकिंचन समझ लेता है तभी उसका अभ्युदय होता है। कवि जगद्धरभट्टने अपनेको अकिंचन प्रतिपादित किया है। उसने दृप्त और आर्त्त दोनों ही रूपोंमें अपना आत्मनिवेदन अंकित किया है।

प्रपत्तिभावकी दृष्टिसे इस स्तुतिकुसुमांजलिमें दीनता, मानमर्षता, भयदर्शना, भर्त्सना एवं आश्वासन आदिका भी निरूपण हुआ है :

"प्रभो ! जैसे अपनी निर्मल किरणोंद्वारा सांसारिक संतापको शान्त करनेवाले अमृतको बरसाती हुई एवं गाढ़ अन्धकारको दूर करके समस्त दिशाओंको प्रकाशित करती हुई चन्द्रकला आपके मस्तकपर विराजती है, वैसे ही सांसारिक दोषोंसे उत्पन्न हुए सन्तापको शान्त करनेकेलिए अमृतकी वर्षा करनेवाली, अज्ञान रूपी गाढ़ अन्धकारसे अन्ध हुए लोगोंके उस अन्धकारको दूर हटाती हुई एवं समस्त दिशाओंको प्रकाशित करती हुई आपकी अभयवाणी आपके मुखारविन्दमें विराजमान हो। हे प्राणनाथ ! अपार करुणाके परिपाकसे विकसित माधुर्यसे परिपूर्ण जो आपका हृदय भी सांसारिक सन्तापोंसे तप्त हुए मुझ अनाथका इस तरह तिरस्कार कर रहा है, मेरी सुधि नहीं ले रहा है, यह सब महिमा मेरे ही दुर्भाग्यकी है। क्योंकि अभागा दरिद्र पुरुष अत्यन्त दूरसे चलकर श्रान्त होता हुआ रत्नाकर (समुद्र) के तटपर पहुँचकर भी अपने ही दुष्कर्मोंके कारण वहाँसे निराश चला आता है।"[1]

---

१. वर्षन्ती भवदोषपोषपरुषप्लोषप्रमोषक्षमं
पीयूषं विशदांशुभिर्दश दिशत्काशप्रकाशा दिश।
कर्षन्ती विषमं तमः प्रमथितालोकस्य लोकस्य गी-
श्चान्द्री मूर्ध्नि कलेव देव भवतो वक्त्रे विधत्तां पदम्॥
यत्पर्याप्तकृपाविपाकविकसन्माधुर्यधुर्यं तव
स्वान्तं भीमभवोपतापविपदि स्फीतावहेलं मयि।
स्वामिन्नेष विधिर्ममैव विधुरो दूराध्वखिन्नजन-
स्तीराद्रत्ननिधेर्व्यपैति विफलः स्वैरेव दुष्कर्मभिः॥
स्तुति० ३३।२३-२४

स्पष्ट है कि कविका मानस प्रपत्तिभावके चित्रणमें बहुत ही सजग है और जहाँ भी उसे अवसर प्राप्त होता है वहीं वह भावविभोर होकर अपनी कल्पनानिधिको उद्घाटित कर देता है। एक स्थानपर कविने भगवान् सदाशिवसे अपनी समता प्रदर्शित करते हुए भी अपना दैन्यभाव वर्णित किया है। प्रपत्तिभावके अंकनमें ऐसा सुन्दर सरस उदाहरण अन्यत्र शायद ही कहीं उपलब्ध होगा। कवि कहता है: "काम (मन्मथ और अभिलाषा) आपकी ही तरह मेरे विषयमें भी निष्फल रहा है, वह सफलता प्राप्त नहीं कर सका है। आपने उसे भस्म करके निष्फल बना दिया है और मैंने दारिद्र्य-भावके कारण काम (इच्छा) को व्यर्थ सिद्ध कर दिया है। आपने शरणागतकी रक्षाकेलिए काल (कालकूट विषको या यमराजको) विफल बना दिया है; मैंने भी अपने कालको (समयको) निरर्थक नष्ट कर दिया है। उक्त दोनों बातोंमें आपसे बिल्कुल कम नहीं हूँ। पुराणोंमें आपको 'विध्वस्तधाम' कहा गया है और मैं भी 'विध्वस्तधाम' हूँ। भले ही आप अपने शरीरमें चन्द्रतेजको धारण कर अपने घर बारके न होने से विध्वस्तधाम हों, पर प्रभो! मैं भी संसारमें कहीं एक छोटी कुटियाके भी न रहनेसे विध्वस्तधाम हूँ। आप श्मशानमें चक्कर लगाते हैं तो मैं गली-गली मारा-मारा फिरता हूँ। मैं हूँ तो आपके बराबर, पर आप शिव हैं और सुन्दर हैं किन्तु दुर्दैववश मैं अशिव हूँ, दीन हूँ और नाना प्रकारसे जर्जरित हूँ।"[1]

इतना ही नहीं कविने अन्य कई दृष्टियोंसे भी शिवके साथ अपनी समता प्रस्तुत करते हुए अपने दैन्यभाव का हृदयग्राही चित्रण प्रस्तुत किया है। वह कहता है कि हे सदाशिव! जैसे आपकी मूर्ति 'विधुरोचिता' (चन्द्रमासे सुशोभित) है वैसे ही मेरी भी यह मूर्ति 'विधुरोचिता' (दीनता से युक्त) है। जिस प्रकार आपकी दृष्टि 'विषमा' है (तीन नेत्र होनेसे विषमसख्यावाली है) उसी प्रकार मेरी भी दृष्टि 'विषमा' (भेदभावसे पूर्ण) है। आप 'शूली' (त्रिशूलधारी) हैं, मैं भी 'शूली' (दुःखरूपी शूल रोगसे पीड़ित) हूँ। जिस प्रकार आप 'विषादहतशक्ति' (विषाद् अहत शक्ति अर्थात् हलाहलके

---

१. कामस्त्वयीव मयि निष्फलतामवाप
क्षिप्तो मयापि विफलो भवतेव कालः।
विध्वस्तधाम मम देव वपुस्तवेव
कष्टं शिवस्त्वमशिवस्तु विधिक्षतोऽहम्॥ स्तुति० ११।९४

पानसे अक्षीण शक्ति) हैं, उसी प्रकार मैं भी 'विषादहतशक्ति' (खेद से हतशक्ति) हूँ। इस प्रकार आप और मुझमें समानता होते हुए भी दुःख यही है कि आप शिव (आनन्दमय) हैं और मैं अशिव (आनन्दहीन) हूँ।[1]

कवि पुनः कहता है, "हे प्रभो! आपके कण्ठमें बिषम विषका निवास है। मेरे भी कण्ठमें मात्सर्य रूपी विषम विषका निवास है। आप भूतेश्वर (समस्त प्राणियोंके ईश्वर) हैं मैं भी भूतेश्वर (उग्रलोगोंमें अग्रणी) हूँ। आप पशुपति हैं (अणु, माया और कर्मरूप तीनों पाशोंसे बद्ध समस्त प्राणियोंके पति हैं) मैं भी पशुपति (पशुसदृश अज्ञ प्राणियोंमें श्रेष्ठ) हूँ। जिस प्रकार आपका अंग गुरुरुक्ज्वलित (विशाल कान्तिसे दीप्त) है, उसी प्रकार मेरा भी अंग गुरुरुक्ज्वलित (महान् व्याधिसे दग्ध) है। आप और मुझमें इस प्रकारकी समानता होनेपर भी हाय मैं तो अशिव हूँ और आप शिव हैं। यह कितने आश्चर्य की बात है।"[2]

इस प्रकार कवि जगद्धरभट्टने प्रेमभाव, सन्तोषभाव, करुणभाव, दयाभाव, शृंगारभाव, बलाधिकारभाव एवं आत्माधिकारभाव प्रभृति भावोंका बहुत ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया है :

"अहा! कन्दराके अन्दरसे निकलते हुए मृगेन्द्रबालकोंके समान और गजेन्द्रके मस्तकसे निकलते हुए मुक्ताओंके अंकुरोंके समान मेरे मुखसे निकलते हुए ये मनोहर स्तोत्र किस सचेतनके मनको मुग्ध नहीं करते। अर्थात् सभीके मनको मोहित कर देते हैं।"[3]

---

१. मूर्तिस्तवेव शिव मे विधुरोचितेयं
दृष्टिस्तवेव भगवन् विषमा ममापि।
शूली विषादहतशक्तिरहं यथा त्वं
कष्टं शिवस्त्वमशिवस्तु विधिक्षतोऽहम् ॥ स्तुति० ११।९६

२. कण्ठे विषं वसति मे विषमं तवेव
भूतेश्वरः पशुपतिश्च भवानिवाहम्।
अगं ममापि गुरुरुग्ज्वलितं तवेव
कष्टं शिवस्त्वमशिवस्तु विधिक्षतोऽहम् ॥ वही, ११।९७

३. मृगेन्द्रशावा इति कन्दरोदरात्
करीन्द्रकुम्भादिव मौक्तिकोत्कराः।
विनिःसरन्तः कवितुर्मुखादमी
मनज्ञोतां बिभ्रति कस्य न स्तवाः ॥ वही, ३८।१४

"हे नाथ ! हे विश्वकर्मा-पुत्र मयसे पूजित प्रभो ! मैंने जो बड़ी उत्कण्ठासे यह आपकी अति सुन्दर स्तुति की है, संसाररूपी महाव्याधिको मिटानेवाली वह (स्तुति) लोगों की समस्त आपत्तियोंको दूर करे।"[१]

"हे विभो ! त्रैलोक्यके उद्धारमें समर्थ होकर भी एकमात्र अशरण प्राणियोंकी रक्षा करनेवाली होकर भी जो आपकी करुणामयी दृष्टि मुझ आर्तकी उपेक्षा कर रही है, यह सब मेरे प्राचीन पाप-कर्मोंकी ही महिमा है। आकाश मेघोंद्वारा धारण कियेगये जलसे सम्पूर्ण पृथ्वीको परिपूर्णकर देता है, फिर भी यदि दो तीन बूंदें मयूरके मुखमें न पड़ें तो इसमें आकाशका क्या दोष है ? हे चण्डीपते ! अन्तरमें निरन्तर नवीन करुणासे आक्रान्त और शरणागत लोगोंके क्लेशोंके लेशमात्र सम्पर्कसे रहित अर्थात् प्राणियोंके क्लेश जिसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते ऐसे परम आनन्द-स्वरूप अतीव स्वच्छ हृदयवाले आप प्राणरक्षाकेलिए याचना करनेवाले दीन एवं पामर प्राणियोंकी जन्म मरणादिरूप विपत्तिका सन्ताप दूर करनेमें चतुर अपना प्रतिवचन हमें दीजिये अर्थात् हमें आश्वासन दीजिए। अनेक दुःखों और रोगोंसे भरी यह भव-सरणि अनन्त छिद्रों (दुःखरूप गर्तों) से परिपूर्ण है। यह अपार मोह-रजनी बोधरूपी प्रकाशसे विहीन है। ये अत्यन्त कठोर विषयरूपी उत्पात-वायु इस चेतनारूपी दीपको शान्त कर रही है। इसलिए हे विभो ! आप शरणागतोंपर सम्पूर्ण क्लेशोंको शान्त करनेवाली अपनी करुणामयी दृष्टि डालिये।"[२]

---

१. साधुनाथ नुतिरीप्सया मया या मयार्चित कृतात्र साधुना।
सा धुनातु विपदं भवामयायामयापनलसद्रसाधुना।। स्तुति० ३०।५

२. यद्विश्वोद्धरणक्षमाप्यशरणत्राणैकशीलापि ते
मामार्तं दृगुपेक्षते स महिमा दुष्टस्य मे कर्मणः।
देव्यां दिव्यमूतैः पयोधरधृतैः पृथ्वीं पृणत्यां कणा
द्वित्राश्चेन्न मुखे पतन्ति शिखिनः किं वाच्यमेतद्दिवः।।
शुभ्रं बिभ्रत्तरुणकरुणाक्रान्तमश्रान्तमन्तः
स्वान्तं शान्तप्रणतजनताक्लेशलेशप्रवेशम्।
प्र णत्राणप्रणयकृपणप्राकृतप्राणिवर्ग-
व्यापत्तापक्षपणनिपुणां मुञ्च चण्डीश वाणीम्।।

(क्रमश)

"जिसकी कृपाके विना, अकर्मण्य होनेके कारण, लोग अपने-अपने कर्ममें नहीं प्रवृत्त हो सकते और जो अतिशय करुणालु प्रभु धैर्यहीन प्राणियोंको भी आस्था देता है, वह भगवान् शंकर आपको कृतकृत्य करे।"[1]

"हे प्रभो! जघनकी शोभासे रमणीय और कुटिल केशोंसे सुशोभित मुखद्वारा भ्रमरोंसे युक्त कमलको भी लज्जित कर देनेवाली, परम अनुरागवती कामिनी मदन और मदके द्वारा उत्पन्न हुए नवीन हाव-भावोंसे आपके परम प्रसन्न शरणागतकी सेवा करती है।"[2]

"प्रभो! जैसे काम (कामदेव) आपके विषयमें निष्फलताको प्राप्त हुआ, वैसे ही मेरे विषयमें भी काम (अभिलाषा) निष्फलताको ही प्राप्त हुआ। जैसे आपने काल (मृत्यु) को विफल किया वैसे ही मैंने भी काल (समय) को विफल (व्यर्थ) किया और जैसे आपका शरीर विध्वस्तधाम (चन्द्रमाके प्रकाशसे युक्त) है वैसे ही मेरा शरीरभी विध्वस्तधाम (तेजहीन) है। पर खेद तो यह है कि आप शिव हैं और मैं अभागा अशिव।"[3]

धनके लोभ अथवा प्रमादसे हतबुद्धि कुत्सित कवियोंद्वारा कुत्सित स्थानमें नष्टकी हुई वाणी केवल उन कवियोंको धिक्कार देनेकेलिए, उनके पराभवके-लिए तथा पश्चात्तापकेलिए समर्थ होती है। किन्तु सुकवियोंद्वारा सुन्दर स्थानमें व्ययकी हुई वाणी सत्कवियोंके नामको प्रख्यात करनेकेलिए, इन्हें सकल सम्पत्ति प्रदान करनेकेलिए, मनकी प्रसन्नताकेलिए, प्रत्येक व्यक्तिके

अदभ्रश्वभ्रेयं भवसरणिरातंकबहुला
गलद्बोधज्योत्स्ना निरवधिरसौ मोहरजनी।
नयन्त्येते शान्तिं विषमविषयोत्पातमरुतः
प्रदीपं प्रज्ञाख्यं प्रतिदिश दृशं क्लेशशमनीम्॥ स्तुति० १०।८१-८३

१. नायं विनाऽयं विदधाति लोकः कर्मण्यकर्मण्यतयाभियोगम्।
सत्त्वानसत्त्वानपि नेतुमास्थामर्थः समर्थः स यतोऽभ्युदेति॥ वही, २६।११

२. जघनजघनशोभा स्पर्धमाना सभृंगं
कमलकमलकान्तक्रान्तभासा मुखेन।
मुदितमुदितरागा सेवते देव रामा
मदनमदनवीनैस्त्वत्प्रपन्नं विलासैः॥ वही, १८।१७

३. वही, ११।९४

उपकारकेलिए और अन्त समयमें आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिरूप परमकल्याण की प्राप्तिकेलिए समर्थ होती है।[1]

काव्यमूल्योंकी दृष्टिसे स्तुतिकुसुमांजलिकी यह भाव-सम्पत्ति किसी महाकाव्यकी भावसम्पत्तिसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। कविने भावोंके चित्रणमें अपनी आत्मनिष्ठाको पूर्णतया संयोजित कर दिया है।

स्तुतिकुसुमांजलिका रस-विश्लेषण

रस-अवस्था तक पहुँचनेकेलिए रसनीय भावोंकी योग्यता निम्नलिखित पाँच सिद्धान्तोंपर निर्भर करती है।

१. मनोवेगकी योग्यता, न्यायता और औचित्यका सद्भाव : कोई भी भावना उचित आधारके रहने पर ही रस-अवस्थाको प्राप्त होती है। ऐसा न होनेपर उत्कृष्ट मनोभाव भी निर्बल हो जानेसे स्थायिभावको प्राप्त नहीं हो पाते। अतः यह आवश्यक है कि रचनाकी आधारशिला या पृष्ठभूमि सबल, गम्भीर और मार्मिक हो। रचनाका मूल्य इसीसे निर्धारित होता है।

२. भावनाकी तीव्रता और विशदता : जब हम किसी रचनाको पढ़कर भावमग्न हो जाते हैं और अपनेको भूल जाते हैं तभी हम उस रचना को तीव्र और समर्थ कह सकते हैं। भावोंकी तीव्रता और विशदता रागद्वेष जैसे सक्रिय भावोंको उत्तेजित करती है उसी प्रकार शान्त और करुण जैसे निष्क्रिय भावोंको भी। ये दोनों बातें भावोंको स्थायित्व प्रदान करती हैं।

३. मनोवेगकी स्थिरता या चिरकालिकता : किसी भी रचनाको साहित्यिक दृष्टिसे श्रेष्ठ होनेकेलिए उसमें वर्णित मनोवेगों या भावनाओंमें स्थायित्व होना चाहिये। मनोभावोंका तरंगित और उद्वेलित होना तो आवश्यक है पर उनका भंग अभीष्ट नहीं। इसके अभावमें रचना रसवती नहीं कही जा सकती।

---

१. **अस्थाने गमिता लयं हतधियां वाग्देवता कल्पते
धिक्काराय पराभवाय महते तापाय पापाय वा।
स्थाने तु व्ययिता सतां प्रभवति प्रख्यातये भूतये
चेतोनिर्वृतये परोपकृतये प्रान्ते शिवावाप्तये॥ स्तुति० ५।३५**

४. भावनाकी विविधता और व्यापकता : कोई भी रचना तब तक रुचिकर नहीं हो सकती जबतक उसमें भावोंकी विविधता न हो। यदि आद्यन्त एक ही भाव व्याप्त रहे तो रचना सहृदयोंकेलिए भी नीरस हो जायगी। एक भावका प्राधान्य रहनेपर भी विविध भावोंकी व्यापक अवतारणा आवश्यक है। किसी भी कृतिका काव्यत्व मनोवेगोंकी विविधता और व्यापकतापर ही निर्भर है।

५. भावनाकी उदात्तताका सद्भाव : सभी भाव एकसे नहीं होते। कोई भाव उदात्त या प्रशस्त होता है तो कोई सामान्य या साधारण। उदात्त भावोंकी श्रेष्ठता स्वतः सिद्ध है। यह कलापक्षकी अपेक्षा मनोवेगोंको अधिक तरंगित करता है और ये मनोवेग हमारे हृदय-पटलपर अपना स्थायी प्रभाव अंकित करते हैं।

किसीभी कृतिको सफल तभी माना जा सकता है जब उसके भावोंका साधारणीकरण हो। साधारणीकरणके अभावमें कोई भी रचना उपादेय नहीं हो सकती। जब कवि या साहित्यकार अपनी कृतिके भावोंको इस प्रकार अभिव्यक्त करता है, जिससे वे भाव सर्वसाधारणकेलिए आस्वाद्य बन जाँय, तभी वह कृति सफल मानी जाती है।

करुणरस

प्रस्तुत स्तुतिकुसुमांजलिका अंगीरस शान्तरस है यतः स्तोत्रकाव्यमें विकारोंका प्रशमन होने से शान्तरस ही सर्वोपरि अस्तित्व रखता है। स्तुतिकुसुमांजलिमें करुणरसके चित्रणमें कविको महती सफलता प्राप्त हुई है। ऐसा मालूम पड़ता है कि कविने साहित्यके समस्त करुणरसको एक ही कृतिमें भर देनेका प्रयास किया है। कृपणाक्रन्दन, दीनाक्रन्दन और करुणाक्रन्दन स्तोत्र तो करुणरसके भाण्डार हैं। प्रत्येक पद्यमें करुणरस छलकता हुआ परिलक्षित होता है। अंगरूपमें शृंगार, वीर एवं रौद्र आदि रसभी उपलब्ध होते हैं। कवि ने इस ग्रन्थमें भवभूतिके कथन 'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्' का पूर्णतः समर्थन किया है। प्रस्तुत श्लोक करुणरसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं :

दीर्घाण्यघान्यधिशुचीव भवन्त्यहानि
हानिर्बलस्य शरदीव नदीजलस्य।
दुःखान्यसत्परिभवा इव दुःसहानि
हा निःसहोऽस्मि कुरु निःशरणेऽनुकम्पाम ॥[1]

---

१. स्तुति० ९।३६

विषयपन्नगपाशवशीकृतं भवमहार्णवमग्नमनीश्वरम् ।
बहलमोहमहोपलपीडितं हर समुद्धर मां शरणागतम् ॥[1]
प्रणततापविपत्क्षपणक्षमां दलितसन्ततसन्तमसस्थितिम् ।
हृदि निधेहि दयाममृतस्रुतं हरिणकेतुकलामिव मूर्धनि ॥[2]

यहाँ संसारके दुःख एवं पराभव आलम्बनविभाव; भगवान्‌के प्रति प्रेम, उनके गुणका स्मरण, दुर्जनोंके तिरस्कार आदि उद्दीपनविभाव; उच्छ्वास, प्रलाप एवं पूर्वकृत कर्मोंकी निन्दा आदि अनुभाव; व्याधि, ग्लानि, मोह, स्मृति, दैन्य, चिन्ता एवं विषाद संचारिभाव तथा शोक स्थायिभाव हैं।

करुण रसके सभी पद्योंमेंविभाव संचारिभाव एवं अनुभाव आदि उपर्युक्तके समान ही हैं, यद्यपि वर्णन शैलीके भिन्न होनेसे करुणाको विविध रूपोंमें अवश्य अभिव्यक्त किया गया है। निःसन्देह नवम, दशम और एकादश स्तोत्रोंमें करुणाका चित्रण अनेक रूपोंमें किया गया है। करुणका विवेचन करुण, अतिकरुण, महाकरुण, लघुकरुण और सुखकरुण आदि करुणाके मात्राभेदके अनुसार किया गया है। यह रस बड़ा ही कोमल है। कवि जगद्धरभट्टने प्रीति और वात्सल्य आदि की सहचरी भावनाओंका भी सुन्दर चित्रण किया है। प्रीति केवल शोकको उत्पन्न नहीं करती, बल्कि सहानुभूतिको जागृत करती है। सहानुभूतिके साथ सहृदयता हृदयको दिव्य बना देती है। स्तोत्रोंमे समाहित करुण प्रियवियोग जनित नहीं है। कवि आराध्यको प्राप्त करनेकेलिए विकल है; उसकी इस विकलताका चित्रणही करुणरसका सर्वस्व है।

शृंगाररस

कवि जगद्धरभट्टने स्तुतिकुसुमांजलिमें प्रसंगवश शृंगाररसका भी चित्रण किया है। जब वह शिव एवं पार्वतीके रम्य रूपका विवेचन करता है तो उसकी कल्पनाका भाण्डार उद्घाटित हो जाता है और उसकी लेखनी शृंगाररसके प्रतिपादनमें प्रवृत्त हो जाती है। अर्द्धनारीश्वरस्तोत्रमें अनेक स्थानोंपर शृंगारका चित्रण आया है। यह रस कवियोंकेलिए है भी अत्यन्त प्रिय। चित्तको द्रवित और स्फीत करनेका पूर्ण सामर्थ्य शृंगाररसमें है।

---

१. स्तुति० १०।५९
२. वही, १०।६३

निम्नांकित श्लोक श्रृंगाररसका श्रेष्ठ उदाहरण हैं :

शिवस्तवकृतो मधौ मलयवायुवेल्लल्लता
गलन्मधुमदोन्मदभ्रमरपुंजगुञ्जच्छलात्।
नदन्मदनशिंजिनीझणितभीतसीमन्तिनी
भुजाकलितकन्धरा अधिवसन्ति लीलावनम्॥[1]

भगवान् शंकरकी स्तुति करने और सुननेवाले सहृदयजन वसन्त ऋतुके समय मन्द-मन्द मलयसमीरसे कम्पित लताओंसे गिरनेवाले मकरन्दके मदसे उन्मत्त हुए भ्रमरोंकी गुञ्जारके व्याजसे कामदेवके धनुषकी शब्दायमान प्रत्यञ्चाकी झंकारसे भयतीत सीमन्तिनियोंकी भुजाओंसे कण्ठमें आलिंगित हो नन्दनवनकी विहारस्थलीमें निवास करते हैं। अन्यत्र भी कविने श्रृंगारका सुन्दर चित्रण किया हैं :

"भगवान् शंकरकी स्तुति करनेवाले सत्कवि और सुननेवाले प्रेमरसिक सहृदय जन कामके उद्रेकसे अलसायी कामिनियोंके स्तन-मण्डलसे आलिगित-हृदय हो प्रात:कालमें, गृहसमीपवर्ती बाहरी आंगनकी पुष्पवाटिकामें आम्रवृक्षों पर बैठे मधुर स्वरवाले पिकोंके 'कुहू' 'कुहू' शब्दोंसे, मलयाचलके मन्दमन्द समीरसे कम्पित मल्लिकाओंके विकसित पुष्पोंसे स्खलित होनेवाली भ्रमर-मण्डलीकी गुंजारोंसे, जलके अन्दर विलीन मछलियोंके संघट्टनेसे स्फुरित बावड़ीके जलके कम्पनसे भयभीत कमलोंके मध्य रहनेवाले हंस-शिशुओंके शब्दोंसे, शब्दायमान दुन्दुभि, झल्लरी एवं भेरी आदि वाद्योंकी गम्भीर ध्वनि सुनकर हर्षविभोर हो नाचनेवाले घरके पालतू मोरोंकी 'केका' वाणीसे, अमृततुल्य मधुर वारुणीरसके पानसे सुकोमल कण्ठद्वारा निकलते गायिकाओंके नूतन श्रुति-मधुर गीतोंसे, चतुर वादकोंके मधुर राग, स्वर और क्रमसे सम्मिश्रित वीणाकी ध्वनिसे संमिश्रित वंशीके निनादोंसे, गुण-गणोंके वर्णनमें तल्लीन बन्दीगणोंकी प्रभातकालीन स्तुतियोंको सुनकर जगे हुए शुक और सारिकाओंकी कलह-क्रीड़ाके कोलाहलसे एवं बाहर विहार करती अंगनाओंकी शब्दायमान रत्नमयी कांचीपर लटकती स्वर्ण-घण्टिकाओंके झण-झण शब्दों और खुरोंद्वारा पृथ्वीको खोदनेवाले उद्धत घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे जगकर ग्रीवाको कम्पित करनेवाले हाथियोंके कण्ठ-स्थलमें बंधी घण्टाओंकी गम्भीर ध्वनिसे धीरे-धीरे निद्राका परित्याग करते हैं।"[2]

१. स्तुति० १०।८६
२. वही, १०।८७-९१

यहाँ श्रृंगार रस; नायक-नायिका आलम्बन; भगवान् शंकर आश्रय; प्राकृतिक रम्य दृश्य, मलयानिल भ्रमरगुंजार एवं कोकिलकी कूक उद्दीपन; अलसायी कामिनियोंका स्पर्श एवं आलिंगन आदि अनुभाव; आवेग, वाचालता, रोमांच एवं हर्षसूचक शरीरादि चेष्टाएँ संचारिभाव तथा रति स्थायिभाव हैं।

इस प्रकार कविने संयोग-श्रृंगारका अद्भुत चित्रण किया है। कविने संयोग-श्रृंगारका एक और सुन्दर सन्दर्भ उपस्थित किया है। शंकरसे किसी कारणवश पार्वती रूठ जाती हैं। वे मानवश शंकरके अनुनय-विनयको ठुकराती जाती हैं। रावण अपने बल-पौरुषके अहंभावमें आकर कैलाशपर्वतको हिला देता है जिससे मानवती पार्वती आतंकित हो जाती हैं और शंकरका आलिंगन करने लगती हैं :

जयत्यतुलविक्रमोन्मिषदखर्वगर्वज्वर
ज्वलच्चपलमन्मथोन्मथनभग्नभोगस्पृहः।
दशास्यभुजमण्डलीतरलितैकपिगाचल-
त्रसद्गिरिसुताहठग्रथितकण्ठपीठो हरः ॥[1]

यहाँ रस संभोग-श्रृंगार; आलम्बन पार्वती और शंकरका विलास; उद्दीपन कैलाश पर्वतका हिलना, अनुकूल पवन एवं प्राकृतिक सौन्दर्य; अनुभाव मानवती पार्वतीका मान, प्रेमपूर्ण आलाप, स्नेहस्निग्ध परस्परावलोकन एवं आलिंगन आदि, संचारिभाव उत्सुकता, लज्जा, चपलता, हर्ष, मोह एवं चिन्ता आदि तथा स्थायिभाव रति है।

वीररस

स्तोत्र काव्य होनेपर भी पराक्रम, निर्भयता, युद्ध एवं साहस आदिके कार्योंमें वीरभावका भी चित्रण हुआ है। शंकर त्रिपुरदाह एवं बाणासुरवध आदि प्रसंगोंमें अपने उत्साहको व्यक्त करते हैं। अतः स्थायिभाव उत्साह केवल प्रदर्शनकी सीमामें न बंधकर साहसिकताका परिचय देता है। अतएव इसे वीररसके अन्तर्गत स्थान देना तर्कसंगत है। इस स्तोत्र काव्यमें युद्धवीर का बहुत ही सुन्दर चित्रण आया है। निम्नलिखित श्लोक वीररसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं :

चक्री मुखाग्रविलसज्ज्वलनोग्रजिह्वालीढाम्बरः क्षितिधरेन्द्रधनुर्धरस्य।
यस्यागमन्निधनसाधनतां पुराणां बाणीकृतश्च रणमूर्ध्नि गुणीकृतश्च ॥

---

१. स्तुति० ६।६

चक्रायुधं विशिखतामुडुचक्रवर्तिचक्राभिधानसुहृदौ रथचक्रभावम् ।
नीत्वासृजत्त्रिदशधाम्नि रसातले च यो हर्षशोकमयमश्रु पुरांगनानाम् ॥[1]

जिसने संग्रामके मध्य मन्दराचलपर्वतरूपी धनुष धारणकर बाणकी नोकमें प्रकट हुए अग्निकी उल्बण ज्वालाओंसे सम्पूर्ण आकाश-मण्डलमें व्याप्त चक्री विष्णुको बाण बना और मुखाग्रपर अग्निके समान धधकते हुए महा-विषसे भरी हुई उल्वण जिह्वाओंसे युद्धरूप वस्तको भस्म करनेवाले चक्रको प्रत्यंचा बनाकर त्रिपुरासुरका संहार किया, उस स्वेच्छा-विहारी भगवान् सदाशिवकी मैं शरण लेता हूँ। जिस प्रभुने भगवान् विष्णुको बाण तथा चन्द्रमा और सूर्यको रथके दो चक्र बनाकर स्वर्ग तथा पातालकी पौरांगना-ओंकी आंखोंसे हर्ष और शोकके आँसू बहाये, अर्थात् त्रिपुरासुरको मारकर स्वर्गकी स्त्रियोंकी आँखोंसे तो हर्षाश्रु और पातालमें दैत्य-स्त्रियोंकी आँखोंसे पतिमरणवियोग-जन्य शोकाश्रु-विन्दुओंको बहाया, उस परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ।

यहाँ रस वीर; आलम्बन त्रिपुरासुर; उद्दीपन धनुषकी नोकसे उत्पन्न अग्निकी ज्वालाएँ एवं त्रिपुरासुरकी दर्पोक्तियां; अनुभाव गर्वीली वाणी एवं अस्त्र-शस्त्रकी झंकार; संचारिभाव आवेग, गर्व, औत्सुक्य, मति एवं धृति आदि एवं स्थायिभाव उत्साह हैं।

भयानकरस

भयंकर परिस्थितिके कारण भय उत्पन्न होता है। इसके मूलमें संरक्षणकी प्रवृत्ति,पलायन या विवर्जन है। भयका सामना करनेकी शक्ति न होनेके कारण पलायन करनेको बाध्य होना पड़ता है। कवि जगद्धरभट्टने शंकरका विकराल रूपभी चित्रित किया है। अग्निकी ज्वाला उगलते हुए सर्प, भयानक दाढ़ोंसे विकराल अघोरमुख एवं मुण्डमालासे युक्त कण्ठ किसके हृदयमें भयका संचार नहीं करेगा :

दंष्ट्राकरालमपि घोरमघोरवक्त्रं यस्य प्रपन्नभयभंजनभंगिमेति ।
यस्यांगभस्मकणिकाश्चरणाश्रितेषु कर्पूरधूलिपटलश्रियमाश्रयन्ति ॥

---

१. स्तुति० ८।१७-१८

यस्यापि कृष्णभुजगा भुजगा भजन्तमिन्दीवरस्रज इव प्रविनन्दयन्ति ।
किं चांगसंगि मरुदीरितमेति यस्य मुण्डं नमत्स्वमलमंगलकम्बुशोभाम् ॥[1]

"जिस प्रभुका दाढ़ोंसे विकराल भी वह अघोर नामक मुख अपने शरणागतोंके जन्म-मरण-जन्य भयको दूर कर देता है और जिसके अंगमें लगे भस्मकण चरणाश्रित सेवकोंको कर्पूरके धूलि-पटलके समान स्वच्छ दिव्यातिदिव्य ऐश्वर्य प्रदान किया करते हैं, जिसकी भुजाओंमें लिपटे काले सर्प भी भक्तजनोंको नीलकमलोंकी मालाके समान आनन्द प्रदान करते हैं, जिसके अंगमें विराजित मुण्ड भी वायुसे पूरित होकर भक्त लोगोंकेलिए अतीव निर्मल मांगलिक शंखके समान परम मंगलदायक हो जाते हैं उस शरणागतवल्लभ शंकरकी मैं शरण लेता हूँ।"

यहाँ रस भयानक; आलम्बन विकरालदंष्ट्र सर्प एवं भूतप्रेतादि; उद्दीपन सर्पोंकी चेष्टाएँ, अघोरमुखका भयोत्पादकत्व एवं निस्तब्धता आदि; अनुभाव रोमांच, स्वेद, कम्प एवं वैवर्ण्य आदि; संचारिभाव शंका, चिन्ता, ग्लानि, त्रास, आवेग, जुगुप्सा एवं दीनता आदि एवं स्थायिभाव भय हैं।

अद्भुतरस

विस्मयकी सम्यक्समृद्धि अथवा सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी तटस्थता अद्‌भुतरस है। जब किसी रचनामें विस्मयरूप स्थायिभाव इस प्रकार पूर्णतया प्रस्फुट हो कि सम्पूर्ण इन्द्रियाँ उससे अभिभावित होकर निश्चेष्ट बन जायँ तब वहाँ अद्‌भुत रसकी निष्पत्ति होती है। विस्मय या अद्‌भुतकी सहज प्रवृत्ति जिज्ञासा है।

कवि जगद्धरभट्टने हरिहरस्तोत्रमें अद्‌भुतरसका समावेश किया है। कविने प्रत्येक पद्यमें शिव और विष्णु दोनोंके स्वरूपका कौतूहलमय वर्णन किया है। कविने बताया है कि विद्युत्का स्थिर होना असम्भव है, और उसके शब्दका स्थिर हो जाना तो साक्षात् आश्चर्य ही है। इस प्रकार कविने जिज्ञासा या कौतूहलवृत्तिका संयोजनकर अद्‌भुतरसका समवाय प्रस्तुत किया है :

केशाश्रिता नयनवह्निशिखाभ्रसिन्धु
झांकारगर्भवपुषो जलदा वहन्ति ।
यत्राद्‌भुतं स्थिरतडिद्रसितप्रसंगं
तन्मंगलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः ॥[2]

---

१. स्तुति० ८।१०-११
२. वही, ४।४

"जिसके श्रीहरिरूप अर्धभागसम्बन्धी केशोंमें स्थित हुए मेघ, श्रीहररूप अर्धभागसम्बन्धी तृतीय नेत्रकी अग्नि और मस्तकपर स्थित हुई देवगङ्गाके गम्भीर झंकारसे गर्भित होकर विद्युत्‌के आश्चर्यजनक शब्दको धारण करते हैं, वह सदाशिवका हरिहर-स्वरूप आपका मंगल करे।"

उक्त पद्यमें स्थायिभाव विस्मय विभावानुभावादिसे पुष्ट हो अद्‌भुत रसकी निष्पत्ति कर रहा है।

भगवान् शंकरमें आश्चर्यकारक अनेक तथ्योंका समावेश है। एक ओर उनका रौद्ररूप है तो दूसरी ओर सौम्य। वे अनादि और अजन्मा होकर भी सद्योजात हैं। वामांगमें अंगनाके रहनेपर भी कामके नाशक हैं। अखिल ब्रह्माण्डके नायक होनेपर भी खण्डकपाल हैं। इस प्रकार आश्चर्यकारी गुणोंका शंकरमें एक ही साथ समवाय है। अतः शंकरका यह रूप अद्‌भुतरसका सृजन कर रहा है :

अंगे धृतांगनमनंगकृतांगभंगं
विश्वाधिनाथमथ खण्डकपालपाणिम्।
उग्रं शिवं हरमघोरमजं च सद्यो
जातं च विस्मयनिधिं विभुमाश्रयामि॥[1]

"जो प्रभु अपने वामांगमें अंगनाको धारण करता हुआ भी अनंगका भंग करनेवाला है, अखण्ड ब्रह्माण्ड-नायक होकर भी हाथमें खण्डकपाल धारण करता है, उग्र होते हुए भी शिव है, हर होता हुआ भी अघोर है और अज होता हुआ भी सद्योजात है, इस परम आश्चर्यनिधि परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ।"

हास्यरस

पूरा ही हसितवर्णनस्तोत्र हास्यसे युक्त है। इस स्तोत्रके प्रत्येक पद्यमें कविने भगवान् शंकरके अट्टहासका चित्रण किया है। भगवान् शंकरकी हँसी सामान्य नहीं है। उनके हास्यका भी कोई विशेष कारण होता है। कवि जगद्धरभट्ट शंकरकी हास्य-क्रीडाकी उत्पत्तिका हेतु बतलाते हुए कहते हैं :

---

१. स्तुति० ८।४१

यद्वाङ्मयं सकलवाङ्मनसातिवृत्त-
सीमानमीश महिमानममानमेयम् ।
अस्मादृशं कृशदृशं भृशमामृशन्त-
मन्तर्विमृष्य भवतो भगवन्नुदेति ॥[1]

"हे भगवन्! मन और वाणीकी अत्यन्त अगोचर एवं प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अनुमानित न होनेवाली आपकी अतर्क्य महिमाके विषयमें अनेकों कुतर्कनाएं करनेवाले हम सरीखे अल्पदृष्टिवाले मूर्खोंको देखकर आपके मनमें जो हास्य-क्रीड़ा प्रकट होती है, उसकी हम स्तुति करते हैं।"

हास्यकी उत्पत्ति शृंगारसे होती है, इससे चित्तका विकास होता है, जो प्रीतिका एक विशेष रूप है। हास्यके विभावोंके मूलमें एक कारण अनौचित्य है। इसमें सन्देह नहीं कि इसका शृंगारसे विशेष सम्बन्ध है क्योंकि यह प्रियचित्तानुरंजक होता है। कविने एक पौराणिक उपाख्यान निबद्ध करते हुए बताया है कि एकबार शंकर मुनियोंके आश्रममें पहुँचे। मुनि-पत्नियाँ उनके अद्भुत रूप-लावण्यको देखकर मुग्ध हो गयीं और वे उनके पीछे दौड़ने लगीं। उनके उस कृत्यको देखकर मुनिगण लगुड लेकर उनके पीछे दौड़े। मुनियोंके इस कृत्यसे केवल शंकरको ही हँसी नहीं आयी बल्कि पाठक भी उनके इस मूर्खतापूर्ण व्यवहारपर हँसे विना नहीं रह सकता है :

दृष्ट्वा वधूजनमनुत्तमरूपसंप-
त्संदर्शनोद्भवमनोभवभग्नवृत्तम् ।
आषाढपाणिषु रुषा मुनिषु प्रहर्तु-
मभ्युद्यतेषु तव यद् भृशमुद्बभूव ॥[2]

शान्तरस

स्तोत्रकाव्यमें शान्तरस ही अंगीभूतरस माना जाता है। यद्यपि उसमें भक्ति और करुणरस भी पूर्णतया समाविष्ट रहते हैं, पर चूँकि स्तोत्र-काव्यका लक्ष्य विकार और वासनाओंका शमन करना है अतः शम या निर्वेदके व्याप्त रहनेसे शान्तरस ही आद्यन्त व्याप्त रहता है। भक्त अपने

---

१. स्तुति० २०।२
२. वही, २०।९

आराध्यसे दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंकी निवृत्तिहेतु प्रार्थना करता है। फलस्वरूप विकार और वासनाओंकी निवृत्ति प्रभु-प्रार्थनाद्वारा ही सम्भव होती है। निम्नोद्धृत श्लोक शान्तरसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं :

किमंग मगल्यमनंगभंगदप्रसादनादन्यदधन्य मन्यसे।
यदर्थमर्थक्षतिकृत्सदुष्करप्रयाससाध्येषु मखेषु खिद्यसे॥
इमा हिमानीविमला हविर्भुजां प्रभुप्रसादप्रभवा विभूतयः।
करोषि यत्तर्पणमात्रकाम्यया दयास्पदप्राण्युपघातपातकम्॥[1]

"अरे अभाग्यग्रस्त मानव! तू कामारि भगवान् शकरकी प्रसन्नताके सिवा दूसरी कल्याणप्रद वस्तु और क्या समझता है, जो धनक्षय करनेवाले अति कठिन प्रयत्नोंसे साध्य यज्ञोंमें उलझकर खिन्न हो रहा है? अरे अभागे! तू जिन देवताओंको तृप्त करने मात्रकी अभिलाषासे दयापात्र जीवोंकी हिंसाकर पाप बटोर रहा है, उन देवताओंको हिमालयके समान स्वच्छ अणिमादि अष्टसिद्धियाँ उसी परमेश्वरके अनुग्रहसे प्राप्त हुई हैं।"

कविने उपर्युक्त पद्योंमें रस-सामग्रीकी योजना निम्न प्रकारकी है: आलम्बन है संसार की असारताका बोध या शंकरकी प्रसन्नता; उद्दीपन है यज्ञफलका वैफल्य, करुणासागर प्रभुका माहात्म्य एवं सज्जनोंका सत्संग आदि; अनुभाव है संसारको त्रितापसे संतप्त देखकर कातर होना, प्रपंचों से घबड़ाकर संसार त्यागकेलिए तत्पर होना और अविद्या एवं अस्मिता आदि क्लेशोंसे मुक्त होनेकेलिए सचेष्ट रहना; संचारिभाव है धृति, मति, हर्ष, उद्वेग, ग्लानि, दैन्य, असूया एवं निर्वेद आदि एवं स्थायिभाव है शम।

कविका यह शान्तरस भक्तिरसमूलक होनेसे सर्वजनसुलभ है। यतः ईश्वर-अराधना सभी के लिए सुलभ होती है और इस आराधनासे ही तत्त्वज्ञानकी उपलब्धि होती है, जिससे स्थायिभाव निर्वेद शान्तरसका परिपाक सम्पन्न करता है।

संसारकी असारताका आलम्बन एवं प्रवृत्तिमार्गके अनुयायियोंके प्रवृत्तिजन्य दोषोंका दिग्दर्शक होनेसे शान्तरसका अस्तित्व प्रायः समस्त स्तोत्रोंमें पाया जाता है। विनयसम्बन्धी और प्रार्थनासम्बन्धी पद्योंमें शान्तरस विशेषरूप से पाया जाता है :

---

१. स्तुति० ७।३०-३१

संसारदारुणदवानलदह्यमान-
वाक्चित्तकायकुशलीकरणौषधानि ।
श्रीभुक्तिमुक्तिवशकर्मणि कार्मणानि
शम्भोर्जयन्ति नुतिचिन्तनपूजनानि ॥
दोषाकरस्य शिरसि स्थितिमुत्तमांग-
च्छेदं विधेरविरहं नरवाहनस्य ।
भस्मीकृतिं त्रिपुरपाशधरस्मराणां
वश्यं दिशां च दशकं दशकन्धरस्य ॥[1]

"संसाररूप दारुण दावानलसे जलती हुई वाणी, चित्त और शरीरको शान्त करनेमें महौषधिस्वरूप एवं श्री, भुक्ति और मुक्ति इन तीनोंको मन्त्रमुग्धकी तरह वशमें करनेमें वशीकरण-चूर्णरूप भगवान् श्रीशंकरकी स्तुति, चिन्तन और पूजन तीनों धन्य हैं। क्रीड़ा करते हुए से प्रभुने जिस स्वतन्त्रतासे दोषाकर चन्द्रमाको अपने शिरमें धारण किया, पितामह ब्रह्मदेवके पंचम शिरका छेदन कर डाला, नरवाहन कुबेरके साथ दृढ़ मित्रता की, त्रैलोक्य-विजयी त्रिपुरासुर, यमराज और कामदेवको भस्म किया और देशों एवं दिशाओंको अपने भक्त-शिरोमणि रावणके अधीन कर दिया वह परमेश्वरकी निरंकुश और निरनुरोध स्वतंत्रता सर्वोत्कृष्ट है।"

भक्तिरस

संस्कृतके अलंकारशास्त्रियोंने भक्तिरसको पृथक् रस नहीं कहा है। उन्होंने इसका अन्तर्भाव शान्तरसमें ही किया है, क्योंकि देवता आदि विषयक रति भाव है, रस नहीं। रति ही भक्ति है, अतः प्राचीन परम्परामें इसे पृथक् रसकी श्रेणीमें परिगणित नहीं किया गया है। पर यह सत्य है कि भक्तिमें जितनी व्यापकता और उत्कटता है, उतनी शायद ही किसी अन्य रसमें हो। शान्तरसमें शान्तिके उपासक मोक्ष चाहते हैं, पर भक्तिमें भक्तकी आकांक्षा मोक्षकी भी नहीं होती। अतएव समान्यतया ईश्वर विषयक प्रेम विभाव एवं अनुभावादिसे परिपुष्ट होता है। अतः इसे भी रसकोटिमें स्थान प्राप्त है। स्तुतिकुसुमांजलिका भक्तिरस अनुपम है, समस्त पद्योंमें भक्तिका सुन्दर परिपाक हुआ हैं। कविने भगवान्की भक्तिका प्रभावपूर्ण चित्रण किया है :

---

१. स्तुति० ८।३-४

तं हत्वा सबलं निशाचरपतिं लंकालयं कालय-
न्नार्त्तिं नाकसदामुपेत्य विभवं वैभीषणं भीषणम् ।
वैदेहीमनघां लभेत स कथं रामो हि तां मोहितां
त्वद्भक्तिं यदि न व्यधास्यत नुतो भ्राजिष्णुना जिष्णुना ॥[1]

"हे नाथ ! तेजस्वी इन्द्रसे पूजित वह रामचन्द्रजी यदि आपकी भक्ति न करते तो फिर समस्त देवताओंके दुःखको दूर करते हुए उस लंकापति रावणको सेना-सहित मारकर विभीषणसे महान् सत्कार पाकर अपनी निर्दोष प्रियतमा श्रीवैदेहीको कैसे प्राप्त करते ?"

भक्तिका एक और प्रभावशाली वर्णन करते हुए कविने कहा है :

नाथ प्राथमिकं विवेकरहितं तिर्यग्वदस्तं वय-
स्तारुण्यं विहतं विराधितवधूविस्रम्भणारम्भणैः ।
स्वामिन्संप्रति जर्जरस्य जरसा यावन्न धावन्नयं
मृत्युः कर्णमुपैति तावदबशं पादाश्रितं पाहि माम् ॥[2]

"हे नाथ ! मैंने बाल्यावस्था तो पशुके समान कार्याकार्यके विवेकके विनाही बरबाद कर डाली और युवावस्था प्रणय-कुपिता वधूके समाश्वासनमें नष्ट कर दी । प्रभो ! अब इस समय वृद्धावस्थासे अत्यन्त जर्जर हुए मेरे कानोंके समीप जब तक अति वेगसे दौड़ती वह मृत्यु न आ जाय, उसके पहले ही आप अपने चरणाश्रित मुझ अनाथकी रक्षा कीजिये, मुझे बचा लीजिये ।"

उपर्युक्त संक्षिप्त वर्णनसे यह स्पष्ट है कि कवि जगद्धरभट्टने स्तोत्र-काव्यकी रचना करते हुए भी केवल भक्ति, शान्त अथवा करुण रसका ही सम्यक् निरूपण नहीं किया अपितु शृंगार, हास्य एवं वीर आदि प्रायः समस्त रसोंका अपने ग्रन्थमें सुन्दर सन्निवेश किया है । उनकी यह रसयोजना किसीभी महाकविद्वारा महाकाव्यमें की गयी रसयोजनासे किमपि कम महत्त्वपूर्ण एवं कम उत्कृष्ट नहीं है ।

---

१. स्तुति० २८।१८
२. वही, ११।१३३

स्तुतिकुसुमांजलिमें समाहित गुण

गुणका अर्थ है विशेषता, शोभाकारी या आकर्षक धर्म। गुण रसके उत्कर्षक होते हैं। इसीकारण वामनने कहा है, 'काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्माः गुणाः'[१] अर्थात् गुण काव्य-सौंदर्यके मूल तत्त्व हैं। ये शब्द और अर्थके धर्म हैं और काव्य केलिए इनका रहना अनिवार्य है। वर्ण-संघटन, शब्द-योजना, शब्दचमत्कार, शब्दप्रभाव एवं अर्थदीप्तिके विना कोई भी काव्य ग्राह्य नहीं हो सकता। गुणोंकी संख्याके सम्बन्धमें आचार्योंमें मतभेद है। पर प्रायः सभी आचार्योंके मतानुसार माधुर्य, ओज और प्रसाद शब्द गुण तथा समता, कान्ति और उदारता अर्थगुण हैं। समाधिको वाक्यगुण भी कहा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि गुण रसाश्रित होते हैं। अतः इनसे रसका सम्यक् परिपाक होता है।

चित्तकी द्रुति, दीप्ति और स्फीतिके आधार पर माधुर्य, ओज और प्रसाद इन तीन गुणोंको स्वीकार किया गया है।

माधुर्यगुण

माधुर्य का अर्थ है मधुर होनेकी विशेषता, मिठास या रोचकता। श्रुतिमधुरता, रसमयता, सरसता एवं शिष्टता आदिका ग्रहण माधुर्यद्वारा किया जाता है। वास्तवमें सहृदयोंको द्रवित करनेवाला गुण माधुर्य होता है। माधुर्यका अर्थ है श्रुतिसुखदता, समासरहितता, उक्तिवैचित्र्य, आर्द्रता, चित्तको द्रवित करने की विशेषता, भावमयता एवं आह्लादता। कवि जगद्धरभट्टने माधुर्यगुणकी योजना पदलालित्यद्वारा की है जिससे चित्त द्रवित होता है और अपूर्व रोचकताका अनुभव होता है। भक्तिकाव्य होनेके कारण समस्त स्तुतिकुसुमांजलिमें माधुर्य गुणका समवाय पाया जाता है :

> एकस्त्वमेव भविनामनिमित्तबन्धु-
> र्नैसर्गिकी तव कृपा सवितुः प्रभेव।
> वामः पुनर्मम विधिः परिदेवितानि
> जातान्यरण्यरुदितेन समानि यस्य ॥[२]

---

१. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ३।१।१
२. स्तुति० ११।७१

उक्त पद्यमें स्पर्शवर्णोंका ही प्राधान्य है तथा पद्यके पढ़ते ही चित्त द्रवीभूत हो जाता है। अतः यहाँ माधुर्यगुण है।

त्वं चेत्प्रसादसुमुखः प्रणयोक्तिभिः किं
त्वं चेदनादरपरः प्रणयोक्तिभिः किम्।
भाग्योदये सति वृथैव गुणेषु यत्न-
स्तस्मिन्नसत्यपि वृथैव गुणेषु यत्नः ॥[1]

इस पद्यमें मृदुवर्णों की योजना है, साथ ही समासरहितता भी है। श्रुति-सुखदताकी भी कमी नहीं है। अतः यहाँ भी माधुर्यगुण है।

दुर्वार-दुर्गति-निकार-कदर्थ्यमान-
मालोक्य लोकमखिलं विपुलाशयेन।
सद्यःकृतं कनकवर्षणमिन्दुकान्त-
वर्ष्मत्विषा परमकारुणिकेन केन ॥[2]

उक्त पद्यमें स्पर्शवर्णोंकी तो योजना है ही साथ ही जिन अन्तस्थ वर्णोंको यहाँ निबद्ध किया गया है, वे भी यहाँ स्पर्शवर्णों के साथ अपना अपूर्व सम्बन्ध व्यक्त करके माधुर्यगुणका सृजन करते हैं।

कविने शंकरके अद्भुत अर्द्धनारीश्वर वेशका चित्रण करते हुए माधुर्य-गुणकी अपूर्व योजना की है:

दन्तानां सितिमनि कंजलप्रयुक्ते
मालिन्येऽप्यलिकविलोचनस्य यत्र।
रक्तत्वे करचरणाधरस्य चान्यो
नान्योन्यं समजनि नूतनो विशेषः ॥[3]

माधुर्यगुण स्तुतिकुसुमांजलिमें आद्यन्त व्याप्त है। लघुवर्णोंकी योजना में भी चित्तको द्रवित एवं मुग्ध बना देने वाले माधुर्यगुणकी उपस्थिति होती है।

विहितं मयि चारु चिरं रुचिरं न गते विवेकलयम्।
कलयन्नमलविभासितभासित रुचिमेहि मे विपाकमलम् ॥[4]

---

१. स्तुति० ११।१०९
२. वही, २०।३०
३. वही, २१।१३
४. वही, २३।७

मरालमाला सरसीव निर्मले कुचस्थले हारलतेव सुभ्रुवाम् ।
इयं भवत्वाभरणं महेश्वरस्तवावली वक्त्रसरोरुहे सताम् ॥ [1]

यहाँ लघुवर्णोंकी योजनासे माधुर्यगुणकी सृष्टि हो रही है। शान्त और करुणरसका निर्वाह माधुर्यगुणद्वारा ही सम्भव होता है। अतः जगद्धरभट्टकी इस स्तुतिकुसुमांजलिमें माधुर्यका समावेश प्रायः सर्वत्र है।

ओजगुण

ओजका शाब्दिक अर्थ है—तेज, प्रताप अथवा दीप्ति। काव्यके अन्तर्गत जो गुण सुननेवालेके मन में उत्साह, वीरता एवं आवेश आदिको जागृत करनेकी क्षमता रखता हो वह ओज कहलाता है। ओजगुणमें अर्थगाम्भीर्यका रहना आवश्यक है। इस गुणमें अक्षरविन्यासका संश्लिष्टत्व और संयुक्ताक्षरोंका संयोग आवश्यक माना गया है। यह चित्तका विस्तार भी करता है। वीर, बीभत्स और रौद्ररसमें इस गुणका सर्वाधिक समावेश होता है।

स्तुतिकुसुमांजलिमें इस गुणका समवाय अनेक पद्योंमेंपाया जाता है। यथाः

खुरक्षतवसुन्धरोद्धुरतुरंगहेषो-
न्मिषत्प्रबोधधुतकन्धरद्विरदकण्ठघण्टारवैः ।
स्मरालसविलासिनीस्तनभरोपरुद्धोरसः-
स्त्यजन्ति शयनं शनैरुषसि शंम्भुशंसाजुषः ॥[2]

उक्त पद्यमें मूर्धन्य वर्णोंके साथ संयुक्त वर्ण भी ओजगुणका सृजन करते हैं। इसके द्वारा कविने बड़ी ही कुशलताके साथ चित्तको दीप्त किया है।

तृतीय स्तोत्रके निम्नोद्धृत पद्योंमें शंकरके ताण्डवकालीन भैरव-रूपके वर्णनप्रसंगमें कविने उक्त गुणकी सुन्दर योजना की है :

भिन्द्धि क्ष्माधरसन्धिबन्धमुदधेरम्भोभरं जृम्भय
क्षुन्द्धि क्ष्मापटलं दलत्फणिफणापीठीलुठत्सौष्ठवम् ।
पिण्ड्ढि प्रौढचपेटपाटितरटत्ताराकुटुम्बं नभः
प्रारब्धोद्धतसान्ध्यताण्डव इति श्रीभैरवः पातु वः ॥

---

१. स्तुति० ३८।१५
२. वही, १०।९१

भूत्यै वोऽस्तु विडम्बितस्मितरुतं मूर्घ्नोद्धृतस्वर्धुनी-
निध्वानध्वनदाननैरभिनये भूषाकपालैः प्रभोः ।
त्वंगत्तुम्बुरुनारदाहतनदद्गम्भीरभेरीरव-
व्यावल्गद्गुहवाहबर्हिविहितक्रीडानुसारं वपुः ॥[1]

"जो शिव अति उद्धत ताण्डवनृत्यमें अपनी लम्बी-लम्बी भुजाओंको फैलाकर पर्वतोंके सन्धिबन्धनका भेदन कर देता है और समुद्रोंके जलको उछाल देता है, चरणोंके भारसे दलित शेषनागके फणरूप पीठसे लुढकते हुए भूमण्डलको क्षुण्ण कर देता है एवं बड़े-बड़े थपेड़ोंसे उखाड़े हुए अतएव शब्दायमान तारामण्डलसे युक्त आकाशको पीस डालता है, इस प्रकार सायं-कालमें अति अद्भुत ताण्डव नृत्यको प्रारम्भ करनेवाला यह श्रीभैरवरूपधारी भगवान् शिव सम्पूर्ण विघ्नोंसे आपकी रक्षा करे ।"

"ताण्डवनृत्यके समय मस्तकपर धारण की हुई देवगंगाके कलकल रवसे शब्दायमान मुखवाले, ब्रह्मकपाल जिसके अट्टहासका अनुकरण करते हैं एवं नाट्यरंगमें परिभ्रमण करने वाले तुम्बुरु और नारदमुनिद्वारा बजायी हुई भेरीकी गम्भीर ध्वनि सुनकर अतिहर्षसे नाचता हुआ मयूर जिसकी नाट्यक्रीडाका अनुकरण करता है वह भगवान् शिवका दिव्य शरीर आपको सकल सम्पत्ति प्रदान करे ।"

बाइसवें स्तोत्रके अन्तिम पद्यमें भी कविने ओजगुणकी बहुत सुन्दर योजना की है ।[2] यहाँ कर्कश एवं क्लिष्ट वर्णसंघटनाके प्रयोगसे उक्त गुणकी सुन्दर व्यंजना हुई है ।

तैंतीसवें स्तोत्रके प्रायः समस्त पद्योंमें ओजगुण समाहित है । कविने समस्यन्त पदोंमें संयुक्ताक्षरों, मूर्धन्यध्वनियों एवं गाढबन्धत्वकी योजना सम्यक् रूपसे की है । अतः ओजगुण काव्य-रसिकोंको उग्ररसोंके आस्वादनमें परम सहायक है ।

---

१. स्तुति० ३।५४-५५

२. कल्लोलिनीकुटिलकंर्वणोकुटुम्ब-
कङ्कालकल्पितकरालकिरीटकोटिः ।
कात्यायनीकरकरम्बितकीर्यमाण-
कर्पूरकुंकुमकणः करुणां करोतु ॥ वही, २२।१२

प्रसादगुण

प्रसादका शाब्दिक अर्थ है प्रसन्नता, खिल जाना या विकसित होना। जहाँ पद्य सुनते ही अर्थ हृदयंगम हो जाय वहाँ इस गुणका अस्तित्व माना जाता है। यही एक ऐसा गुण है जो समस्त रसोंमें व्यवहृत किया जा सकता है। जिसप्रकार सूखे ईंधनमें अग्नि और स्वच्छ वस्त्रमें जल तुरत व्याप्त हो जाता है, उसी प्रकार चित्तको जो रचना शीघ्र व्याप्त करा दे, वह प्रसाद गुण है। इस गुणमें सरल, सहज, भावव्यंजक और रोचक शब्दावलिका प्रयोग किया जाता है।

स्तुतिकुसुमांजलिमें प्रसादगुण अनेक पद्योंमें पाया जाता है। निम्नोद्धृत श्लोकोंमें प्रसादगुणकी सुन्दर योजना उपलब्ध होती है :

मधुरागारुणनयना नयनाशविधौ पटीयसी प्रमदा।
प्रमदार्पणार्थमुदिते मुदिते त्वयि सा तृणं भजताम्॥
भजतां सरसाममलां मम लांछितशेखरेन्दुना करुणाम्।
करुणां गिरं नवतया बत याऽर्पयति तव श्रयताम्॥[1]

"हे प्रभो! कैवल्य रूप परम आनन्द देनेकेलिए उद्यत हुए आपके सन्तुष्ट होने पर सुमधुर राग और अरुण नेत्रोंवाली एवं नीतिमर्यादाका नाश करनेमें अति चतुर वह कामिनी आपके भक्तजनोंकेलिए शुष्क तृणके समान नगण्य होती है। अयि चन्द्रमौले! आप मेरे उद्धारकेलिए अपनी उस सरस और निर्मल करुणाका समाश्रयण कीजिए जो कि आपके सेवकोंकी करुण वाणीको भी नवीन बना देती है।"

किल यस्य कल्पितमहोदयया हृदयं समाश्रितमहो दयया।
विभवं यतश्च परमाप दिवः प्रभुरेष पातु परमापदि वः॥[2]

"महान् उदय अर्थात् भोग और मोक्षलक्ष्मीको प्रदान करनेवाली उदार करुणा जिसके विशाल हृदयमें बैठी हुई है और जिस उदारशिरोमणिने इन्द्रको परम वैभव अर्थात् स्वर्गलोकका आधिपत्य प्रदान किया, वह परमेवर आपको इस घोर अपत्तिसे बचावें।"

वन्दामहे च विविधं विविधामहे च
लज्जामहे च कलुषाणि भजामहे च।

१. स्तुति० २३।३-४
२. वही, २५।१

ईहामहे च कुवचांसि सहामहे च
दह्यामहे च दुरितैर्जठरस्य हेतोः ॥[1]

"हमलोग केवल इस क्षुद्र उदरकी पूर्तिकेलिए ही मदान्ध राजाओंकी स्तुति किया करते हैं, वादियोंके साथ व्यर्थ ही नाना प्रकारका वाद-विवाद किया करते हैं। कहीं लज्जित होते हैं, तथा कहीं अत्यन्त मलिन वस्तु अथवा पापोंका सेवन करते हैं। अनेक तरहकी शुभाशुभ चेष्टाएं करते हैं, खलोंके कुवचनोंको भी सहते हैं और अनेक कुकर्मोंद्वारा उपार्जित पापोंसे अन्दर ही अन्दर जला करते हैं।"

इन श्लोकोंमें ऐसी सरलता है कि इनके श्रवणमात्रसे इनका अर्थ अनायास ही हृदयंगम हो जाता है।

कान्ति, उदारता, समाधि एवं अर्थव्यक्ति आदि अन्य गुणोंका समावेश भी उक्त ओज, प्रसाद एवं माधुर्य इन्हीं तीनों गुणोंमें किया गया है। अतएव यहाँ उनका पृथक् विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है।

स्तुतिकुसुमांजलिका लक्षणा-व्यंजना और ध्वनिकी दृष्टिसे मूल्यांकन

ध्वनिमय काव्य ही सर्वोत्तम काव्य माना जाता है। जिससे व्यंग्यार्थ प्रकट होता है, वही काव्य उत्तम कहलाता है क्योंकि ध्वनिके तारतम्यसे ही काव्यके मूल्यमें वृद्धि होती है। स्तुतिकुसुमांजलिमें अनेक ऐसे पद्य पाये जाते हैं जिनमें व्यंग्यार्थका समावेश पूर्णरूपेण हुआ है।

कविने अविनाशी शिवकी भक्तिका महत्त्व बतलाते हुए कहा है कि स्वर्गलोककी अप्सराओंमें जो सबसे अधिक रूपलावण्ययुक्त और रमणीया हैं, वह आपके वृद्धसेवकको भी अत्यन्त अनुरागसे उपस्थित होकर भजती है:

सुरसुन्दरीषु रमणीयतमा स्ववपुर्गुणेन रमणी यतमा।
तव भक्तमक्षतरसाजर सा भजते समेत्य तरसा जरसा ॥[2]

इस पद्यमें अभिधाद्वारा रूपवती अप्सराका वृद्ध सेवकका भजना अर्थात् उसके साथ विहार करना सिद्ध होता है। पर व्यंजनासे यह अर्थ निकलता है कि जो भगवान् शंकरका सच्चा भक्त है एवं अधिक दिनोंसे उनका स्तवन

१. स्तुति० ९।५१
२. वही, २५।१८

अर्चन करता चला आ रहा है, उसका स्वर्गकी सर्वसुन्दरी देवांगना वरण करती है। अतः लाक्षणिक अर्थ भी वृद्धत्व पदसे सूचित होता है, किन्तु व्यंजनासे अर्थ और अधिक गम्भीर हो जाता है। देवांगनाएँ शंकरके ऐसे भक्तको पसन्द करती हैं जो उनका उच्चकोटिका भक्त है एवं जिसने अपनी ऐहिक इच्छाओंका परित्याग कर सर्वतोभावेन शंकरको आत्मसर्पण कर दिया है। देवांगनाएँ सामान्य भक्तको पसन्द नहीं करतीं। वे शिवभक्तिमें लीन रहनेवाले उनके अत्यन्त प्रिय एवं कृपापात्र भक्तका ही वरण करती हैं। इसप्रकार उक्त पद्यमें लक्षणागत अर्थसे भी अधिक अर्थकी प्रतीति होती है, जो व्यंजनाद्वारा ही अवगत किया जाता है।

कवि जगद्धरभट्टने अलंकारजन्य ध्वनिको निम्नलिखित पद्यमें प्रस्तुत किया है:

इदमसाधितमेव रसायनं निरुपभोगमिदं सुखमक्षयम्।
अमृतमेतदनम्बुधिमन्थनं यदविनश्वरमीश्वरसेवनम्॥[1]

"यह जो अविनश्वर ईश्वर-सेवन है, वह बिना किसीका बनाया हुआ ही रसायन है, यह एक अनुच्छिष्ट और अक्षय सुख है और बिना समुद्र-मन्थनका अमृत है।"

इस पद्यमें शिवाराधनाको अमृत या रसायन कहा गया है। यह अभुक्त और अनुच्छिष्ट है। इस रसायनका जो सेवन करता है वह आत्यन्तिक-दुःखनिवृत्तिरूप अक्षयधामको प्राप्त कर लेता है। कविने यहाँ व्यंजनाद्वारा शिवभक्तिका महत्त्व और उपयोगिता प्रतिपादित की है। शिवभक्ति सामान्य नहीं है। यह ऐसा रसायन है जिसे प्राप्त कर प्रत्येक भक्त अजर-अमर हो जाता है।

कविने अनेक स्थानोंपर व्यंग्यार्थकी योजना कर काव्यचमत्कारको प्रदर्शित किया है:

भवरसं प्रति सम्प्रति तृष्णया त्यजसि मानस मानसमुन्नतिम्।
मदनशासनशासनतः परं कमनपायमुपायमुदीक्षसे॥[2]

"अरे मन! तू इस समय सांसारिक नीरस रसकी तृष्णाके कारण अपनी परमोन्नति त्याग रहा है। अरे भाई! अनंगशासन भगवान् शंकरके दर्शनके

---

१. स्तुति० १०।३३
२. वही, १०।४०

सिवा इस भवसागरसे पार करानेवाला अन्य कौन सा अविनाशी उपाय समझता है ?"

इस पद्यमें अनंगशासन शंकरके दर्शनसे अविनाशी पदकी प्राप्तिकी कामना की गयी है। यहाँ अनंगशासनमें व्यंग्यार्थ निहित है। जो शंकर सांसारिक विषय-वासनाओं और कामक्रोधादि षड्रिपुओंको जीतने वाले हैं उन्हींकी उपासनासे अविनाशी पद मिल सकता है। अनंगशासन वाच्यार्थके अतिरिक्त व्यंग्यार्थ भी अभिव्यक्त करता है। भवरस शब्दमें भी व्यंग्य है। यह संसारके प्रति सरसता और नीरसता दोनोंको द्योतित करता है। व्यंग्य अर्थका एक अन्य उदाहरण निम्नोद्धृत श्लोक है :

> यत्सत्यवत्यपि जगद्विदितानसूया
> वाणी ममेयमिदमेव हि देव चित्रम् ।
> अत्यद्भुतं पुनरिदं यदरुन्धतीयं
> त्वामारिराधयिषुरेवमुदीरितापि ॥[1]

"स्वामिन् ! संसारमें प्रसिद्ध सत्यवती होकर भी यह मेरी वाणी जो अनसूया हो गयी है, पहले तो यही एक आश्चर्य है ! दूसरा महान् आश्चर्य यह है कि पूर्वोक्त प्रकार वर्णित यह वाणी पुनः अरुन्धती होकर भी पुनः आपका ही आराधन करनेकी इच्छा करती है।"

इस वाच्यार्थके अतिरिक्त इसका व्यंजित अर्थ पाराशर मुनिकी पतिव्रता पत्नी सत्यवतीका अत्रिमुनिकी पत्नी अनसूया बन जाना और अनसूयाका वशिष्ठमुनिकी धर्मपत्नी अरुन्धती बन जाना कितना मार्मिक है। कविने यहाँ व्यंजनाद्वारा अपनी वाणीके भगवान् शंकरकी आराधनामें सदैव संलग्न रहनेकी कामना की है। वह अन्य देवों या अन्य जनोंकी स्तुतिमें रत वाणीको व्यभिचारिणी बतलाता है। वस्तुतः व्यंजनाके ऐसे सरस उदाहरण बहुत थोड़े ही उपलब्ध होते हैं।

निम्नांकित श्लोक ध्वनिकाव्यका श्रेष्ठ उदाहरण है:

> गात्रान्तरातिशयशंसि यदेतदुच्चै-
> र्नामोत्तमांगमिति नाथ शिरो बिभर्ति ।
> तद्युज्यते भव भवच्चरणारविन्द-
> पीठप्रणामपरमस्य नमस्यमस्य ॥ [2]

---

१. स्तुति० ११।१५
२. वही, १२।३०

"हे नाथ सदाशिव ! यह मस्तक जो अन्य अंगोंसे अपनी श्रेष्ठता बतलाने वाले उत्तमांग इस ऊँचे नामको धारण करता है, वास्तवमें वह उचित ही है, क्योंकि यह शिर सदा आपके चरणारविन्दोंको प्रणाम करनेमें नत रहता है। अर्थात् प्रभुको नमन करनेसे ही मस्तकका नाम उत्तमांग पड़ा है, न कि अन्य अंगोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ होनेसे।"

उक्त पद्यसे यह ध्वनित होता है कि भगवान् सदाशिवको प्रणाम करनेसे मस्तकके समान कोई भी व्यक्ति उत्तम बन सकता है। प्रणाम करनेसे मस्तकमें उत्तमांगत्वका आरोप किया गया है। जो भक्त नित्य भगवान्‌की भक्ति करता है, उन्हे नमस्कार करता है, एवं उनकी सेवा-आराधनामें तत्पर रहता है वह भक्त उत्तम बन जाता है।

श्लेषमूलकध्वनिका निम्नलिखित उदाहरण भी द्रष्टव्य है :

दिष्ट्या विरुद्धजनता दमयन्त्यपीयं
दृष्टिस्तवेश्वर बिभर्त्यनलाश्रितत्वम्।
दिष्ट्या वनैकरतिरप्यवनैकसक्ति-
रेकस्त्वमद्भुतनिधे भगवन्नमस्ते ॥ [1]

"अहा ! हे ईश्वर ! विरोधियोंका दमन करती हुई भी यह आपकी दृष्टि अनलको धारण करती है और एकमात्र एकान्त वनमें प्रेम रखनेवाले भी अर्थात् अत्यन्त विरक्त होकर भी आप अवनैकसक्ति (समस्त लोकोंके पालन करनेमें बड़ी आसक्ति) रखते हैं। इसलिए हे आश्चर्य-निधान परमेश्वर ! आपके लिए नमस्कार है।"

इस पद्यमें व्यंजनाद्वारा नल और दमयन्तीका आख्यान भी लक्षित है। कवि ने बताया है कि हे प्रभो ! आपकी दृष्टि दमयन्ती होती हुई भी नलका आश्रय लेती है। यहाँ व्यंजनासे अर्थ अधिक गम्भीर और व्यापक हो गया है।

इस प्रकार कविने स्तुतिकुसुमांजलिमें उत्तम काव्यका समावेश किया है।

कविने प्रतीयमान अर्थके अतिरिक्त लाक्षणिक अर्थकी भी योजना की है। लक्षणाके उदाहरण ग्यारहवें और बीसवें स्तोत्रके अनेक पद्योंमें आये हैं। अभिधाशक्तिसे जितना अर्थ ज्ञात होता है, उससे कहीं अधिक लक्षणाशक्तिसे। यहाँ हम कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर स्तुतिकुसुमांजलिमें सन्निविष्ट कतिपय लाक्षणिक प्रयोगोंके काव्य-सौन्दर्यके विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे।

१. स्तुति० १९।१८

विपरीता जहल्लक्षणाद्वारा कविने व्यक्तिनिन्दाको स्तुतिपर्यवसायिनी बना दिया है :

तज्ज्ञो बतास्म्यभिलषन् सुखमक्षयं
यद्दु:खैकधाम वपुरस्थिरमर्थयामि ।
यद्वा भवाब्धितरणाय पुराणमुग्र-
शीलं पुमांसमुडुपार्धधरं श्रयामि ॥[1]

(प्रतीयमान) "ओह ! मैं बड़ा बुद्धिमान् हूँ, अर्थात् मैं महामूर्ख हूँ जो कि अखण्ड-सुखको चाहता हुआ केवल दु:खोंसे भरे क्षणभंगुर शरीरको माँगता हूँ। अथवा भवसागरको तरनेकेलिए अत्यन्त उग्र-स्वभाव उडुपार्धधर पुराणपुरुषकी शरण लेता हूँ।"

(वास्तविक) "अहा ! मैं बड़ा ही बुद्धिमान् हूँ, जो उस अखण्ड सुखकी अभिलाषापूर्तिकेलिए ही इस बहुदु:खमय अस्थिर मनुष्य-देहकी मांग करता हूँ अथवा इस अपार भवसागरको पार करनेकेलिए उग्रशील उडुपार्धधर भगवान् पुराण-पुरुषोत्तमका आश्रय ले रहा हूँ।"

'तज्ज्ञ'में व्यंग्य भी है। कविने अपनेको 'तज्ज्ञ' द्वारा महामूर्ख बतलाया है। जो अखण्ड सुख प्राप्त करना चाहता है, उसे शंकरकी आराधनाके हेतु मनुष्य-शरीर प्राप्त करनेकी आकांक्षा करनी चाहिये। यहाँ पूरे पद्यका अर्थ लक्षणाद्वारा भी घटित होता है।

इसका अन्य उदाहरण है :

त्रस्त: समस्तजनतापहृतिप्रगल्भा-
द्दीप्तानलोल्बणदृश: शिव जीवितेशात् ।
प्राज्ञ: समस्तजनतापहृतिप्रगल्भं
त्वां जीवितेशमनलोग्रदृशं श्रयामि ॥[2]

(प्रतीयमान) "हे शिव, मैं महामूर्ख हूँ जो समस्त जनताका संहार करनेमें प्रवीण और क्रोधवश प्रदीप्त अग्निके समान उल्बण दृष्टिवाले यमराजसे भयभीत होता हुआ समस्त जनताका अप-हरण (संहार) करनेमें प्रवीण और अग्निसे प्रज्वलित नेत्रवाले आप जीवितेश (प्राणान्तकारी) की शरण ले रहा हूँ।"

---

१. स्तुति० ११।११५
२. वही, ११।१२०

(वास्तविक)—'हे मुक्तिप्रदायक शिव ! मैं बड़ा ही बुद्धिमान् हूँ, जो समस्त जनताके संहारमें चतुर और क्रोधवश जलती हुई अग्निके समान नेत्रवाले जीवितेश (काल)से त्रस्त होता हुआ समस्त जनोंके संतापोंको दूर करनेमें चतुर और अग्निसे प्रज्वलित नेत्रवाले आप जीवितेश (जीवनके आधार) प्राणनाथकी शरण ले रहा हूँ।'

> पद्माश्रितः शतधृतिश्चतुराननोऽपि
> यस्मात्पराभवमवापदवाच्यमेव ।
> त्यक्तः श्रिया गतधृतिर्मृदुमन्दवक्त्रः
> प्राज्ञस्तमीश्वरमनुग्रहमर्थयेऽहम् ॥[1]

(प्रतीयमान)—'ओह ! पद्माश्रित (लक्ष्मीका आश्रित), शतधृति (महा-धैर्यशाली) और चतुरानन (चतुर मुखवाला) ब्रह्मा भी जिस ईश्वरसे अवाच्य पराभव ही (अकथनीय तिरस्कार अर्थात् शिरश्छेदनरूप अपमान) पा चुका है, मैं बहुत बड़ा मूर्ख (उस ब्रह्मासे विपरीत) पद्मासे परित्यक्त (दरिद्र), गतधृति (धैर्यहीन) और अतीव मन्दवक्त्र (अचतुरमुख) होकर भी उसी ईश्वरसे अनुग्रहकी प्रार्थना कर रहा हूँ। क्या मेरी मूर्खताका भी कुछ ठिकाना है ?

(वास्तविक)—'अहा ! पद्माश्रित (कमलासनपर विराजमान), शतधृति और चतुरानन (चारमुखोंवाला) ब्रह्मा भी जिस प्रभुसे महान् पराभवको प्राप्त हुआ अर्थात् उनका पार न पा सका, मैं श्रीहीन, धैर्यविहीन और अतीव मन्दमुख होकर भी तो उस परमेश्वरसे अनुग्रह चाहता हूँ, सो मैं अतीव चतुर हूँ।'

> अहो तत्त्वज्ञोऽहं करतलविलीनैकफणिनः
> समुत्त्रस्यन्कालात्क्रमकवलितैकैकभाविनः ।
> महाकालं सर्वावयवसुलभानल्पभुजगं
> सकृद्विश्वग्रासप्रवणमतिमभ्येमि शरणम् ॥[2]

(प्रतीयमान)—"अहो ! मैं बड़ा ही तत्वज्ञ अर्थात् महान् मूर्ख हूँ, जो हाथमें केवल एक सर्प (नागपाश) को छिपाये रखनेवाले और क्रमशः एक-एक प्राणीको निगलनेवाले कालसे भयभीत होता हुआ समस्त अवयवों (हाथ, पाँव,

---

१. स्तुति० ११।१२२
२. वही, ११।१२५

कण्ठ आदि प्रत्येक अंग)में अनेक सर्पधारण करनेवाले और एवही बार समस्त विश्वको निगल जानेवाले महाकालकी शरणमें जा रहा हूँ ।''

(वास्तविक)—'अहा ! मैं हाथमें नागपाश धारण किये और क्रमशः प्रत्येक प्राणीको निगलनेवाले काल (यमराज)से अतीव भयभीत होता हुआ जो प्रत्येक अंगोंमें भुजंग धारण करनेवाले और प्रलयकालमें समस्त ब्रह्माण्डका ग्रास करनेवाले महाकाल (कालके भी काल) भगवान् शंकरकी शरण ले रहा हूँ, सो निश्चय ही तत्वज्ञ अर्थात् परमार्थको जाननेवाला हूँ ।'

दुर्वार-दुर्गति-निकार-कदर्थ्यमान-
मालोक्य लोकमखिलं विपुलाशयेन ।
सद्यःकृतं कनकवर्षण मिन्दुकान्त-
वर्ष्मत्विषा परमकारुणिकेन केन ।।[१]

'हे गौरि ! समस्त लोगोंको अनिवार्य दुर्गतियोंसे पीड़ित होते देख, चन्द्रमाके समान मनोहर शरीरकी कान्तिवाले किस परम कृपालु एवं उदार-चित्तवाले वीरने तत्काल (उन दीनजनोंको देखते ही) सुवर्णकी अविच्छिन्नो वृष्टिकी है जिस धन्यात्माको तुम इस तीव्र तपसे प्रसन्न कर रही हो ? अर्थात् समस्त ऐश्वर्य सम्पत्तिकी महाधिष्ठात्री देवी साक्षात् महालक्ष्मी-स्वरूपा होकर भी आप जिसकी प्राप्तिकेलिए इस प्रकारका दिव्यातिदिव्य तप कर रही हैं वह लोकोत्तर महादानी अतिशय दयालु कौन है ?'

अर्थान्तर—'हे सुमुखि ! राजा मरुतके नगर-निवासी समस्त लोगोंको दुःसह विपत्ति (अतिशय दरिद्रता)से पीड़ित होते देखकर, मनोहर चन्द्रकलासे विभूषित शरीरवाले, अतिशय कृपालु, मुझ परम-उदारके सिवाय और किसने मरुतके नगरमें सात अहोरात्रिपर्यन्त सुवर्णकी अविच्छिन्न वृष्टिकी है, अर्थात् मैंने ही की है । इसलिए मालूम पड़ता है कि तू इस तपस्यासे मुझ (सदाशिव)को ही प्रसन्न करना चाहती है ?'

केनेश्वररेण महता वहतात्रिनेत्र-
संजातकान्ति वपुरद्भुतभूतिभूषम् ।
उद्यामकामशितमागणदौर्मनस्य-
वैरस्यमिद्धमहसा सहसा निरस्तम् ।।[२]

१. स्तुति०२०।३०
२. वही ,२०।३२

'चन्द्रमाके समान कान्तिवाले तथा अद्भुत सम्पत्तिसे सुशोभित अतिदिव्य शरीरको धारण करनेवाले किस महातेजस्वी एवं सर्वशक्ति-सम्पन्न पुरुषने उदभट कामदेवके बाणोंके विकारोंका परित्याग किया है, जिसको प्रसन्न करनेकेलिए तुम ऐसी तीव्र तपस्या कर रही हो ?'

(अर्थान्तर)—'त्रिनेत्रोंसे सुशोभित और आश्चर्यकारिणी विभूतिसे विभूषित दिव्य शरीरको धारण करनेवाले परम तेजोमय मुझ महेश्वरके सिवाय अत्युद्भट कामदेवके बाणोंका विजय और किसने किया है ? अर्थात् मैंने ही किया है। अत: मैं समझता हूँ कि तुम मुझे ही प्रसन्न करनेकेलिए यह तप कर रही हो ?'

इस प्रकार भावसम्पत्ति, रसयोजना, ध्वनि, व्यंग्यार्थ और लक्षणाका सद्भाव रहनेसे स्तुतिकुसुमांजलिका काव्यात्मक मूल्य अत्यधिक है। यद्यपि यह भक्तिपरक रचना है फिर भी कवि ने इसमें काव्य-सौन्दर्यका सुन्दर सन्निवेश किया है। इसमें हर्ष विषाद, सुख-दुःख, काम-क्रोध एवं लोभ-मोह प्रभृति विभिन्न भावोंका अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है। प्रेषणीयता इस स्तुतिकाव्यमें इतनी अधिक है कि भावनाएँ पाठकोंतक सहजमें पहुँच जाती हैं। यहाँ एक विशेष प्रकारका रागात्मक स्पन्दन पाया जाता है जो पाठकोंको रसानुभूतिकी स्थिति तक ले जाता है। अत: भावनाओंका प्रेषण एवं रस-परिपाक बहुत ही सुन्दर रूपमें हुआ है।

आत्मनिष्ठताकी भावना रहनेपर भी लाक्षणिक और व्यंग्य पद्योंका ग्रथित होना कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। अतएव यह सार्वजनीन सत्य है कि चमत्कारकी दृष्टिसे इस स्तुतिकाव्यका जितना मूल्य है, उससे कहीं अधिक ध्वनिकाव्य की दृष्टि से है।

षष्ठ अध्याय

स्तुतिकुसुमांजलिकी अलंकार-योजना

काव्यकामिनीके शोभावर्द्धक धर्मको अलंकार कहते हैं।[1] ये रसके उपकारक होते हैं। यों तो मधुराकृतिकेलिए मण्डनकी आवश्यकता नहीं, पर क्रम एवं संगतिकी दृष्टिसे अलंकारका रहना अनिवार्य है।[2] भावनाओंके प्रवाहमें अलंकार स्वयं ही कुसुमगुच्छकी तरह प्रस्फुटित होकर सुन्दरता उत्पन्न कर देते हैं। अतः भावोंका उत्कर्ष दिखलाने और वस्तुओंके रूप, गुण एवं क्रियाका तीव्र अनुभव करानेकेलिए उक्तिवैचित्र्यरूप अलंकारकी आवश्यकता पड़ती है। अलंकारोंके प्रयोगके उद्देश्य हैं :

भावोंका उत्कर्ष दिखलाना, वस्तुओंके रूप और अनुभवको तीव्र करना, गुणके अनुभवको तीव्रतम बनाना एवं क्रियाके अनुभवको सहज रूपमें उपस्थित करना।

उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट है कि अलंकार काव्यकेलिए आवश्यक धर्म हैं, क्योंकि वक्तव्यको चमत्कारपूर्ण बनानेका कार्य अलंकारद्वारा ही सम्भव होता है। वस्तुतः किसी वक्तव्यका सामान्य जनताकी साधारण बोलचालसे भिन्न, विचित्र और चमत्कारपूर्ण शैलीमें कथन करना ही अलंकार है। यह उक्ति-वैचित्र्य अनेक प्रकारका होता है, अतएव अलंकार भी अनेक हैं और उनकी इयत्ता निर्धारित करना सम्भव नहीं।

स्तुतिकुसुमांजलिमें अलंकारोंकी योजना दो रूपोंमें हुई है: सायास और अनायास। सायास अलंकारोंके मध्य उन शब्दालंकारोंकी गणना की जा सकती है जहाँ कविने यमक, अनुप्रास और श्लेषकी बुद्धिपूर्वक योजना की है। शृंखलाबंधस्तोत्र, द्विपदयमकस्तोत्र, पादादियमकस्तोत्र, पादमध्ययमकस्तोत्र, पादान्तयमकस्तोत्र, एकान्तरयमक स्तोत्र एवं महायमकस्तोत्रमें यमकालंकारकी योजना किसी सुनिश्चित रूपरेखाके आधारपर ही की गयी है। यमकका ऐसा सुन्दर नियोजन महाकाव्योंमें भी कम ही उपलब्ध होता है। इन अलंकारोंमें भिन्नार्थताके साथ वर्णावृत्ति या शब्दावृत्ति हुई है।

---

१. तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः। काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

२. किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। अभिज्ञान शाकुन्तल, १।१९

यमक अलंकारमें आवृत्त शब्द निरर्थक नहीं, सार्थक होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि जगद्धरभट्ट अत्यन्त कुशल शिल्पी हैं। भाषा और पदावली पर कविका अपूर्व आधिपत्य है। इन्होंने आदि, मध्य एवं अन्त यमककी जो योजनाकी है वह योजना कृत्रिम नहीं होने पायी है। कवि जगद्धरभट्टके इस स्तोत्रकाव्यमें अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति एवं पुनरुक्ति प्रभृति शब्दालंकार उपलब्ध होते हैं। कविने शब्दचमत्कारोत्पादनहेतु ही उपर्युक्त शब्दालंकारोंका प्रयोग किया है।

अनुप्रास

अनुप्रास ध्वनि और अर्थ शब्दके रूप हैं। ध्वनिसे संगीतधर्मका सृजन होता है। एक प्रकारसे यह काव्यका चित्र-धर्म है। आचार्योंने अनुप्रासका वर्णन अनेक रूपोंमें किया है। उन्होंने इसके छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, लाटानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास और अन्त्यानुप्रास ये पाँच भेद माने हैं। वर्णोंके साम्यका नाम अनुप्रास है। अर्थात् वर्णनीय रसकी अनुकूलताके अनुसार वर्णोंका बार-बार और आस-पास प्रयोग करना अनुप्रास है। अनुप्रास रसोंको विभूषित करनेवाले गुणोंके भूषण हैं। अनुप्रासोंकी योजना शब्दोंमें आदि-अन्तके अक्षरोंकी आवृत्तिसे होती है। कवि जगद्धरभट्टने अनुप्रासकी योजना अनेक पद्योंमें की है :

उतप्तहेमरुचि चन्द्रकलाकलापे
बालप्रवालरुचिरे च करे कपालम्।
ताम्रेऽधरे च हसितं सितमुद्भुतेयं
विच्छिन्निरिन्दुशिरसः कुशलं क्रियाद्वः ॥[1]

उक्त पद्यमें 'कला-कलापे' 'बाल-प्रवालं' एवं हसितं-सितं' पदोंमें अनुप्रास है।

भालाग्निकीलकलिताखिलरन्ध्रभागं
भर्गस्य वो दिशतु शर्म शिरः कपालम्।
यत्कालवह्निवपुषः पचतः प्रभूत-
भूतव्रजं व्रजति तस्य महानसत्वम् ॥[2]

१. स्तुति० ३।३०
२. वही, ३।२७

यहाँ 'कील-कलि', 'प्रभूत-भूत', एवं वृजं-वृजति'में अनुप्रास है।

त्वामेव देवि शरणीकरवाणि वाणि
कल्याणि सूक्तिभिरुपस्तुहि चन्द्रमौलिम्।
मातर्नयामि न पुनर्भवतीमलीक-
वाचालबालिशविलंघनभाजनत्वम् ॥[1]

यहाँ 'करवाणि-वाणि' में अनुप्रास है।

कलिमलपटली मलीमसत्वं नयति मतिं हृतदर्पं दर्पणाभाम्।
इति शितिगल शीतरश्मिरश्मिप्रसरसितं रसितं तवार्थयाम: ॥[2]

उपर्युक्त पद्यमें 'दर्प-दर्पणाभाम्', 'रश्मि-रश्मि', एवं 'प्रसरसितं-रसितं' शब्दोंमें अनुप्रास है।

यमक

स्तुतिकुसुमांजलिमें यमकालंकारका समावेश सर्वाधिक हुआ है। जहाँ निरर्थक वर्णों या भिन्नार्थक सार्थक वर्णोंकी पुनरावृत्ति हो अथवा उनकी पुन: पुन: श्रुति हो वहाँ यमक अलंकार होता है। कविने द्विपदयमककी योजना चौबीसवें स्तोत्रमें की है।

वचसि सरस्वति मे विभवं प्रकटय जातरसारम्।
नुतिभिरुपस्तुहि देवि भवं सकलसुरान्तरसारम् ॥[3]

यहाँ प्रथम और तृतीय चरणमें 'विभवं-विभवं'में और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणमें 'रसारम्-रसारम्'में द्विपदयमक पाया जाता है। इसी प्रकार :

दुरितहृतौ विषसाद कर: क्वापि न ते रमणीय:।
अपि स भयं विषसाद कर: शमयतु घोरमणीय: ॥[4]

'विषसादकर:-विषसादकर:' और 'रमणीय:-रमणीय:' में भी द्विपद-यमक है।

---

१. स्तुति० ११।२६
२. वही, १३।१६
३. वही, २४।१
४. वही, २४।२४

पादादियमककी योजना छब्बीसवें स्तोत्रमें की गयी है :

भूतिर्विभूतिर्विपुला दिशश्च वासो निवासो निलय: पितृणाम् ।
हीनैरहीनैरपि यस्य भूषाऽराला कराला कलिका च मौलौ ।।[१]

उपर्युक्त पद्यमें 'भूतिः-भूतिः', 'वासो-वासो', 'हीनैः-हीनैः' और 'राला-राला'में यमक अलंकार है। ये सभी पादके आदिमें हैं अतः ये सभी पादादियमकके उदाहरण हैं। इसी प्रकारके यमक का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है :

कल्पान्तकल्पान्तकभीतियुक्तं रक्षामि रक्षामिह योऽर्हतीति ।
यस्ते नयस्तेन दिश प्रसन्नामत्रासमत्रासहरां दृशं मे ।।[२]

'कल्पान्त-कल्पान्त', 'रक्षामि-रक्षामि', 'यस्तेन-यस्तेन' तथा 'अत्रास-अत्रास'में पादादियमक है।

पादमध्ययमककी योजना सत्ताईसवें स्तोत्रमें की गयी है :

न हरिणा हरिणांकशिखामणे न विधिना विधिनाऽपि सपर्यता ।
तव पुरा वपुराममृशे वयं क्व नु भवानुभवावृतचेतसः ।।[३]

प्रस्तुत पद्यमें 'हरिणा-हरिणा', 'विधिना-विधिना', 'वपुरा-वपुरा', तथा 'नुभवा-नुभवा'में पादमध्ययमक है क्योंकि ये सभी पादके मध्यमें आये हुए हैं। इसी प्रकार :

स्थिरविभा रविभातिरिवोन्मदं मदमयं दमयन्त्यसमन्तमः ।
तव दया वद यात्युदयं न चेद् भवतमी बत मीलति मे कथम् ।।[४]

'रविभा-रविभा', 'दमय-दमय', 'वदया-वदया' और 'वतमी-वतमी'में भी पादमध्ययमक है।

पादान्तयमककी योजना अष्टाविंश स्तोत्रमें की गयी है :

आनीता चरणान्तिकप्रणयितां कामेन का मेनका
कार्यं किं घनभोगसंभृतविधौ सारम्भया रम्भया।

---

१. स्तुति० २६'६
२. वही, २६।२७
३. वही, २७।६
४. वही, २७।१४

कान्ता मे परमेश्वरे हतविपत्संभावना भावना
चित्ते कापि रतिर्यया हितहितभ्रातायते तायते ॥[१]

यहाँ 'कामेन-कामेन', 'रम्भया-रम्भया', 'भावना-भावना, तथा 'तायते-तायते' शब्दोंमें यमक है। ये शब्द पादके अन्तमें आये हैं अय: ये पादान्त-यमकके उदाहरण हैं। इसी प्रकार :

दृष्ट्वा यन्मघवा विहाय गतवानैरावणं रावणं
पश्यन्पाण्डुतया भयादनुकृतश्यामाधवं माधवम्।
सर्वोऽयं भवतः प्रसादमहिमा हन्ता नवं तानवं
सेवा कस्य न सिद्धये हतवृथासंकल्प ते कल्पते।[२]

यहाँ 'रावणं-रावणं', 'माधवं-माधवं', 'तानवं-तानवं और 'कल्पते-कल्पते' में भी पादान्तयमक है।

एकान्तरयमककी योजना उन्नीसवें स्तोत्रमें की गयी है :

शिवेन देव्या जगृहे करोऽहितस्त्रसन्यदा कुंकुमपंकरोहितः।
तदास्य योऽर्काग्निनिशाकरोहितः स्तवः स वः स्यादभयंकरो हितः ॥[३]

यहाँ यमककी योजना पहले और तीसरे तथा दूसरे ओर चौथे पादमें की गयी है। 'करो हितः' एकबार पहले पादमें आया है फिर वह तीसरे पादमें है। उसी प्रकार 'अङ्करोहितः' दूसरे और चौथे पादमें आया है। इस प्रकार यह एकान्तरयमकका उदाहरण है।

महायमककी योजना तीसवें स्तोत्रमें है :

तव सवहरिणं घ्नती महर्षिं यमकृत चापलता नवासमाधिम्।
पुनरपि दृगलम्भयत्तवैनं यमकृतचापलतानवा समाधिम् ॥[४]

प्रस्तुत पद्यमें 'यमकृत चापलतानवासमाधिम्' यह पूराका पूरा पद ज्योका त्यों चौथे पदमें पुनः आया है। अतः यह महायमका उत्कृष्ट उदाहरण है। इसी प्रकार :

---

१. स्तुति०२ ८।१२
२. वही, २८।१७
३. वही, २९।२
४. वही, ३०।१२

सदय मोदय मोदयमोक्षदं कृशमदः शमदः शमदः कुरु।
न हि तता हितताऽऽहिततायनैः कृतनुते तनु ते तनुते शुभम् ॥[1]

श्लोकके प्रत्येक चरणमें एक पदकी तीन-तीन बार आवृत्ति हुई है। प्रथम चरणमें 'दयमो' तीन बार, द्वितीय चरणमें 'शमदः' तीन बार, तृतीय चरणमें 'हितता' तीन बार तथा चौथे चरणमें 'तनुते' तीन बार आया है। अतः यह भी महायमकका उदाहरण है।

श्लेष

श्लेष शब्द 'श्लिष्' धातुसे बना है जिसका अर्थ होता है चिपकना अथवा संयोग। इसमें एक शब्दके साथ अनेक अर्थ चिपके या संयुक्त रहते हैं। यह शब्द और अर्थ दोनोंमें होनेके कारण शब्दश्लेष और अर्थश्लेष इन दो रूपों में रहता है। जहाँ श्लेष मूलतः शब्दाश्रित रहता है वहाँ शब्दश्लेष होता है। अर्थात् शब्दश्लेष वहाँ होता है जहाँ श्लिष्ट शब्दोंसे अनेक अर्थोंका विधान किया जाय। अभंग और सभंग भेदसे यह दो प्रकारका होता है। अभंग श्लेष वह है जिसमें शब्दोंके भिन्न अर्थ करनेकेलिए उनका भंग न किया जाय। स्तुतिकुसुमांजलिमें इस प्रकारके श्लेषके अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं :

चारुचन्द्रकलयोपशोभितं भोगिभिः सह गृहीतसौहृदम्।
अभ्युपेतघनकालशात्रवं नीलकण्ठमतिकौतुकं स्तुमः ॥[2]

'मनोहर चन्द्रमाकी कलासे सुशोभित, वासुकि आदि सर्पोंके साथ मित्रता करनेवाले और कठोर काल (यमराज)के साथ शत्रुभाव रखनेवाले भगवान् सदाशिवरूप अत्यद्भुत नीलकण्ठ (मयूर)की हम स्तुति करते हैं।' समुद्रमन्थनके समय कालकूटका पान करनेके कारण कण्ठ नीला हो जानेसे भगवान् शिवका नाम नीलकण्ठ पड़ गया। गला नीला होनेके कारण मयूरको भी नीलकण्ठ कहते हैं। अतः यहाँ शब्दश्लेषसे इस शिवरूप मयूरकी लौकिक मयूरोंसे विलक्षणता दिखलायी गयी है। 'नीलकण्ठ'से भगवान् शंकर और मयूर दोनों अर्थ विना पदका भंग किये ही निकलते हैं अतः यह अभंगश्लेषका एक सुन्दर उदाहरण है।

---

१. स्तुति० ३०।२३
२. वही, १।१४

उद्दामदोषमपि दीर्घगुणं भुजग-
भोगोपगूढमपि रूढशिखिप्रसंगम् ।
कापालिकव्रतसमेतमपि द्विजेन्द्र-
चूडामणिं विभुमनङ्कुशमाश्रयामि ॥[१]

"जो उद्दाम दोषों वाला होकर भी महान् गुणशाली है, भुजंगफणोंसे परिवेष्टित होकर भी शिखीके साथ प्रीति करता है और कापालिकव्रतधारी होकर भी द्विजेन्द्रचूडामणि है, उस अनंकुश अर्थात् सर्वतंत्रस्वतंत्र प्रभुका मैं आश्रय लेता हूँ।" यह भी अभंगश्लेषका एक उत्तम उदाहरण है।

सभंगश्लेष वहाँ होता है जहाँ शब्दोंके भिन्न अर्थ करनेकेलिए उन्हें भंग किया जाय।

द्विजाधिपाधिष्ठितशेखरं महाभुजं गवि न्यस्तभरं समुद्वहन्।
वपुः सदाभंगदयासमाश्रितं तनोतु वः संपदमच्युतः शिवः ॥[२]

"मस्तकपर चन्द्रमासे विराजित, बड़ी-बड़ी भुजाओंवाला, वृषभपर बैठकर चलनेवाला एवं सदा दीनोंका उद्धार करनेवाली अविनाशी दयासे समाश्रित शरीरको धारण करनेवाला वह अविनाशी शिव आप लोगोंके वैभवका विस्तार करे।' अथवा "पक्षिराज गरुड़के कन्धेपर बैठा हुआ, शेषनागपर अपना भार रखनेवाला, सुमनोहर शोभासे सम्पन्न और कौमोदकी गदासे सुशोभित दिव्य मंगलमय शरीरको धारण करनेवाला वह कल्याणदाता अच्युत भगवान् विष्णुरूपधारी शिव आपकी सम्पत्तियोंका विस्तार करे।"

उक्त पद्यमें 'द्विजाधिपाधिष्ठितशेखरं' 'महाभुजं' एवं 'गवि न्यस्तभरं' आदि शब्दोंके जो दो अर्थ प्रकट होते हैं, वे पदोंको भंग करनेपर ही सम्भव हैं। अतः यह सभंगश्लेषका उदाहरण है।

वक्रोक्ति

कवि अन्यार्थको व्यक्त करनेकेलिए वक्रोक्ति अलंकारकी योजना करता है। इस अलंकारमें वक्ता किसी विशेष अभिप्रायसे अपना कथन करता है और श्रोता उसको किसी अन्य अर्थमें ही ग्रहण करता है। यथाः

---

१. स्तुति० ८।४०
२. वही, २९।७

अंगं भुजंगरचितांगदभंगि तुंग-
त्वंगत्तरंग गगनांगनसंगिगंगम् ।
बिभ्रद्विभुर्विहितरंगदनंगभंग-
भंगीकरोत्वरमभंगुरमिंगितं वः ॥[१]

"जिसमें शेषनाग प्रभृति सर्पोंने केयूर अर्थात् बाजूबन्दकी शोभा बनायी है ऐसी उन्नत भुजाओं, उछलती हुई तरंगोंवाली आकाशगंगासे विराजमान विशाल मस्तक एवं कामदेवका भंग करनेवाले दिव्य ललाटको धारण करता हुआ वह व्यापक शिव आपकी अखण्डित अभिलाषाओंको शीघ्र अंगीकार करे।"

यहाँ 'पूर्णम् ईप्सितं ददातु' ऐसा कहनेके बदले 'अभंगुरम् इंगितम् अंगीकरोतु' इस कथनमें उपचारेण वक्रोक्ति है।

पुनरुक्ति

किसी बात पर जोर देने के लिए पदों या शब्दोंका बार-बार दुहराना पुनरुक्ति अलंकार है। यहाँ यह स्मरणीय है कि शब्दोंकी पुनरुक्ति काव्यमें चमत्कार उत्पन्न करती है। चमत्कार-उत्पत्तिके अभावमें 'पुनरुक्ति' पुनरुक्ति ही रह जाती है, अलंकार नहीं बन पाती। स्तुतिकुसुमांजलिमें आराध्यका सामीप्य-लाभ प्राप्त करनेकेलिए कविने अनेक शब्दोंकी पुनरावृत्ति कर अपने कथनको चमत्कारपूर्ण बनाया है।

स्तुत्यस्त्वमेव स्तुतिकृत्त्वमेव स्तुतिस्त्वमेव त्वदृतेऽस्ति नान्यत् ।
इयं त्वविद्या यदहं स्तुवे त्वां स्तुत्येति मिथ्या पृथगर्थबुद्धिः ॥[२]

"हे विभो! एकमात्र स्तुति करनेके योग्य आप ही हैं, स्तुति करनेवाले भी आप ही हैं और स्तुति भी आप ही हैं। अर्थात् जो कुछ भी पदार्थ दिखलाई देता है सब आप ही हैं। आपके सिवाय और कुछ भी नहीं है। भगवन्! मैं इस स्तोत्रसे आपकी स्तुति कर रहा हूँ, यह जो स्तुत्य-स्तुति-स्तोतारूप मिथ्या भेददृष्टि है यह तो अविद्या ही है।"

यहाँ स्तुति शब्दकी पुनरुक्ति चमत्कारिणी होनेके कारण पुनरुक्ति अलंकार है।

---

१. स्तुति० ३।८
२. वही, १२।२

अर्थालंकारोंका प्रयोगक बि अर्थ-चमत्कारके हेतु करता है। यह अर्थ चमत्कार कई प्रकारसे उत्पन्न होता है। कहीं ध्वनिसे, कहीं लक्ष्यार्थसे और कहीं अलंकारोंके विशिष्ट प्रयोगसे। कवि जगद्धरभट्टने भावोंको तीव्र एवं प्रेषणीय बनानेकेलिए अर्थालंकारोंका प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है।

उपमा

सादृश्य-मूलक अलंकारोंमें उपमाका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि अपनी कल्पनाके भाण्डारको उपमानोंके द्वारा ही समृद्ध करता है, अत: अर्थालंकारोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण अलंकार उपमा अलंकार ही है; अन्य अलंकार तो उपमाके ही प्रपंच है। कविने पूर्णोपमा और मालो-पमाका सर्वाधिक प्रयोग किया है।

पूर्णोपमाकेलिए निम्नोद्धृत श्लोक द्रष्टव्य है:

व्योम्नीव नीरदभर: सरसीव वीचि-
व्यूह: सहस्रमहसीव सुधांशुधाम।
यस्मिन्निदं जगदुदेति च लीयते च
तच्छाम्भवं भवतु वैभवमृद्धये न: ॥[1]

उक्त पद्यमें उपमेय भगवान् शंकर हैं उपमान 'व्योम्नि नीरदभर:' 'सरसि वीचिव्यूह:' एवं 'सहस्रमहसि सुधांशुधाम' है, 'इव' उपमावाची शब्द है एवं 'उदेति लीयते च' साधारण धर्म है। अत: चारो अंगोंकी पूर्णता रहने के कारण यहाँ पूर्णोपमा है।

य: कन्दुकैरिव पुरन्दरपद्मसद्मपद्मापतिप्रभृतिभि: प्रभुरप्रमेय:।
खेलत्यलंघ्यमहिमा स हिमाद्रिकन्याकान्त: कृतान्तदलनो लघयत्वघं व: ॥[2]

यहाँ 'पुरन्दरपद्मसद्मपद्मापतिप्रभृतिभि:' उपमेय, 'कन्दुकै:' उपमान, 'इव' उपमावाची शब्द एवं 'खेलति' साधारण धर्म है। अत: यहाँ भी पूर्णोपमालंकार है।

---

१. स्तुति० ३।२
२. वही, ३।६

मालोपमाका सुन्दर उदाहरण निम्नलिखित श्लोक है:

निशान्तनिद्रेव दशेव शैशवी नवीनवध्वाश्चकितेव दृक्छटा ।
सुरस्रवन्तीव कथेव शाम्भवी कवीन्द्रवाङ् निवृतिमातनोतु वः ॥[१]

कविकी वाणी रूप एक उपमेय केलिए प्रातःकालकी निद्रा, बाल्यावस्था, नवीनवधूकी दृष्टिच्छटा, सुरसरि एवं शाम्भवी कथा ये पाँच उपमान प्रयुक्त हैं। अतः यहाँ मालोपमा है।

उत्प्रेक्षा

जहाँ प्रस्तुत की (उपमेयकी) अप्रस्तुतरूपमें (उपमान रूपमें) सम्भावना की जाय वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

मूर्त्तिध्रुवं तव शिवामृतवर्तिरेना-
मासाद्य यत्कतिचिदश्रुलवाः पतन्ति ।
नश्यत्यघौघपटलं तिमिरं व्यपैति
रागः प्रशाम्यति दृशः प्रथते प्रसादः ॥[२]

यहाँ उत्प्रेक्षा है। कविने शिवामृतवर्तिको नेत्ररोगनाशक ही नहीं जन्म-जरा और मृत्युरोग-नाशक भी कल्पित किया है। कल्पनाका यह विस्तार उत्प्रेक्षाजन्य है। अतएव उक्त पद्यमें उत्प्रेक्षा अलंकार है।

कांचीकांचनकिंकिणीकलकलः शिंजानमंजीरजो
झांकारः सकलांगभूषणमणिश्रेणीझणाडम्बरः ।
वाग्देव्याः प्रचलस्खलद्भुजलताक्षेपक्वणत्कंकण-
क्वाणश्चंक्रकणक्रमे विजयते चन्द्रार्धमौलेः स्तवः ॥[3]

यहाँ स्तोत्रको कविने वाग्देवीकी कांचीकांचनकिंकिणीके रूपमें कल्पित किया है। अतः यहाँ भी उत्प्रेक्षा अलंकार है।

रूपक

कवि रूपक अलंकारकी योजना कर अपने काव्यको चमत्कारपूर्ण

१. स्तुति० ७।१
२. वही, १९।३
३. वही, ३३।१

बनाता है। स्तुतिकुसुमांजलिमें इस अलंकारकी योजना अनेक स्थलोंपर पायी जाती है।

दानाम्बुनिर्भरकरस्तनयः स यस्य
श्रीमान् स यस्य धनदः सविधे विधेयः।
यः संश्रितः शिरसि मुक्तकरेण राज्ञा
पुष्णातु वः कनकवर्षघनः स देवः ॥[1]

यहाँ कविने शिवरूपमें मेघका आरोप कर रूपक अलंकार की सुन्दर योजना की है। जैसे मेघद्वारा की गयी वृष्टि से धनधान्यकी समृद्धि होती है वैसे ही शिवरूप मेघकी कृपासे भक्तकी समृद्धि होती है।

परम्परितरूपक

जहाँ कई रूपकोंका एक साथ एक ही पद्यमें प्रयोग किया जाय वहाँ परम्परित रूपक होता है :

जयति चित्तचकोरकचन्द्रिका सुकृतिनां वदनाब्जरविच्छबिः।
श्रवणबर्हिणवर्षणवर्तनी हरिणकेतुकलामुकुटस्तुतिः ॥[2]

यहाँ 'चित्तमें चकोरका' आरोप, 'मुखमें' 'कमलका' आरोप एवं 'श्रवण'में 'मयूरका' आरोप करनेके कारण परम्परितरूपक है।

सन्देह

जहाँ प्रश्न उठाकर किसी वस्तुके निरूपणमें चमत्कारपूर्ण सन्देह उत्पन्न किया जाय वहाँ सन्देहालंकार होता है। स्तुतिकुसुनांजलिमें इस अलंकारके अनेक उदाहरण समाहित हैं:।

धन्यानां भणितिच्छलेन वदनेष्वृद्यन्ति हृत्कर्णिका-
धाम्नः सूक्तिसुधावबोधविधुतापीडस्य चण्डीपतेः।
किं जूटाहिकिरीटरत्नरुचयः किं स्रग्जःसञ्चयः
किं मौलीन्दुमरीचयः किममरस्त्रोतस्वतीवीचयः ॥[3]

---

१. स्तुति० ३।१४
२ वही, १०।७
३. वही, ५।२९

कवि प्रौढ़ उक्तियोंके सम्बन्धमें सन्देह उत्पन्न करता है कि क्या वे प्रौढ़ उक्तियाँ सदाशिवकी सुमनोहर मालाकी दीप्तियाँ हैं अथवा भालस्थ चन्द्रकी सुमनोहर किरणें हैं अथवा उनके हृत्पद्ममें विराजमान शिवके मौलिमण्डलस्थ मन्दाकिनीकी स्वच्छ तरंगें हैं ? काव्यगत चमत्कार उत्पन्न करनेके कारण यहाँ सन्देहालंकार है।

किमियं सद्गुरुदृष्टिर्ह्लादैकमयी नु किं जगत्सृष्टिः।
किं वा निरभ्रवृष्टिः श्रवणामृतवर्षिणी नुतिः शम्भोः ॥[1]

यहाँ कवि स्तुतियोंके सम्बन्धमें सन्देह प्रकट करता है कि ये सद्गुरुकी अनुग्रहदृष्टि हैं, अथवा जगत्‌की अतिशय आनन्ददायिनी सृष्टि अथवा विना बादलोंकी वृष्टि। अतः यहाँ भी सन्देहालंकार है।

अनुमान

हेतु-द्वारा साध्यका चमत्कारपूर्णक ज्ञान कराये जानेपर अनुमान अलंकार होता है। यह न्यायमूलक अर्थालंकार है। इसमें साधनद्वारा साध्यकी प्रतीति होती है।

सत्यं महार्घगुणरत्ननिधानमेतदालम्बनं तव वपुर्विपदर्दितानाम्।
नो चेन्नखांशुभरकेसरितं किमत्र पादाभिधं युगपदुद्गतमब्जयुग्मम् ॥[2]

कमलके साथ निधिका साहचर्य-सम्बन्ध है, इसी आधार पर ज्ञात होता है कि चरणकमलोंके रहने पर रत्नोंका हृदयमें रहना आवश्यक है। अतः यह अनुमान अलंकार का उदाहरण है।

निदर्शना

जहाँ वस्तुओंका परस्पर सम्बन्ध उनके बिम्बप्रतिबिम्ब भावको प्रकट करे वहाँ निदर्शना अलंकार होता है:

दीपोत्करैर्गविरुचां परिपूरणेयं नीहारवारिभिरिदं भरणं पयोधेः।
अस्मादृशां मितदृशां नियतैर्वचोभिः प्रस्तूयते भव तव स्तवचापलं यत् ॥[3]

अत्यन्त परिमित वचनोंसे भगवान्‌की स्तुतिके लिए उद्योगका किया

---

१. स्तुति० ३७।७
२. वही, १९।४
३. वही, ९।७

जाना उसी प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार सूर्यकी अनन्त कान्तिको दीपमालिकाओंद्वारा पूर्ण करना अथवा ओसकी बूंदोंसे अगाध समुद्रको भरना। अतः यहाँ निदर्शना अलंकार है।

व्याजस्तुति

जहाँ स्तुति वाक्यों द्वारा निन्दा और निन्दा वाक्योंद्वारा स्तुति की जाय वहाँ व्याजस्तुति अलंकार होता है।

जात्यन्धः पथि संकटे प्रविचरन्हस्तावलम्बं विना
यातश्चेदवटे निपत्य विपदं तत्रापराधोऽस्य कः।
धिग्धिङ्मां सति शास्त्रचक्षुषि सति प्रज्ञाप्रदीपे सति
स्निग्धे स्वामिनि मार्गदर्शिनि शठः श्वभ्रे पतत्येव यः॥[1]

"हे नाथ! यदि कोई जन्मान्ध पुरुष संकटमय मार्गमें बिना किसीके हाथके सहारे चलता हुआ गड्ढे में गिरकर मर जाय, तो इसमें उस बेचारे जन्मान्धका क्या अपराध है? अर्थात् वह निन्दाका पात्र नहीं हो सकता। किन्तु मुझे तो बार-बार धिक्कार है, जो मैं मूर्ख शास्त्ररूपी नेत्र होते हुए, प्रज्ञारूपी दीपक होते हुए और सन्मार्गके दर्शक आप जैसे अतिदयालु स्वामीके होते हुए भी भवसागररूप अन्धकूपमें गिरता जाता हूँ।" यहाँ निन्दामुखेन भगवान् शंकरकी स्तुति की गयी है अतः यहाँ व्याजस्तुति है।

पुनरुक्तवदाभास

शाब्दिक दृष्टिसे जहाँ पुनरुक्ति प्रतीत होती हो पर अर्थकी दृष्टिसे जहाँ पुनरुक्ति न हो वहाँ पुनरुक्तिवदाभास अलंकार होता है। आभास शब्द ही इस बात सूचक है कि वस्तुतः वहाँ कोई पुनरुक्ति नहीं है, केवल उसकी मिथ्या प्रतीति है। इस अलंकारसे अर्थसम्बन्धी चमत्कार प्रकट होता है। यथा:

अम्बरेण गगनेन संवृतं जीवनैः शिरसि वारिभिः श्रितम्।
भोगिभिश्च भुजगैर्विभूषितं शंकरं शुभकरं भजामहे॥[2]

---

१. स्तुति० ११।१३५
२. वही, १।२१

इस श्लोकमें 'अम्बरेण-गगनेन', 'जीवनै:-वारिभि:', 'भोगिभि:-भुजगै:' एवं 'शंकरम्-शुभेकरम्, इन समानार्थक पदोंमें आपाततः जो पुनरुक्तभाव सा प्रतीत होता है, वह वस्तुतः पर्यवसानमें अन्यार्थक होनेसे पुनरुक्तदोष नहीं है अपितु पुनरुक्तवदाभास अलंकार है।

समासोक्ति

जहाँ प्रस्तुतार्थ-बोधक वाक्यके द्वारा किसी अप्रस्तुत अर्थका बोध होता हो और इस प्रकृत तथा अप्रकृत दोनों अर्थोंका प्रतिपादन विशेष्य-वाचक पदके सामर्थ्य से न होकर, विशेषणवाचक श्लिष्ट पदोंके महत्त्वसे सम्भव हो, वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है :

एतां निसर्गसरलामभिजातमुग्धा-
मद्वावधीरयसि धीरगभीरमानी ।
जानासि किं न शतशो नतसान्त्वनेषु
यद्वृद्धया करुणया नरिनर्तितोऽसि ॥[1]

'हे विभो ! निश्चय ही अपनेको महान् धैर्यशाली और गम्भीर मानने-वाले आप मेरी इस स्वभावतः सरल, अतिसुकुमार और मुग्धा वाणीको अपमानित कर रहे हैं। पर क्या यह नहीं जानते कि सहस्रों बार भक्तजनोंको आश्वासन देनेमें निरन्तर वृद्धिंगत करुणाने आपको बार-बार नचाया है ?'

श्लेषपर आधृत इस कथन का यह भाव है कि जिस तरह नमन और सान्त्वन व्यापारमें किसी वृद्धा नायिकाद्वारा बार-बार नचाया गया कोई नायक अपनेको धीरगम्भीर बताकर मुग्धा नायिकाका तिरस्कार करता है, तो वह उचित नहीं। इसी तरह भक्तोंकेलिए अत्यन्त बढ़ी हुई करुणाकी कठपुतली बने आपद्वारा मेरी मुग्धवाणीकी उपेक्षा उचित नहीं है। अतः यहाँ श्लेषमूला समासोक्ति है।

विनोक्ति

जहाँ एकके विना दूसरेका शोभित वा अशोभित कहा जाय वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है :

---

१. स्तुति० ११।१८

यथा हि शीलेन विना कुलांगना यथा विवेकेन विना मनीषिता ।
सदर्थबोधेन विना यथा श्रुतिर्महीभुजंगेन विना यथा मही ॥
यथा विना द्यौररविन्दबन्धुना विना शशांकेन तथा निशीथिनी ।
विदग्धवर्गेण विना यथा सभा विना विभूतिर्विनयेन वा यथा ॥
कृपाविपाकेन विना यथा मतिर्यथा सुपुत्रेण विना गृहस्थितिः ।
तथैव शोच्या हरिणांकशेखरस्तवोपयोगेन विना सरस्वती ॥[1]

उक्त पद्यसमूह विनोक्ति अलंकारका एक उत्तम उदाहरण है ।

समुच्चय

जहाँ समुदायका एकत्र होना वर्णित हो वहाँ समुच्चय अलंकार होता है । स्तुतिकुसुमांजलिमें इस अलंकारका प्रयोग कम ही स्थलोंपर किया गया है : उसका एक सुन्दर उदाहरण निम्नलिखित श्लोक है :

पृथुलसज्जघनोरुपयोधरा गुरुमरुच्चपलाकुलिताम्बराः ।
यदि भवेयुरिमा न घनागमे मृगदृशश्च दिशश्च धृतिच्छिदः ॥[2]

'हे विभो ! वर्षाकालमें बड़े-बड़े नितम्बों, जंघाओं और स्तनोंसे सुशोभित एवं तीव्र वायुके वेगसे कम्पायमान वस्त्रोंवाली ये मृगनयनाएँ (युवतियाँ) तथा अतिविशाल, सजल और सान्द्र पयोधरों (मेघों) से सुशोभित एवं तीव्र वायु और अतिचपल विद्युत्से समावृत आकाशसे सुमनोहर दिशाएँ यदि मनुष्यका धैर्य न खो डालें, तो विवेकी पुरुष भी आपका ध्यान छोड़ विषयोंमें क्यों आसक्त होते ?'

ऊपर बतलायी गयी दो वस्तुओंमें से मनुष्यका धैर्य लुप्त करनेकेलिए एक ही वस्तु पर्याप्त है । यहाँ दोनोंका एक साथ वर्णन होनेके कारण समुच्चय अलंकार है ।

अर्थान्तरन्यास

जहाँ विशेषसे सामान्यका या सामान्यसे विशेषका साधर्म्य या वैधर्म्यके द्वारा समर्थन किया जाय वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है :

---

१. स्तुति० ७।१२-१४
२, वही, १०।१६

दाने नदीनमुपकल्पयतः सहर्ष-
माक्रम्य गामनुपमां गतिमास्थितस्य ।
नागेन्द्र-संभृतमहाकटकस्य कस्य
शस्यं विना त्वदिह राजशिरोमणित्वम् ॥[1]

'हे प्रभो ! बालक उपमन्युको आनन्दपूर्वक क्षीरसागर का दान करनेकेलिए संकल्प लेनेवाले, वृषभपर बैठकर अनुपम गतिको प्राप्त हुए एवं वासुकि आदि महान् सर्पोंका कंकण धारण करनेवाले एक आपके सिवा तीनों लोकोंमें और किसका राजशिरोमणित्व (सिरपर चन्द्रको धारण करना) प्रशंसनीय हो सकता है ? अर्थात् किसीका नहीं'। यहाँ सामान्यके द्वारा विशेषका समर्थन होनेके कारण अर्थान्तरन्यास नामक अलंकार है।

विभावना

विभावना अलंकारमें कारणके अभावमें कार्यकी कल्पना की जाती है।

इदमसाधितमेव रसायनं निरुपभोगमिदं सुखमक्षयम् ।
अमृतमेतदनम्बुधिमन्थनं यदविनश्वरमीश्वरसेवनम् ॥[2]

'यह तो अविनश्वर (कभी भी नष्ट न होनेवाला) ईश्वर-सेवन (शिवाराधन) है, वह बिना किसीका बनाया हुआ ही रसायन है, यह एक अनुच्छिष्ट (किसीके भी द्वारा न भोगा हुआ) और अक्षय (आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिरूप अखण्ड) सुख है और यह बिना समुद्र-मन्थनका अमृत है।

यहाँ कारणके अभावमें कार्य वर्णित होनेके कारण विभावना अलंकार है। निम्नलिखित पद्य भी विभावना अलंकारके उदाहरणके रूपमें द्रष्टव्य है :

अनंजनं नेत्रविकासकारणं निरंकुशं कर्णकरेणुवारणम् ।
अचन्द्रिकं चित्तचकोरपारणं क्रियाद् ईशार्चनमार्तिदारणम् ॥[3]

'मायारूपी अंजनसे रहित और ज्ञानरूपी नेत्रोंका विकास करनेवाला, अंकुशसे रहित और श्रोत्ररूपी हाथियोंको रोकनेवाला एवं चन्द्रमाके प्रकाशसे

१. स्तुति० ५९।२९
२. वही, १०।३३
३. वही, २६।३

रहित और चित्तरूपी चकोरको तृप्त करनेवाला ईश्वराधन आपलोगोंके दु:खोंका निवारण करे।'

विरोधाभास

जहाँ यथार्थत: विरोध न हो पर उसका मात्र आभास हो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है :

हृद्गुहागहनगेहगूहितं भासिताखिलजगत्त्रयोदरम् ।
कन्दकन्दरदरीमुखोद्नतप्राणमारुतकृतस्थिरस्थिस्थितिम् ।।
त्यक्तसर्वदशमक्षयोदयं रूपवर्जितमभित्तिसंश्रयम् ।
यं निरंजनमनक्षगोचरं दीपमद्भुतमुशन्ति तं स्तुम: ।।[१]

यहाँ दोनों श्लोकोंमें विरोधाभास अलंकार है क्योंकि आपातत: निम्नलिखित विरोध प्रतीत होते हैं—चिदानन्दमय दीपक जो स्वयं गुप्त है, वह बाह्य वस्तुओंको कैसे प्रकाशित कर सकता है; वायुसे तो दीपक बुझ जाता है, वह स्थिर कैसे हो सकता है; लौकिक दीपक तो बत्तियोंसे एवं क्षय, उदय तथा रूपसे रहित नहीं होता किन्तु यह चिदानन्द दीपक तो बाल्यादि दशाओं एवं क्षय और उदयसे रहित है; लौकिक दीपक तो निरंजन अर्थात् अंजनसे रहित और इन्द्रियोंका अगोचर नहीं होता किन्तु यह हृदयमें रहनेवाला चिदानन्दमय दीपक तो निरंजन और इन्द्रियोंका अगोचर है। अतएव ज्ञानीलोगोंने इस (चिदानन्दमय) दीपकको लौकिक दीपकोंसे भिन्न बतलाया है।

निम्नांकित श्लोकमें भी विरोधाभास का सुन्दर नियोजन है :

यत्सत्यवत्यपि जगद्विदितानसूया वाणी ममेयमिदमेव हि देव चित्रम् ।
अत्यद्भुतं पुनरिदं यदरुन्धतीयं त्वामारिराधयिषुरेवमुदीरितापि ।।[२]

'स्वामिन् ! संसारमें प्रसिद्ध सत्यवती होकर भी यह मेरी वाणी जो अनसूया हो गयी है, पहले तो यही एक आश्चर्य है ! दूसरा महान् आश्चर्य यह है कि पूर्वोक्त प्रकारसे वर्णित यह वाणी पुन: अरुन्धती होकर भी पुन: आपका ही आराधन करनेकी इच्छा करती है।'

---

१. स्तुति० ९।११-१२
२. वही, ११।१५

कविने यहाँ विरोधाभास अलंकारद्वारा विलक्षण चमत्कार दिखाया है। वह कहता है कि जो सत्यवती (पराशर मुनिकी पतिव्रता पत्नी) है, वह अनसूया (अत्रिमुनिकी पत्नी) हो गयी है और जो अनसूया है वह अरुन्धती (वशिष्ठमुनिकी धर्मपत्नी) हो गयी है।

व्यतिरेक

जहाँ उपमेयका आधिक्य वर्णित किया जाता है वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। स्तुतिकुसुमांजलिमें अनेक स्थानोंपर कविने व्यतिरेकालंकारकी योजना करके उपमेय सदाशिवका उपमानोंकी अपेक्षा उत्कर्ष वर्णित किया है।

राकेन्दोरपि माधवादपि सतां संगादपि स्वामिनः
सम्मानादपि कामिनीकुचयुगाभोगोपभोगादपि।
शम्भो शर्व शशांकशेखर शिव श्रीकण्ठ विश्वेश्वर
त्रायस्वेति सतां हरन्ति हृदयं सान्द्रामृतार्द्रा गिरः॥[1]

यहाँ सज्जनोंकी सुकोमल एवं अमृतमयी सूक्तियोंको पूर्ण-चन्द्रमा, वसन्त, सत्संगति, स्वामीके सम्मान एवं कामिनीके विशाल स्तन-युगलके गाढालिंगनसे श्रेष्ठ बताया गया है। अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

स्मृति

कवि जब किसी दृष्ट या भुक्त सन्दर्भकी चमत्कारपूर्ण स्मृति दिलाता है तब वहाँ स्मृति अलकार होता है :

सुरभिगन्धिसहासमुखाम्बुजा धृतमनोहरहंसकविभ्रमाः।
यदि न मज्जनधाम नतभ्रुवः शरदि संस्मरयेयुरगापगाः॥[2]

'शरत्कालमें सुमनोहर सुगन्धियुक्त, विकसित मुखवाले कमलोंसे सुशोभित एवं मनोहर हंसोंके विभ्रमको धारण करनेवाली मज्जन (स्नान)के घर गिरि-नदियाँ यदि पुरुषोंको सुगन्धित, ईषद् हास्ययुक्त मुखकमलवाली, मनोहर हंसके समान मन्द-मन्द गति एवं भवसागरमें डुबोनेवाली युवतियोंका स्मरण न करातीं, तो विवेकी पुरुष क्यों आपका ध्यान छोड़ कृपण लोगोंके अपमान सहते ?' यहाँ शब्दश्लेषोपमामूलक स्मृति अलंकार है।

---

१. स्तुति० ३३।५
२. वही, १०।२०

अर्थश्लेष

श्लेष अलंकार उस समय प्रयुक्त होता है जब कविको एकसे अधिक अर्थोंको प्रकट करना अभीष्ट होता है।

साहित्यदर्पणकारके अनुसार जहाँ अभिधा शक्तिद्वारा एकसे अधिक अर्थोंका बोध कराया जाय वहाँ अर्थश्लेषका प्रयोग होता है।[1]

स्तुतिकुसुमांजलिमें अर्थश्लेषालंकारका प्रयोग प्रचुर परिमाणमें पाया जाता है।

इह परशुचितोर्जिताकृतिर्द्विजपतिशेखरतां बिभर्ति यः।
त्रिजगति गिरिशं सतां हितं प्रणमतरामतनुं तमच्युतम्॥[2]

'अये भावुकों! अतीव स्वच्छ आकृतिसे विराजमान होकर भी जो प्रभु मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करता है, उस त्रैलोक्यका उद्धार करनेवाले, अमूर्तिमान्, अविनाशी कैलासवासी प्रभुको सदैव प्रणाम करो।' अथवा 'जो महान् परशुयुक्त होकर भी श्रेष्ठ ब्राह्मणभावको धारण करता है, उस स्तुति करनेवालोंका हित करनेवाले श्रीपरशुराम-मूर्ति-धारी विष्णुको प्रणाम करो।'

इस प्रकार स्तुतिकुसुमांजलिमें उभयविध अलकारोंका प्रभूत एवं सुन्दर प्रयोग किया गया है।

अलंकारयोजनाका प्राणभूत तत्त्व अप्रस्तुत या उपमान है। कवि अपनी कल्पनाके विस्तारकेलिए अप्रस्तुतोंका चयन करता है और इन अप्रस्तुतोंको इस प्रकार व्यवहृत करता है, जिससे प्रस्तुत अर्थमें चमत्कार या औचित्य उत्पन्न होता है। अतएव किसी भी काव्यकृतिके रचयिताकी अलंकार-योजनाके प्राणभूत तत्त्व अप्रस्तुत या उपमान होते हैं। केवल साम्यमूलक अलंकारोंके प्रयोगमें ही अप्रस्तुत या उपमानोंका महत्त्व नहीं है किन्तु वैषम्य-मूलक, शृंखलामूलक और न्यायमूलक अलंकारोंके व्यवहारमें भी अप्रस्तुतोंका महत्त्व कम नहीं है। अप्रस्तुत-योजनाके अभावमें अलंकारोंका संयोजन चमत्कार का सृजन कर ही नहीं सकता है। रसोत्कर्ष और भावोंकी तीव्रता भी अभुक्त

१. श्लिष्टैः पदैरनेकाभिधानार्थे श्लेष उच्यते। सा० दर्पण १०।२२
२. स्तुति० २९।२७

उपमान या नवीन अप्रस्तुत-योजनासे ही सम्भव होती है। जो कवि या लेखक पुराने पिष्टपेषित उपमानोंका व्यवहार करता है, उसकी अलंकार-योजनामें मौलिकता नहीं आ पाती है। अतएव कुशल कवि अपनी अप्रस्तुत-योजनाद्वारा अलंकारोंको एक नया ही रूप प्रदान करता है।

कवि जगद्धरभट्ट उच्च कोटिके कवि हैं। अत: उन्होंने भी उपमान या अप्रस्तुतोंका चयन जीवन एवं जगत्के विभिन्न क्षेत्रोंसे किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत उपमान भावोंकी विविधरूपता तो प्रस्तुत करते ही हैं, साथ ही रस-निष्पत्तिमें भी सहायक हैं। अप्रस्तुतोंद्वारा कविने ऐसे बिम्बोंकी योजना की है जिनसे वस्तु या अलंकार सहज-बोध्य हो जाते हैं।

सप्तम अध्याय

स्तुतिकुसुमांजलिका गीतिकाव्यत्व, भाषासौन्दर्य एवं उसमें समाहित आख्यानोंका काव्यमूल्य

स्तुतिकुसुमांजलि स्तोत्रकाव्य होनेके कारण गीतिकाव्यके अन्तर्गत परिगणित है। स्तोत्रसाहित्यका आध्यात्मिक साहित्यमें वही स्थान है जो जनसाहित्यमें लोकगीतोंका। स्तोता अपनी अनुभूतिको सघन बनाकर अपने हृदयकी भावनाओंको लय एवं माधुर्यके आधारपर अभिव्यक्त करता है। स्तोत्रोंमें विस्तार नहीं, गहराई होती है। जीवनके हास-रुदन, सुख-दुःख, अनुनय-विनय एवं राग-विराग जितनी सफलताके साथ गेय काव्यमें प्रस्तुत किये जा सकते हैं उतनी सफलताके साथ अन्य किसी काव्यविधामें नहीं। किसी भी काव्यको गेय बनानेकेलिए दो बातें आवश्यक होती हैं: स्वरचातुर्य एवं शब्दचातुर्य।

कवि जगद्धरने अपनी स्तुतिकुसुमांजलिमें उक्त दोनों प्रकारके चातुर्यको अभिव्यक्त करनेकेलिए कई स्तोत्रोंमें आदियमक, मध्ययमक, अन्तयमक और महायमकका प्रयोग किया है। जहाँ कुशल शिल्पीके समान कवि प्रत्येक वर्णको लय और माधुर्यपूर्वक प्रस्तुत करता है वहाँ वह अपने भावों और विचारोंको आत्मनिष्ठ भी बनाता है। रागयोजना और तालपद्धतिका प्रयोग कविने प्रायः प्रत्येक स्तोत्रमें किया है। अतः कविको स्वर-संयोग साधनेका कार्य सम्पन्न करनेमें कठिनाई नहीं हुई है। स्वरात्मक, तालात्मक और लयात्मक गुणोंका समवाय करनेका उसका प्रयास नितांत प्रशंसनीय है।

धार्मिक गीतिपरम्परामें कविकी यह कृति विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। प्रांजल एवं मधुर भाषाका कमनीय प्रयोग गीतिकाव्यकी दृष्टिसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। गीतिकाव्यका रचयिता आत्मनिष्ठता और वैयक्तिकताका पूर्ण प्रयोग करता है। अतः धार्मिक या स्तोत्र-गीतिकाव्यमें प्रेमीके मनोगत भावोंका सुन्दर चित्रण भले ही न हुआ हो, पर कल्पनाका पुट और अव्याहृत भावान्विति अवश्य पायी जाती है।[1] हडसनने गीतिकाव्यमें

---

१. लीरिक (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग १४)

अनुभूतिकी सघनता और औचित्य आवश्यक माना है। इसमें भाव और भाषाका सामंजस्य अपेक्षित है। उसके कलेवरकी लघुता घनीभूत भावोंकी सान्द्रताही व्यक्त करती है।[१] अर्नस्ट राइसके मतसे सच्ची गीतिमें भावका भाषाके रूपमें प्रस्फुटन होता है उसमें शब्द और लयका सामंजस्य अभीष्ट भावको पूर्णतया चित्रित कर देता है। पदलालित्य एवं नादमाधुर्यसे प्रभावित संगीतमय ध्वनि उसे अभिव्यक्तिकी पूर्णता प्रदान करती है।[२]

वस्तुत: गीतिकाव्यमें आत्मनिष्ठा और भावान्वितिका रहना उसका आवश्यक गुण है। उसके बिना कोई भी काव्य गीतिकोटिमें नहीं जा सकता।[3]

संस्कृत साहित्यमें भक्तिभावनाके प्रचार और विकासकेलिए धर्मपरक स्तोत्रकाव्य लिखे गये हैं। इन काव्योंका उद्देश्य समाजमें आध्यात्मिकता, विषयभोगोंके प्रति विरक्ति एवं आत्मनिष्ठ भावनाको व्यक्त करना है। यही कारण है कि इनकी गणना गीतिकाव्यमें की जाती है।

स्तुतिकुसुमांजलिमें श्रेष्ठ गीतिकाव्यके समस्त गुण पाये जाते हैं। विद्वानोंका मत है कि स्तोत्रकाव्यमें संगीतके दोनों तत्त्व—नाद-सौंदर्य एवं संगीततत्त्व—उपलब्ध होते हैं।[४] यों तो गीतोंमें जैसी भाव-सघनता और गेयता समाविष्ट रहती है, वैसी स्तोत्रगीतोंमें नहीं मिलती, पर भावोंकी अभिव्यक्ति एक ही केन्द्रमें निहित रहती है। अत: स्तुतिकुसुमांजलिको गीतिकाव्य माननेमें किसी भी प्रकारकी विप्रतिपत्ति नहीं है। कविने भक्तिविह्वलहो श्रद्धाकलित हृदयसे जिन स्तोत्रोंका उच्चारण किया है, उनमें नाद-सौंदर्य एवं संगीततत्त्व पूर्णतया समाहित हैं।

पण्डित ओंकारनाथ ठाकुरने बताया है, "गीतिकी प्राणधाराएँ भावकेन्द्रण एवं संगीत ही हैं। भावघनत्व अनुमेय, ग्राह्य या चर्व्य तभी होता है जब अर्थबोध हो जाता है। लेकिन संगीतमें शब्दके अर्थका बोध

---

१. इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑव लिटरेचर—पृ० १२६-१२७
२. लीरिक (इन० ब्रि० भाग १४)
३. टिपिकल फोर्म्स ऑव इंगलिश लिटरेचर, पृ० ३१९
४. विशेषकेलिए द्रष्टव्य : लीरिक (इन० ब्रि०, भाग १४)

हुए बिना ही भाव या रसकी प्रतीति हो जाती है। यहाँ तक कि शब्द हो या न हो, केवल नादके बलसे ही संगीतमें रसकी निष्पत्ति होती है।"[1]

इसमें सन्देह नहीं कि कवि जगद्धरभट्ट केवल स्तोता एवं कवि ही नहीं हैं अपितु निष्णात संगीतज्ञ भी हैं। वे स्तोत्रोंकी रचना इस प्रकार करते हैं जैसे वे संगीतकेलिए ही प्रस्तुत किये जा रहे हों। धार्मिक गीतोंमें इतनी संगीतात्मकता निहित की जा सकती है, यह कविके स्तोत्रसे स्पष्ट है। काव्य, दर्शन, स्वरमाधुर्य, भक्ति एवं तालपद्धतिका पंचामृत कविके इस स्तोत्रकाव्यमें पाया जाता है।

स्तुतिकुसुमांजलिका गीतिकाव्योंकी निम्नलिखित विशेषताओंके आलोक में मूल्यांकन किया जा सकता है:

संगीतात्मकता, रागात्मक अनुभूतिकी इकाई और समत्व, अन्तर्दर्शन और आत्मनिष्ठता, लयात्मक अनुभूति, जीवनके किसी विशेष पक्षकी अभिव्यंजना एवं समाहित प्रभाव।

संगीतात्मकता

काव्यका आधार शब्द, अर्थ, चेतना और रसात्मकता है। शब्द एक ओर अर्थकी सृष्टि करते हैं तो दूसरी ओर नादके द्वारा श्राव्य मूर्त्तविधान प्रस्तुत करते हैं। शब्दका महत्त्व उनके द्वारा प्रस्तुत मानसिक चित्र एवं ज्ञापित वस्तुके सामंजस्यमें है। जो वस्तु देखी नहीं गयी है, उसका चित्र मानस-चक्षुओंके समक्ष अंकित कर देना ही कल्पनाकी दक्षता है। गीति-काव्यका रचयिता कवि रागयोजना और तालपद्धतिद्वारा संगीतात्मकताका सृजन करता है।

संगीतमें रागयोजना आवश्यक है।[2] 'राग' शब्दकी निष्पत्ति √रज् धातुसे है जिसका अर्थ है प्रसन्न करना। अतः स्वरोंकी वह विशिष्ट रचना राग है जिसमें सुननेवालेके चित्तको प्रसन्न करनेवाले स्वर तथा वर्ण

१. प्रणव भारती पृ० १९, संगीत भारती, हिन्दू विश्वविद्यालय।

२. 'कन्सेप्शन ऑव रागज़ इज़ वन ऑव द बेसिक प्रिंसिपुल्स ऑव द सिस्टम ऑव इण्डियन म्यूजिक'—द रागाज़ एण्ड रागिनीज़ (ओ०सी० गांगुली, पृ० १) 'बेसिक कन्सेप्ट ऑव हिन्दू म्यूजिक इज़ राग (डिक्शनरी ऑव म्युजिक, पृ० ३३२)

दोनों हों।[१] अतएव स्पष्ट है कि अनुकूल राग-विधानद्वारा पद्य अधिक प्रभावशाली एवं प्रेषणीय होते हैं। यों तो स्वरगायन या वादनसे भी रसोत्पत्ति सम्भव है, पर स्वररचनासे रसोत्पत्ति अधिक सुगम और सहज होती है।

सामवेद सात स्वरोंका श्रेण्यसंगीत ही है। यह भी उच्च कोटिका स्तुतिकाव्य है। अतः ज्ञात होता है कि भारतीय काव्य संगीतका साहचर्य लेकर ही अवतरित हुआ है। संगीत प्रारम्भिक अवस्थामें जहाँ मानवीय हर्ष, उल्लास एवं रुदनकी अभिव्यक्ति करता था वहाँ वह शास्त्रीय बनकर अनेक कृत्रिम बन्धनोंकी भी सीमा निर्धारित करता है।

संस्कृतके स्तोत्रकाव्यकी यह विशेषता है कि राग एवं लयका अनुबन्ध स्वीकार करनेपर भी वह मार्मिकताकी स्नेहपिच्छल रसधाराका समाहित प्रभाव मानवीय वृत्तिपर डालता है। स्तुतिकुसुमांजलिमें भक्तिकी प्रेम-पीड़ा, भावोन्माद, मिलनोत्कण्ठा, आत्मसमर्पण एवं आत्मविस्मृति आदिका समन्वय अनुभूतिके ठोस धरातलपर प्रतिष्ठित है।

कवि जगद्धरभट्टने अपने हार्दिक भावोंकी अभिव्यंजना नाद-सौन्दर्यके आधारपर उपस्थित की है। संगीत और काव्यत्वका ऐसा निर्वाह अन्यत्र सम्भव नहीं है। लय और माधुर्यद्वारा कविने संगीतका तादात्म्य प्रस्तुत किया है। राग, ताल लय और स्वरमैत्रीका विधान सर्वत्र पाया जाता है।

भावविभोर होकर भगवद्वर्णन करते हुए कविका स्वरमाधुर्य संगीत और मार्मिकताकी दृष्टिसे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

आस्तां परं यदपरं तदपि त्वदीय
दिव्यं वपुर्नहि महेश विमर्शयोग्यम्।
यत्किंचिदेव तु विकल्पविकल्प्यमान-
मानन्दधाम तदपीह भवार्तिभाजाम्॥[२]

---

१. 'लिटरली राग इज़ समथिंग दैट कलर्स ऑर टिंजेज़ द माइण्ड विथ सम डेफिनिट फीलिंग्स, ए वेव ऑव पैशन एण्ड इमोशन' (द रागाज़ एण्ड रागिनीज — ओ०सी० गांगुली — इण्ट्रोडक्शन पृष्ठ १)

२. स्तुति० १९।२

'हे भगवन् ! आपके उस लोकोत्तर मनोवचनातीत निर्विशेष स्वरूपकी महिमा तो कौन कहे ? जो आपका दिव्य सगुण स्वरूप है, उसकी ही महिमा बड़े-बड़े दिव्य दृष्टिवाले भी नहीं जान सकते, हमारे सरीखे चर्म-चक्षुओंका तो कहना ही क्या है ? परन्तु हाँ, लोगोंने अपनी बुद्धिके अनुसार आपका जटामुकुट-त्रिनयनमण्डित एवं चन्द्रकलासे विभूषित इत्यादि-इत्यादि जैसा रूप वर्णित किया है, उससे ही सांसारिक पापतापोंसे संतप्त प्राणियोंको परम आनन्द प्राप्त हो जाता है।'

नाद-सौन्दर्यकी दृष्टिसे कविके निम्नलिखित पद्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इनमें स्वर-माधुर्यके साथ लय और तालात्मकता भी विद्यमान है :

कल्पान्तकल्पान्तकभीतियुक्तं रक्षामि रक्षामिह योऽर्हतीति ।
यस्ते नयस्तेन दिश प्रसन्नामत्राऽसमत्रासहरां दृशं मे ॥[1]

"हे ईश्वर ! 'इस संसारमें जो अनाथ प्राणी है उसकी मैं कल्पान्त-तुल्य यमभीतिसे हर प्रकार रक्षा करता हूँ", इस प्रकारकी जो आपकी नीति है, उसके अनुसार मुझ अनाथपर अपनी महात्रासहारिणी प्रसन्न दृष्टि समर्पित कीजिए।"

रामाभिरामाभिमता धृतार्धं भोगोपभोगोपगतेन केन ।
कस्यान्तकस्यान्तकरी च लक्ष्मीधामानि धामानि बिभर्ति दृष्टिः ॥[2]

'हे प्रभो ! समस्त भोगोंसे परिपूर्ण आपके सिवा और किस देवने त्रैलोक्यसुन्दरी रामा (श्रीगिरिजा) को अपने अर्द्धांगमें धारण किया है और अन्तकका अन्त करनेवाली किसकी दृष्टि परम शोभाके धाम तेजोमय धामों (सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि) को अपने अन्दर धारण करती है ?'

कविद्वारा की गयी यमक और अनुप्रासकी योजना भी नादसौन्दर्यकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। शब्दसाधनापर कविका अपूर्व अधिकार है। वह अघोष और सघोष ध्वनियोंके संयोजनद्वारा नाद-सौन्दर्यका सृजन तो करता ही है, साथ ही शब्दोंकी रागात्मक शक्तियोंका प्रभाव भी प्रस्तुत कर देता है :

---

१. स्तुति० २६।२७
२. वही, २६।३०

शुभवता भवता भवतारिणा शकलिताऽकलिता कलितापभूः।
हर कृतान्त-कृतान्त-कृतान्त नो किममता ममता मम तादृशी ॥[१]

'अयि कृतान्त (यमराज) के सिद्धान्त (हठात् प्राणियोंके संहाररूप निश्चय) को विनष्ट कर देनेवाले सदाशिव ! आप शरणमें आये हुए लोगोंको प्रशस्त कल्याण प्रदान करते हैं और संसार-सागरसे पार उतारते हैं। तब आप दयालुने कलिकालके तापको उत्पन्न करनेवाली मेरी इस प्रसिद्ध दुष्ट ममताको (अबतक) क्यों नहीं खण्डित किया ?'

सदय मोदय मोदयमोक्षदं कृशमदः शमदः शमदः कुरु।
न हि तता हितताऽऽहिततायनैः कृतनुते तनु ते तनुतेँ शुभम् ॥[२]

'हे दयावान् ! मुझे अपने कृपा-कटाक्षसे आनन्दित कीजिए। प्रभो ! अखिल ब्रह्माण्डाधीश्वर होनेपर भी निरहंकार और परम शान्तिके दाता आप भोग और मोक्षको देनेवाला कल्याण कीजिए। हे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहारादि करनेवाले ब्रह्मादि देवोंसे वन्दित देव ! आपकी वह विशाल उदारता शरणागतोंको स्वल्प कल्याण (मामूली सौख्य) नहीं देती किन्तु अपार सुख-सम्पत्ति प्रदान करती है।' इन श्लोकोंमें कविने ध्वनियोंके विशिष्ट संयोजनद्वारा आकर्षक नादसौन्दर्यकी सृष्टि की है।

रागात्मक अनुभूतिकी इकाई और समत्व

स्तोत्रकाव्यका रचयिता कवि अपनी अन्तरात्मामें प्रवेश कर वाह्य जगत्को अपने अन्तःकरणमें ले जाकर उसे अपने भावोंसे रंजित करता है। यही रंजनकी प्रवृत्ति रागात्मक अनुभूतिकी इकाई कहलाती है। कवि स्वाभाविक गतिमय स्वरलहरीमें आत्मानुभूतिको उपस्थितकर रागात्मक सान्द्रताका समावेश करता है। गेयत्व और सघन आत्मानुभूतिका सामंजस्य स्तुतिकुसुमांजलिकी अपनी एक विशेषता है। कवि रवीन्द्रनाथ टैगोरने बताया है, 'यह वाह्य जगत् जब हमारे चेतन जगत्में प्रविष्ट होता है तो एकदम कुछ और ही हो जाता है। यद्यपि इसके रूप, रंग एवं ध्वनि आदि सभी ज्यों के त्यों रहते हैं, तो भी वे हमारे संवेदन, भय, विस्मय,

---

१. स्तुति० ३०।२९
२. वही, ३०।२३

हर्ष तथा विषाद आदिसे रंजित हो जाते हैं और इस प्रकार यह जगत् हमारे भावोंके अनेक गुणोंसे अनुप्राणित होकर हमारा अपना बन जाता है।'

अतएव यह मानना तर्कसंगत है कि बाह्य जगत्के साथ तदाकार परिणति कविकी अनुभूतिका अवलम्ब है। कवि जब अपनी अनुभूतिको एकनिष्ठ बना लेता है और उसकी आन्तरिक भावनाएँ अत्यन्त सान्द्र हो जाती हैं तब उसमें उत्तम गीतिकाव्यके तत्त्व स्वयमेव प्रस्फुटित हो जाते हैं। जब भाव उद्दीप्त होकर अनुभूति और रागका साहचर्य प्राप्त कर लेते हैं, तब संगीतके अनन्य धर्म—स्वर और ध्वनियोंका माधुर्य—भी अभिव्यक्त हो जाते हैं। यहाँ हम कविकी रागात्मक अनुभूतिका वैशिष्ट्य प्रदर्शित करनेकेलिए दो एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं :

धन्योऽस्मि सम्यगमृतं किमपि स्रवन्ती
संजीवनं भगवती विदधाति यस्य।
स्नेहस्नुतस्तनयुगा जननीव जीव-
रक्षार्थमार्तिविधुरस्य ममोक्ति देवी ॥[१]

'जैसे पुत्रवत्सला जननी अपने बालककी प्राण-रक्षाकेलिए स्नेहवश स्तन-युगलसे दिव्य अमृतको टपकाती है वैसेही किसी विलक्षण एवं अलौकिक अमृतको स्रवित करती हुई भगवती वाणी जिस मुझ आर्ति-पीड़ित शिशुका आप्यायन कर रही है, वह मैं अतीव धन्य हूँ !'

धन्योऽस्मि दुःसहविपत्पतितस्य यस्य
वाणी धृतोन्नतिरपुण्यकृतामभूमिः।
कल्याणिनी सुमनसामुपसेवनीया
सौमेरवीव पदवी न दवीयसीयम् ॥[२]

'अतिदुःसह विपत्तिमें पड़े पुरुषकी परम उन्नतिकारणी, पापियों-केलिए अतिदुर्गम और देवताओंद्वारा सेवन करने योग्य, सुमेरुपर्वतकी सुवर्णमयी पदवीके समान शब्द और अर्थकी उन्नतिको धारण करनेवाली, पापियोंकेलिए दुष्प्राप्य, सुमनसोंके सेवन करने योग्य और समस्त

---

१. स्तुति० ११।१
२. वही, ११।२

मंगलमयी वाणी, जन्म-मरणरूपी दुःसह विपत्तिसे ग्रस्त जिसके अतिदूर नहीं है, अर्थात् मुँहमें ही स्थित है, वह मैं धन्य हूँ।'

धन्योऽस्मि मोहतिमिरान्धदृशोऽपि यस्य
सानुग्रहेण विधिना परिकल्पिता मे।
वल्गुस्वना गुणवती धृतवक्रभंगि-
राराधनाय गिरिशस्य सरस्वतीयम् ॥[1]

'जैसे नेत्र-रोगसे अन्धपुरुषको सौभाग्यवश शंकरकी आराधना करनेकेलिए मधुर स्वरोंवाली, सुन्दर तारों और कुटिल आकारवाली सरस्वतीकी वीणा प्राप्त हो जाती है, वैसे ही मोहरूपी अन्धकारसे अन्ध जिस मुझको सद्भाग्यवश विधाताने अनुग्रहपूर्वक भगवान् सदाशिवकी आराधनाकेलिए यह सुमधुर शब्दोंवाली, माधुर्यादि गुणोंवाली एवं उपचार और वक्रोक्तिसे युक्त सरस्वती प्रदान की है, वह मैं धन्य हूँ।'

कवि जगद्धरभट्टने अन्तर्दर्शनद्वारा अपनी अनुभूतिको अत्यन्त रागमय बनाया है। समस्त स्तुतिकुसुमांजलिमें आत्मभावनाकी अभिव्यंजना इतनी प्रबल है कि अधिकरणनिष्ठता सर्वाधिक रूपमें अभिव्यक्त हुई है। कल्पनाशील भावुक कवि केवल बाह्य वस्तुओंसे ही प्रभावित नहीं होता, किन्तु आन्तरिक कारणोंसे क्षुब्ध एवं प्रताडित रहता है। कविने चर्म-चक्षुओंके स्थानपर मानसचक्षुओंसे वस्तुओंका दर्शन किया है। उसने अपनी भावनाको विश्वजनीन बनानेकेलिए वैयक्तिक भावना और चेतनाका आदर्श प्रस्तुत किया है। आत्मचेतनाकी जागृति इस काव्यका प्राण है और लयपूर्ण भाषामें आत्मानुभूतिकी अभिव्यक्ति उसका उद्देश्य है। भक्तकवि भगवान्की झाँकी प्राप्त करनेकेलिए रागात्मक अनुभूतिका सर्वाधिक प्रयोग करता है :

कुर्वन्ति भक्तिमपरैरपि ये नियुक्ता
भर्गस्य तेऽपि भवदुर्गतिमुत्सृजन्ति।
स्तन्यार्थमप्युपहिता पृथुकस्य धात्री
पात्रीभवत्यखिलभोगसुखासिकानाम् ॥[2]

---

१. स्तुति० ११।३
२. वही, ८।४७

'अन्य लोगोंद्वारा नियुक्त होकर भी जो लोग भगवान् भर्गकी भक्ति किया करते हैं वे भी इस भवदुर्गतिसे पार हो जाते हैं। केवल शिशुको स्तन्य-पान करानेके ही निमित्त नियुक्त की हुई धात्री भी समस्त भोग और सुखशय्यादिकी पात्र बन जाती है। अर्थात् उस धात्री को माताकी तरह समस्त भोग्य-पदार्थ प्राप्त होने लगते हैं।'

नानुग्रहस्तव विना त्वयि भक्तियोगं
नानुग्रहं तव विना त्वयि भक्तियोगः।
बीजप्ररोहवदसावनयोर्न कस्य
भूत्यै परस्परनिमित्तनिमित्तिभावः॥[1]

'भगवन्! आपमें भक्तियोग हुए विना आपका अनुग्रह नहीं होता और आपके अनुग्रहके बिना आपमें भक्तियोग नहीं होता। प्रभो! आपके अनुग्रह और भक्तियोगका यह बीजांकुरके समान परस्पर कार्यकारण-भाव किसका कल्याण नहीं करता? अर्थात् सभीका कल्याण करता है।

अन्तर्दर्शन और आत्मनिष्ठता

भक्तकवि अपनी स्तोत्ररचनामें आत्मनिष्ठताका प्रयोग सर्वाधिक रूपमें करता है। वह वैयक्तिक सुख-दुःख, राग-द्वेष एवं हर्ष-शोकको व्यक्त करनेका सफल प्रयास करता है। आत्मभावनाकी अभिव्यंजना इतनी प्रबल रहती है कि कल्पनाशील भावुक कवि वाह्य कारणोंको छोड़ आन्तरिक कारणोंसे ही प्रभावित होता है। वह अपने अन्तरतमसे प्रेरणा प्राप्तकर वाह्य संसारसे अनासक्त रहता है। चर्मचक्षुओंके स्थानपर उसके मानसचक्षु अधिक उद्बुद्ध होते हैं। वह अपनी भावनाओंको विश्वजनीन बनानेकेलिए वैयक्तिक भाव एवं चेतनाको आदर्श एवं भावात्मकरूप प्रदान करता है। स्तुतिकुसुमांजलिमेंभी आत्मचेतनाकी जागृति कविके स्तोत्रका प्राण है। यहाँ लयपूर्ण भाषामें आत्मानुभूतिकी अभिव्यक्ति सर्वाधिक रूपमें सम्पन्न हुई है। कविकी आत्मानुभूतिकी निष्ठा निम्नांकित श्लोकोंमें पूर्णतः व्यक्त होती है :

न मेऽभिभूतस्य पिता न माता न वा सनाभिर्धनवासनाभिः।
अरिस्तु रुन्धे सुहृदा वियुक्तं समाधिना मानसमाधिनामा॥[2]

---

१. स्तुति० ९।३३
२. वही, ३०।६

'हे प्रभो ¡ धनकी वासनाके वशीभूत हुए मेरे मनको पिता, माता अथवा बान्धव कोई भी नहीं समझा सकते क्योंकि किन्तु समाधि- रूपी बान्धवसे बिछुड़े हुए इसको दुष्ट आधि नामक शत्रुने घेर रखा है।'

दर्पकान्तक विराजमानयाऽदर्पकान्त-कविराजमानया।
त्वत्प्रसादविधिलब्धया धिया साधवो दधति वैबुधीं धुरम् ॥[१]

'हे काम-शत्रो ! साधुलोग आपके प्रसादसे प्राप्त हुई, परम सुन्दर, अनहंकारी महाकवियोंकी माननीय बुद्धिकेद्वारा प्रकाण्ड विद्वत्ता अथवा देव-भावको धारण करते हैं।'

महतामतामसमहावपुषं तव भक्तिमर्थितवतां भगवन्।
महतामतामसमहावपुषं प्रथयन्ति कीर्तिमिह सिद्धगणाः ॥[२]

अर्थात् 'हे भगवन् ! इस संसारमें जो पुण्यात्मा पुरुष अहर्निश महान् उत्सवोंको उत्पन्न करनेवाली और असाधारण हाव-भावोंकी वृद्धि करनेवाली तथा अतीव सुपवित्र स्वरूपवती आपकी भक्तिका आश्रय लेते हैं, उन महात्माओंकी कीर्तिको सिद्ध-गण समस्त भुवनमें विख्यात करते हैं।'

कवि भावविभोर होकर अपनी स्तुतिकुसुमांजलिको शिवकी प्रसन्नताका उत्कृष्ट साधन मानता है। वह कहता है कि यद्यपि मैं प्रभुके समक्ष अपनी स्तुतियोंको सुनानेमें अयोग्य हूँ तो भी मैं अपने अटूट विश्वास और आत्मनिष्ठाके कारण प्रभुचरणोंमें निवेदन करता हूँ:

अहो कृतार्थोऽस्मि मनोभिरामया गिरा गुणालंकृतयेह रामया।
तनुः स्थिरेयं ध्रियते निरामया भवे च यद्भक्तिरभगुरा मया ॥[३]

'अहा ! जैसे कोई पुरुष लज्जा, सौशील्य एवं लावण्यादि सद्गुणोंसे अलंकृता सती अंगनाको पाकर कृतार्थ हो जाता है, वैसे ही मैं भी ओज, प्रसाद और माधुर्यादि गुणोंसे अलकृत इस सुमनोहर वाणीसे कृतार्थ हो गया हूँ, जिसके प्रतापसे मुझे यह नीरोग और स्थिर शरीर एवं परमेश्वरमें अचल भक्ति प्राप्त हुई है।'

---

१. स्तुति० ३०।७
२. वही, ३०।१०
३. वही, ३८।६

पुरः स्फुरन्तं विमृशन्महेश्वरं विलीनवेद्यान्तरवेदनो दशाम् ।
नवस्तवोल्लेखविधौ स्पृशामि यां ममान्तरात्मा विभुरेव वेत्ति ताम् ॥[1]

'अन्य किसी भी वस्तुका भान न होनेके कारण तन्मय भावना-द्वारा अपने सामने स्फुरित होते हुए श्रीभगवान् शिवमें ही तल्लीन होता हुआ मैं, इन नूतन स्तोत्रोंको लिखते समय जिस अनिर्वचनीय दशाको प्राप्त होता हूँ, उसे मेरी अन्तरात्मामें स्थित केवल प्रभु ही जानते हैं ।'

अतः स्पष्ट है कि गीतिकव्यकी दृष्टिसे स्तुतिकुसुमांजलिमें आत्मनिष्ठता और वैयक्तिकता पूर्णरूपसे पायी जाती है ।

लयात्मक अनुभूति

लय किसी भी गीतिकाव्यका एक आवश्यक गुण है । राग-रागिनियोंके न रहनेपर भी लयद्वारा संगीतमाधुर्य उत्पन्न होता है । जहाँ कवि सुन्दर छन्दोंकी योजना करता है, वहाँ लयका समावेश हो जाना कठिन नहीं है । हम यहाँ स्तुतिकुसुमांजलिमें निहित समस्त रागोंकी अभिव्यंजना तो नहीं करेंगे, पर कविकी उस लयात्मक अनुभूतिका विश्लेषण अवश्य प्रस्तुत करेंगे जिस अनुभूतिके कारण उसका यह काव्य श्रेष्ठ गीतिकाव्य बन सका है ।

राग और कविताके भावमें घनिष्ठ सम्बन्ध है । किस रसमें किस रागका प्रयोग होना चाहिये, इसका विवेचन संगीत-शास्त्रमें विस्तारपूर्वक हुआ है । कवि जगद्धरभट्टने वर्णोंकी योजनामें अपूर्व सफलता प्राप्त की है । यही कारण है कि लयकी स्थिति स्वयमेव उत्पन्न हो गयी है । कवि जगद्धरभट्टने वर्णोंकी निश्चित संख्या एवं लघु तथा गुरुका क्रम नियत कर लयका समुचित संयोजन किया है ।

छन्दका सम्बन्ध तालसे है और संगीतका ताल और स्वर दोनोंसे । संगीतमें स्वर तत्त्व मुख्य है जिसके कारण राग-रागिनियोंका वैविध्य मिलता है, पर जहाँ नादसौन्दर्यके आधारपर छन्दोयोजना प्रस्तुत की जाती है वहाँ लय और ताल ये दोनों तत्त्व मुखरित हो जाते हैं । निर्जीव शब्द भी कितने कोमल, सजल और कलरवसे युक्त हो जाते हैं, यह देखते ही बनता है । छन्दोबद्ध शब्द चुम्बकके पार्श्ववर्ती लौहचूर्णकी तरह अपने चारों ओर एक

---

१. स्तुति० ३८।८

आकर्षण क्षेत्र तैयार कर लेते हैं। उनमें एक प्रकारका सामंजस्य, एक रूप और एक विन्यास आ जाता है जिससे रागकी विद्युत्-धारा प्रवाहित होने लगती है। कवि जगद्धरभट्टकी स्तुतिकुसुमांजलिमें उक्त गुण पूर्णतया समाहित है:

अशुचि शुचामायतनं मलकलिलमिदं कलेवरं सत्यम्।
भगवदुपासनसाधनमिति भवति न कस्य कमनीयम्॥
मम सारः संसारः सकलमिदं मर्त्यजन्म मम सफलम्।
मम सदृशोऽस्ति न कश्चन यदहं स्तोता शिवस्य संवृत्तः॥
प्रणमामि प्रणमामि स्तौमि स्तौमि प्रभुं जगन्नाथम्।
ध्यायामि ध्यायामि च यामि च विमलं परं धाम॥[1]

उपर्युक्त पद्योंमें पदोंकी पुनरावृत्तियाँ लयमाधुर्य उत्पन्न करनेकेलिए की गयी हैं। जिस प्रकार किसी स्थानपर थोड़ी देर तक विश्राम करनेके उपरान्त कोई पर्यटक बड़े वेगसे आगेकी ओर प्रस्थान करता है, उसी प्रकार पदोंकी पुनरावृत्तियाँ प्रवाहको तीव्र बनाती हैं; साथ ही लयमाधुर्य भी उत्पन्न करती हैं।

जीवनके किसी विशेष पक्षकी अभिव्यंजना

गीतिकाव्य-रचयिता जीवनके किसी विशेष पक्षको ही ग्रहण करता है। जो कवि भक्ति-प्रधान स्तोत्रोंकी रचना करता है वह अपने दैन्य और करुणाभावकी सर्वाधिक अभिव्यंजना करता है। मेघ, पावस एवं पर्वत आदि उसका भाव-साहचर्य सम्पन्न करते हैं और वह किसी विशेष भाव—चाहे वह प्रणय हो या भक्ति हो, अथवा प्रशस्तिमूलक हो—की अभिव्यंजना करता है। स्तुतिकुसुमांजलिमें कवि जगद्धरभट्टने अपने आराध्य सदाशिवकी अनेक प्रकारसे स्तुति की है। वह भावविभोर होकर आत्मनिवेदन करता है कि हे भगवन्! मेरी विपत्तिके विनाशक आप ही हैं। कवि अपनेको दीनताका भाण्डार और आराध्यको सर्वशक्तिसम्पन्न मानकर अपनी हार्दिक पीड़ा और मनोव्यथाको चित्रित करता है:

---

१. स्तुति० ३७।१६,१९,२०

स्वामिन्निसर्गमलिनः कुटिलश्चलोऽह-
मेतादृगेव च रिपुर्मम मृत्युपाशः ।
भ्रूपल्लवस्तव तथाविध एव तस्य
शान्त्यै विषे हि विषमे विषमेव पथ्यम् ॥[1]

'नाथ ! मैं स्वभावसे ही मलिन अन्तःकरणवाला अत्यन्त कुटिल एवं चंचल प्रकृति हूं और मेरे शत्रु उस कालका नागपाश भी ऐसा ही अर्थात् स्वभावतः मलिन, कुटिल और चंचल है। मेरे उस शत्रुकी शान्तिके लिए ठीक वैसा ही अर्थात् स्वभावतः मलिन-रोएं वाला, धनुषके आकारके समान कुटिल और चंचल आपका भ्रुकुटिपल्लव ही समर्थ हो सकता हैं। कारण अत्यन्त उग्र विषमें विष ही पथ्यकारक होता है।'

किं कार्यमेभिरनिशं पुनरुक्तशुक्तै-
रुद्वेगकारिभिरलब्धफलैः प्रलापैः ।
एवं विदन्नपि मुहुर्मुखरं विरौमि
पश्यामि न त्वदितरं हि परं शरण्यम् ॥[2]

'हे प्रभो ! गद्गद होकर बार-बार कहे हुए बासी ओदनके तुल्य और मनमें उद्वेग उत्पन्न करनेवाले इन निरर्थक प्रलापोंसे क्या लाभ अर्थात् कुछ भी नहीं। ऐसा जानता हुआ भी मैं बारम्बार यह घोर विलाप कर रहा हूं, क्योंकि मुझे आपके सिवाय अन्य कोई रक्षक दिखलाई नहीं देता।'

त्वं चेत्प्रसादसुमुखः प्रणयोक्तिभिः किं
त्वं चेतनादरपरः प्रणयोक्तिभिः किम् ।
भाग्योदये सति वृथैव गुणेषु यत्न-
स्तस्मिन्नसत्यपि वृथैव गुणेषु यत्नः ॥[3]

'हे नाथ ! यदि आप अनुग्रह कर स्वयं ही अनुकूल हों तो फिर प्रिय-वचनों या स्तुतियोंकी क्या आवश्यकता है ? और यदि आप विमुख हों तो भी प्रणयोक्तियोंसे क्या लाभ ? मनुष्यका भाग्य उदित होनेपर फिर विद्वता आदि गुणोंमें यत्न करना वृथा ही है और यदि भाग्योदय न हो तो भी गुणोकेलिए प्रयत्न करना वृथा ही है।'

---

१. स्तुति० ११।१०७
२. वही, ११।१०८
३. वही, ११।१०९

आर्तिः श्रुतैव कृपणात्करुणां तवान्त-
रुत्पादयत्यनिशमग्निशिखां शमीव।
जातैव निर्दहति तामियमित्यमुत्र
किं ब्रूमहे महदनंकुशमीश्वरस्य ॥[1]

'हे प्रभो ! जैसे शमीवृक्षकी शाखा अपने अन्दरसे ही सदैव अग्नि-ज्वालाको उत्पन्न करती है और वह अग्नि उत्पन्न होते ही उस शाखाको ही भस्म कर डालती है, ठीक वैसे ही दीन जनोंकी विपत्ति केवल सुनने मात्र से ही आपके हृदयमें सदैव करुणा उत्पन्न करती है और वह करुणा उत्पन्न होते ही उन दीनजनोंकी विपत्तिको भस्म कर देती है। इसलिए इस विषयमें आप सर्वशक्ति-सम्पन्न सर्वस्वतंत्र परमेश्वरकी इस अनिवार्य ऐश्वर्यशक्तिको हम क्या कहें ?'

समाहित प्रभाव

गीतिकाव्यका अन्तिम उत्कर्ष तत्त्व, भाव और अभिव्यंजनाके समन्वय में अनुभूतिकी अन्विति है। इसके विना न तो संवेदनशीलता रहती है और न तो उत्तेजना ही प्राप्त होती है। जीवनमें ऐसे कम ही अवसर आते हैं, जब मानवकी वृत्ति अन्तर्मुखी होती है। मानसिक प्रतिक्रियाएँ सामाजिक आधार रखकर गतिशीलता ग्रहण करती हैं। सहसा दीप्त हो उठने वाले क्षणोंमें संवेदनशीलता गतिमती नहीं हो सकती। जिसप्रकार रेखाचित्रमें एक रेखाके अभावमें चित्र अपूर्ण रह जाता है और एक रेखाके अधिक होने से चित्र विकृत हो जाता है, उसी प्रकार अनुभूतिकी अभिव्यंजना में भी न्यूनता या अधिकता होनेपर विकृति आ जाती है। अतः अभिव्यंजना में अत्यन्त सावधानी रखनी पड़ती है।

कवि जगद्धरभट्टके स्तोत्रोंमें अनुभूतिके संकेतोंका संतुलन है। अतः रूपहीनता और विरूपताके चित्रोंका प्रायः अभाव है : कोमलकान्तपदावली में कमनीय अनुभूतियोंकी मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। कविकी आत्मनिवेदन की भावना तीव्र और गम्भीर है। प्रभुभक्तिका जलप्रवाह सारी चेतनाओं को धो देता है, ज्ञानका बांध टूट जाता है और प्रवल वेगमें जीवन प्रवाहित

---

१. स्तुति० ११।१११

होने लगता है तथा अपने आराध्यके निकट पहुँच कर शान्तिलाभ करता है। कवि आत्मनिवेदन करता हुआ कहता है :

अज्ञोऽसि किं किमबलोऽसि किमाकुलोऽसि
व्यग्रोऽसि किं किमघृणोऽसि किमक्षमोऽसि।
निद्रालस: किमसि किं मदघूर्णितोऽसि
क्रन्दन्तमन्तकभयार्तमुपेक्षसे यत् ॥[1]

'हे प्रभो! क्या आप परपीड़ासे अनभिज्ञ हो? या निर्बल हो? अथवा व्याकुल हो? या किसी महान् कार्यमें व्यग्र हो? अथवा अत्यन्त ही निर्दय हो? किंवा सामर्थ्यहीन हो? या निद्रासे अलसाये तो नहीं हो? अथवा मदमे घूर्णित तो नहीं हो? जो इस प्रकार करुण क्रन्दन करते और यमराजके भयसे आर्त मेरी उपेक्षा कर रहे हो?'

कविके इस स्तुतिकाव्यमें अनुभूतिकी तीव्रता, लयात्मक संवेदनशीलता और समाहितभावनाका पूर्ण सन्निवेश है। कविने अपने इस स्तोत्रकाव्यमें भगवद्भक्तिका सांगोपांग सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है। भक्ति और प्रार्थना ऐसे धर्म हैं जिनके कारण व्यक्ति अपना जीवन कृतार्थ कर लेता है। विना भगवद्भक्तिके जीवन एक कौड़ीका भी नहीं है। तप, ज्ञान, भक्ति एवं पूजा आदिमें जिसका चित्त रमण करता है, वही व्यक्ति अपना उद्धार कर सकता है। कवि जगद्धरभट्टकी अनुभूति जितनी तीव्र है, उतनी ही उसकी अभिव्यंजनाशक्ति भी। तालबद्ध पद्यों और कोमलकान्त पदावलीके आश्रयने कविको अपूर्व सफलता प्रदान की है। शृंगार और जीवनभोगोंके उन्मुक्त चित्रणके अभावमें भी यह भक्तिकाव्य इतना सरस बन सका है यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है। कविने अपने हृदयको उड़ेलनेका पूर्ण प्रयास करनेके क्रममें अपनी आत्मनिष्ठाका स्वरूप प्रस्तुत किया है। कवि अपने आराध्यकी प्रशंसा करता हुआ कहता है कि हे प्रभो! जब विष्णु आपकी स्तुति करते हुए समग्रताको प्राप्त नहीं हुए तो अत्यल्प शक्तिधारी मेरी बात ही क्या है? आपकी कृपादृष्टि होनेपर संसारके समस्त वैभव चरणोंके भक्त बन जाते हैं। हे प्रभो! मैं अनाथ, कुमार्गगामी, अहंकारके वशीभूत एवं कामक्रोधादि शत्रुओंसे वेष्टित हूँ। इस प्रकारकी स्थितिमें मुझे आपकी भक्ति किस

---

१. स्तुति० ११।१०३

प्रकार प्राप्त होगी ? कविका आत्मनिवेदन कितना अनुभूतिपूर्ण है, इसे सहृदय पाठक ही अवगत कर सकते हैं :

न हरिणा हरिणांकशिखामणे
न विधिना विधिनाऽपि सपर्यता ।
तव पुरा वपुराममृशे वयं
क्व नु भवानुभवावृतचेतसः ॥[1]

'हे चन्द्रशेखर ! भगवान् विष्णुने भी आपके शरीरका अन्त नहीं पाया और शास्त्रोक्त-विधिपूर्वक आपकी सेवामें तत्पर हुए श्रीब्रह्मदेवने भी आपका पार नहीं पाया। तब फिर जन्म-परम्पराओंके अनुभवसे आवृत अन्तःकरणवाले अर्थात् मायाके आवरणमें पड़े हम लोग आपकी स्तुतिके लिए कैसे साहस कर सकते हैं ?'

चतुरगास्तुरगा नगजाः गजाः
स्थिरमुदारमुदात्तबलं बलम् ।
प्रभवता भवता विहिते हिते
प्रतिदिशन्ति दिशं कमलामलाम् ॥[2]

'हे प्रभो ! आपकी कृपादृष्टि होनेपर ही अति शीघ्र चलनेवाले घोड़े, श्रेष्ठ हाथी और महादृढ़ बलवाली सेना, ये सभी वस्तुएँ मनुष्योंको सुदुर्लभ सम्पत्तियाँ प्रदान करती हैं ।'

भृशमनीशमनीतिपथस्थितं मदवशादवशाक्षमुपप्लुतम् ।
अहरहर्हर हर्षयते न किं हितवती तव तीव्रशुचं रुचिः ॥[3]

'हे हर ! अत्यन्त अनाथ, कुमार्गपर चलनेवाले, अहंकारके कारण अजितेन्द्रिय एवं कामक्रोधादि वैरियोंसे घिरे हुए मुझ अत्यन्त शोकाकुलको आपकी हितवती रुचि अहर्निश क्यों नहीं हर्षित करती ?'

स्तुतिकुसुमांजलिकी भाषा-शैली

स्तुतिकुसुमांजलिमें कविने वैदर्भी शैलीका प्रयोग किया है। वैदर्भी शैली प्रशस्त और गुणमण्डित मानी जाती है। यों तो कतिपय पद्योंमें गौड़ी-

१. स्तुति० २७।६
२. वही, २७।७
३. वही, २७।१०

शैलीके भी दर्शन होते हैं पर कविने वैदर्भी शैलीका ही प्रयोग विशेष रूपसे किया है। कोमलता और माधुर्यके चित्रणमें कविको अत्यधिक सफलता प्राप्त है। यद्यपि कविका वर्ण्यविषय आराध्यका स्वरूप ही है, तो भी उसने उस स्वरूपके चित्रणमें कई शैलियोंको अपनाया है। हम कविकी भाषाशैलीको निम्नलिखित चार वर्गोंमें विभक्त कर सकते हैं :

वर्णनात्मक शैली, चित्रणात्मक शैली, विवेचनात्मक शैली एवं भावात्मक शैली।

वर्णनात्मक शैली

विभिन्न पदार्थों एवं स्थूल दृश्योंके वर्णनमें इस शैलीका प्रयोग किया जाता है। जब कवि अपना चिट्ठा खोलकर बैठ जाता है तो वह एक-एक बातका वर्णन ब्योरेवार प्रस्तुत करता चला जाता है। हम यहाँ कविकी उक्त शैलीका उदाहरण प्रस्तुत करते हैं :

मनुष्यता पूरुषताऽग्रयवर्णता मनीषिता सत्कविता शिवैकता।
इयं मम क्षेमपरम्परा विभोः स्तुतिप्रसंगेन गता कृतार्थताम्॥[१]

'अहा! एक तो मनुष्यता और फिर उसमें भी पुरुष-शरीर, उसमें भी ब्राह्मण जाति, उसम भी विद्वत्ता और फिर उसमें भी सत्कविता, उस पर फिर यह 'शिवैकता', इस प्रकार मेरे उत्तरोतर कल्याणोंकी यह परम्परा प्रभुकी स्तुतिके द्वारा कृतार्थ हो गयी है।'

यह शैली वर्णनात्मक होती हुई भी भावात्मक है। इसमें वैदर्भी रीतिमें समाहित समस्त गुण पाये जाते हैं।

चित्रणात्मक शैली

चित्रणात्मक शैली किसी विशेष चित्रको प्रस्तुत करनेके लिए आती है। वर्णनात्मक शैलीमें जहाँ ब्योरेवार चित्रण प्रस्तुत किया जाता है वहाँ चित्रणात्मकमें केवल एक दृश्य ही अकित कर दिया जाता है। दूसरे शब्दोंमें यह शैली चित्रस्वरूपा है। जैसे कोई चित्रकार किसी दृश्यविशेष या वस्तु-विशेषका एक ही झटकेमें चित्र प्रस्तुत कर दता है, उसी प्रकार कवि भी किसी भावविशेषका एक चित्र अंकित कर देता है। यह शैली भी वैदर्भी

१. स्तुति० ३८।९

शैलीका ही एक अंग है। कवि जगद्धरभट्टकी प्रस्तुत रचनामें आत्मनिवेदनके सन्दर्भोंमें इस शैलीका प्रयोग पाया जाता है। जब किसी भाव या अन्तर्वृत्तिका उद्घाटन अपेक्षित होता है तो कवि उस भावका मूर्तरूप प्रस्तुत करनेकेलिए इस प्रकारकी शैलीका प्रयोग करता है। कवि भक्तोंकी उपलब्धिका एक चित्र खीचता है और इस चित्रके वातावरणको रंगीन बनाता हुआ कहता है :

कृत्वा शय्यामुपान्ते विरचितकलिकादामशेषामशेषां
संपत्ति मानयन्तः कुसुमबलगलद्बालतानां लतानाम्।
सेव्यन्ते हन्त वृन्दैरविरतरतयः सुन्दरीणां दरीणा-
मन्तस्त्वद्भक्तिभाजः सितकरकिरणैरुत्तमायां तमायाम्॥[1]

'अहा, प्रभो! कुसुमित पुष्पोंवाली मनोहर लताओंके वैभवको सम्मानित करनेवाले तथा उन्हीं लताओंके समीपमें सुन्दर कलिकाओंकी दिव्य शय्यापर अखण्ड रति-सुखका अनुभव करनेवाले आपके भक्तजनोंको गुफाओंके अन्दर चन्द्रकिरणोंसे सुशोभित रात्रियोंमें सुन्दरी महिलाएँ सेवित करती हैं।'

शंकरके रूपका चित्रण करते समय इस चित्रमें कवि पार्वती, गंगा, वासुकि, चन्द्र और अग्निका चित्रण भी समाहित कर लेता है। उसकी यह चित्रणकुशलता प्रत्येक पाठकको अपनी और आकृष्ट किये विना नहीं रह सकती। चित्रकी रेखाएँ बहुत ही सन्तुलित और प्रभावोत्पादक हैं :

शिवेन देव्या जगृहे करोऽहितस्त्रसन्यदा कुंकुमपंकरोहितः।
तदास्य योऽर्काग्निनिशाकरोहितः स्तवः स वः स्यादभयंकरो हितः॥[2]

'भगवान् श्री शंकरके कर-कमलपर कंकणके समान विराजमान हुए सर्पसे डरता हुआ कुंकुमपंकके समान अरुण श्रीपार्वतीका हस्तकमल जब विवाहके समय शिवजीने ग्रहण किया, उस समय कर्मसाक्षी देवता सूर्य, अग्नि और चन्द्रमाने भगवान् शिवका जो गुणानुवाद गाया, वह भगवद्गुणानुवादरूप स्तोत्र आपके लिए अभयदायक और हितकारक हो।'

---

१. स्तुति० २८।२६
१. वही, २९।२

शंकरका एक दूसरा चित्र भी अवलोकनीय हैं :

द्विजाधिपाधिष्ठितशेखरं महाभुजं गवि न्यस्तभरं समुद्वहन् ।
वपुः सदाभंगदयासमाश्रितं तनोतु वः संपदमच्युतः शिवः ।।[१]

'पक्षिराज गरुड़के कंधेपर बैठा हुआ, शेषनागपर अपना भार रखनेवाला, सुमनोहर शोभासे सम्पन्न और गदासे विराजमान हुए दिव्य मंगलमय शरीरको धारण करता हुआ वह कल्याणदाता अच्युत भगवान् शिव आपकी सम्पत्तियोंका विस्तार करे।'

विवेचनात्मक शैली

सामान्यतः विचारोंके प्रतिपादनमें इस शैलीका व्यवहार किया जाता है। कवि जिस समय अपनी भावसम्पत्तिको संक्षिप्तरूपमें अभिव्यक्त करना चाहता है, उस समय वह विवेचनात्मक शैलीका व्यवहार करता है। जगद्धर-भट्टने इस शैलीका प्रयोग अनेक पद्योंमें किया है। प्रथम वह किसी सिद्धान्त की स्थापना करता है और तदनन्तर उस सिद्धान्तकी व्याख्या। यथा :

किमाम्रवन्या सूमरालवालया प्रियाकबर्या किमरालबालया।
सरःश्रिया किं स-मरालबालया धृतेशभक्तिर्ह्यमराऽलवाऽलया ।।[२]

'हे प्रभो! बड़े-बड़े आलवालों वाली सुन्दर आम्रवाटिकासे मुझे कुछ भी प्रयोजन नहीं! और कुटिल केशोंवाली प्रियाकी कबरीसे भी मुझे क्या प्रयोजन है? अर्थात् कुछ नहीं। क्योंकि अब मैंने हृदयमें ईश्वरकी विशाल, अविनाशी भक्तिको धारण कर लिया है। अतः हमें यह सांसारिक पदार्थ नीरस प्रतीत होते हैं।'

कवि भगवान्‌की शरणको सर्वोपरि समझता है। अपनी इस मान्यताका स्फोटन करता हुआ कहता है :

समाश्रितस्त्वां करुणापराऽज यः
क्वचिन्न तस्यास्ति रणे पराजयः।
परे तमारब्धपरस्पराजयः
श्रयन्ति नाथं धृतचापराजयः ।।[३]

---

१. स्तुति० २९।७
२. वही, २९।१६
३. वही, २९।२०

'हे अज ! तथा हे करुणापर शिव ! जो पुरुष आपकी शरण लेता है, उस धन्यात्माका संग्राममें कभी भी पराजय नहीं होता और परस्पर युद्ध करनेवाले बड़े-बड़े धनुषधारी वीर लोग उसे अपना नाथ समझकर उसकी शरण लेते हैं ।'

भगवदाराधनाका महत्त्व प्रतिपादित करता हुआ वह पुनः कहता है :

विभुं विरिंचोऽपि न वेद नाम यं नतस्य दुःखं घनवेदनामयम् ।
निहन्ति तस्यापि भवेदनामयं शुचं भजेन्नाप्यनिवेदनामयम् ।।
समुद्रजालिंगितकण्ठपीठं सदैव सत्याहितसक्तिमच्युतम् ।
अनन्यगा यस्य नवोक्तिमौक्तिकैरलंकरोति प्रचुरा सरस्वती ।।[१]

'श्री ब्रह्माजी भी जिसकी महिमाका पार नहीं पा सके, जो काल-कूटको कण्ठमें धारण किये रहता है एवं जो धर्मावतार वृषभपर सदैव स्नेह रखता है, ऐसे अविनाशी परमेश्वरको जिस धन्यात्मा पुरुषकी पतिव्रता वाणी नवीन-नवीन स्तुतिरूपी मुक्ताहारसे अलकृत करती है, अर्थात् जिसकी वाणी सदा प्रभुकी ही स्तुतिमें तत्पर रहती है, उस भावुकके महावेदनामय दुःखको वह परमात्मा दूर कर देता है और प्रभुकी कृपासे उसका परम कल्याण भी हो जाता है एवं वह प्रभुसेवक अनिर्वचनीय शोकको फिर कभी भी प्राप्त नहीं होता ।'

भावात्मक शैली

भावोंके अनुकूल उत्तेजना, चंचलता, प्रवाहपूर्णता या विक्षेपका कथन करनेकेलिए कवि भावात्मक शैलीका प्रयोग करता है। स्तुतिकाव्यमें इस शैलीका सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। सहृदय कवि जिस भावकी अनुभूति स्वयं करता है उस भावकी अभिव्यंजना वह पाठकोंके समक्ष भी यथार्थरूपमें प्रस्तुत कर देना चाहता है। अतः भावात्मक शैलीका प्रयोग गीतिकाव्यमें सर्वाधिक पाया जाता है। कवि जगद्धरभट्टने महायमकके पुटके साथ उच्च कोटिकी भावाभिव्यंजना प्रकट की है। इसमें सन्देह नहीं कि कवि का भाव-व्यंजनापर अपूर्व अधिकार है। वह जहाँ जिस भावकी अभिव्यक्ति करना चाहता है, वहाँ वह उसे बड़ी सरलतासे अभिव्यक्त कर देता है :

अनन्तराव्यन्वितवाग्भवस्त्वां गृणाति यो नित्यमनन्तरायम् ।
अनन्तरायं स्वयमेत्य लक्ष्मीर्निषेवते तं समनन्तरायम् ।।[२]

१. स्तुति०२६।२२-२३
२. वही, ३०।१४

'भगवन् ! जो धन्यात्मा अपने अनन्य अमोघ वाग्वैभवसे सदैव आपका स्तवन किया करता है, उस अक्षय लक्ष्मीवान् और आसन्नभाग्योदयशाली पुरुषको लक्ष्मी स्वयं आकर सेवित करती है ?' यहाँ कविने भगवत्स्तुतिसे प्राप्त होने वाले उत्कर्षकी बड़े सरल ढंगसे अभिव्यक्ति की है।

कवि अपने इष्ट के प्रति अपना उपालम्भ भी बड़ी ही मार्मिक शैली में अभिव्यक्त करता है :

घनैरहन्ताकृतलंघनैरहं
महारिभिर्निर्मलशर्महारिभि !
निराकृतौजा धृतहानिराकृतौ
न तेऽवलेपावसरो नतेऽबले ।[1]

'भगवन् ! अहंकारके अत्यन्त प्रबल तिरस्कारों और निर्मल शान्ति-सुखको हरनेवाले काम-क्रोधादि महावैरियोंने मेरे बलको नष्ट करके मेरा शरीर क्षीण कर दिया है ! इसलिए हे नाथ ! मुझ विनीत या निर्बल भक्तका अपमान करने का आप महाकृपालुकेलिए यह उचित अवसर नहीं हैं।'

कवि शंकरकी आराधनाको ही सर्वोपरि महत्त्व देता है। उसकी दृष्टि में अन्य देवोंकी आराधना मृगमरीचिकाके समान है। उसने अपनी इस भावावलिको बड़ी ही कोमल कान्तपदावलीमें अभिव्यक्त किया है :

जलाशया यान्ति मृगा जलाशया
मरावलंघ्ये घ्नति पामरा बलम् ।
परं हसन्तो जितकोपरंहसं
भवेऽप्युज्झितपूजना भवे ।[2]

'हाय। जैसे मन्दमति और तुच्छ स्वभाववाले मृग जलकी आशा से अथाह मरुस्थलकी मरीचिकामें भटक-भटक कर अपने बलको नष्ट कर डालते हैं; वैसे ही अत्यन्त नीच स्वभाववाले मतिमन्द पामर लोग भी भगवान् शंकरकी आराधनाको छोड़कर निष्क्रोधी पुरुषोंकी हँसी करते हुए अनित्य भव में भटकते फिरते हैं।'

अमन्दरागश्रितमन्दरागास्ते देवजाताविह देव जाताः ।
ये सिद्धसाध्यार्चित सिद्धसाध्या रता नवं तेनुरतानवं ते ।[3]

१. स्तुति० ३०।१८
२. वही, ३०।२१
३. वही, ३०।२२

'परम व्योममें स्वतन्त्र विहरनेवाले हे सिद्ध और साध्योंके पूजनीय प्रभो ! जो पुरुष आपकी शरण होकर नित्य आपका स्तवन करते हैं, वे धन्यात्मा बड़े अनुरागसे मन्दराचल पर्वतमें, जहाँकि आपका सदैव सान्निध्य रहता है, निवास करते हुए अमर हो जाते हैं।'

सदय मोदय मोदयमोक्षदं कृशमदः शमदः शमदः कुरु।
न हि तता हितताऽहिततायनैः कृतनुते तनु ते तनुते शुभम्।[1]

'हे दयालो! मुझे अपने कृपा-कटाक्षसे आनन्दित कीजिए। प्रभो! अखिल ब्रह्माण्डाधीश्वर होनेपर भी निरहंकार और परम शान्तिके दाता आप भोग और मोक्षको देनेवाला कल्याण कीजिए! हे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहारादि करनेवाले ब्रह्मादि देवोंसे बन्दित देव! आपकी वह विशाल उदारता शरणागतोंको स्वल्प कल्याण नहीं देती, किन्तु अपार सुख-सम्पत्ति प्रदान करती है।'

विकार और क्लेशोंके चित्रणमें भी कवि पटु है। कविने अपने स्तोत्रोंको अनेक उपमानोंद्वारा भावात्मक रूपमें प्रस्तुत किया है। ये उपमान भावोंको हृदयंगम तो कराते ही हैं साथ ही सांसारिक प्रपंचोंका चित्र भी प्रस्तुत कर देते हैं। स्तुतिकुसुमांजलिके अड़तीसवें और उन्नीसवें स्तोत्र उक्त शैलीके विशेष उदाहरण हैं।

मृगेन्द्रशावा इव कंदरोदरात् करीन्द्रकुम्भादिव मौक्तिकोत्कराः।
विनिःसरन्तः कवितुर्मुखादमी मनोज्ञतां बिभ्रति कस्य न स्तवाः।[2]

'अहा! कन्दराके अन्दरसे निकलते हुए मृगेन्द्र-बालकोंके समान और गजेन्द्रके मस्तकसे निकलते हुए मुक्ताओंके अंकुरोंके समान, कविके मुखसे निकलते हुए ये मनोहर स्तोत्र किस सचेतनके मनको नहीं मुग्ध करते? अर्थात् सभीके मनको मोहित कर देते हैं।'

मरालमाला सरसीव निर्मले कुचस्थले हारलतेव सुभ्रुवाम्।
इयं भवत्वाभरणं महेश्वरस्तवावली वक्त्रसरोरुहे सताम्।[3]

१. स्तुति०३०।२३
२. वही, ३८।१४
३. वही, ३८।१५

'जैसे निर्मल मानसरोवरमें मरालोंकी माला सुशोभित होती है, जैसे सुन्दरी युवतियोंके कुचस्थलमें मुक्तावली सुशोभित होती है, वैसे ही विद्वज्जनोंके मुख-कमलमें यह महेश्वरस्तवावली सुशोभित हो।'

अन्तर्विमृश्य गरलेन गले सलीलमालिंगितं विमलमाननमिन्दुमौले:।
हृष्यामि हन्त मुहुरम्बुरुहभ्रमाप्तरोलम्बडम्बरविडम्बनपण्डितेन।[1]

'अहा! कमलकी भ्रान्तिसे आये हुए भ्रमरोंकी स्पर्धा करनेमें अत्यन्त चतुर कालकूटने भगवान् शंकरके स्वच्छ मुखका जो बड़े प्रेमसे आलिंगन किया, उसे देखकर मैं अपने मनमें बार-बार हर्षित होता हूँ।'

यद्वद्विषं सदमृतं शिरसि प्रसिद्धमम्भस्तवेश विशदं सुमन: स्रवन्त्या:।
मन्ये तथैव भगवन् भवतो गलस्थं संपद्यतेऽमृतमिदं नतसान्त्वनेषु।[2]

'हे नाथ! जैसे गंगाका जल विष नामसे प्रसिद्ध होता हुआ भी आपके मस्तकमें अमृत नामसे प्रख्यात हो गया है; मैं समझता हूँ कि वैसे ही आपके कण्ठमें स्थित हुआ यह विष भी शरणागतोंको सान्त्वना देनेकेलिए अमृत बन जाता है।'

कवि जगद्धरके इस स्तोत्रकाव्यमें शैलीकी दृष्टिसे निम्नलिखित विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं —

१. यथार्थता—भावानुरूप शब्दोंका प्रयोग और वाक्यविन्यासमें उपयुक्त शब्दयोजना,
२. प्रसादगुण,
३. औचित्य,
४. भावों और विचारोंकी यथार्थसे प्रेषणीयता,
५. कलात्मक मूर्त्तविधान—अप्रस्तुत विधानका प्रयोग,
६. संगीतात्मकशैलीमें योजित, बुद्धितत्त्व, भावतत्त्व और सौन्दर्यतत्त्व इन तीनोंका सामंजस्य एवं
७. उदात्तता—ओजगुणके संयोजनद्वारा शैलीका उदात्तीकरण।

कविका भाषा-सौन्दर्य

रस काव्यकी आत्मा है तो भाषा उसका शरीर। शरीरकी स्वच्छता एवं उसकी साज-सज्जा सौन्दर्यवृद्धिमें सहायक होती है। अत: भाषाकी

१. स्तुति० १९।१५
२. वही, १९।१६

स्वच्छता और सौन्दर्य पर विचार करना आवश्यक है। भाषाके औचित्यका प्रश्न प्राचीनकालसे ही महत्त्वपूर्ण बना रहा है। पद: वाक्य एवं प्रबंधार्थका औचित्य भाषाका औचित्य है। अत: वर्णों का संयोजन इस प्रकारसे सम्पन्न होना चाहिये जिससे अर्थ-बोधके साथ सौन्दर्य भी घटित हो जाय।

कवि जगद्धरभट्टने भावोपयुक्त शब्दावलीका प्रयोग कर अपने काव्यको रोचकता और अर्थगाम्भीर्य प्रदान किया है। यद्यपि उन्होंने इस रचनाको किशोरावस्थामें ही सम्पादित किया है, पर उसकी काव्यगत प्रौढ़ता उनकी उस अवस्थाको अभिव्यंजित करती है, जिस अवस्थामें कवि पूर्ण समर्थ हो जाता है।

भाषा के सम्बन्धमें विचार करते समय गुण और शब्दशक्तियोंका प्रश्न उपस्थित होता है। यह हम पूर्वमें ही लिख चुके हैं कि प्रस्तुत रचनामें प्रसाद, ओज और माधुर्य इन तीनों गुणों का सुरुचिपूर्ण समावेश पाया जाता है। अत: गुणगत रमणीयता, शब्दगत रमणीयता और अर्थगत रमणीयता इस स्तुतिकाव्यमें समाहित है। यहाँ हम कविकी वर्णयोजनासे सम्बन्धित कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, जिनसे अवगत किया सकेगा कि कविने अनुप्रासमय कोमलकान्तपदावलीका कैसा सुन्दर प्रयोग किया है:

यदि विभा दिवि भाति न तावकी
यदि न मे दिनमेति भवन्मयम्।
वद महादमहारि तम: कथं
विषमदोषमदो विनिवर्तते॥
कमलिनी मलिनीक्रियते यया
विहतसन्ततसन्तमसापि या।
स्मरचिता रचितापि च यत्र तां
वितर कातरकामदुघां दृशम्॥
तुहिनवाहिनवानिलजे मन:
सहसि रंहसि रंजयति प्रिया।
न रसिकोरसि कोष्णकुचा तथा
तव गुणानुगुणा नुतिगीर्यथा॥[1]

---

१. स्तुति० २७।२३-२५

कविने उक्त पद्योंमें व, भ, त, द, म, क, ल, स, त, ह, एवं न आदि वर्णोंकी आवृत्ति करके कोमलताका निर्माण किया है। यह वर्णयोजना चित्रात्मक संगीत तत्वको उत्पन्न करनेके साथ ही भाषामें अपूर्व प्रवाह भी उत्पन्न कर रही है।

कवि जगद्धरभट्टकी यह विशेषता है कि उन्होंने अनुप्रास और यमकद्वारा भाषामें एक अपूर्व प्रवाह उत्पन्न किया है और वह प्रवाह गंगोत्रीसे निकलने वाली मन्दाकिनीके स्रोतके समान शीतलता और तृप्ति प्रदान करता है। जो पाठक अर्थबोधको प्राप्त करनेमें असमर्थ है, वह भी केवल वर्णमाधुर्यके द्वारा रसास्वादन कर लेता है।

श्लेष और रूपककी योजनाने तो भाषाको अत्यन्त शक्तिशाली बनाया है। श्लिष्ट पद शब्दचमत्कारके साथ अर्थचमत्कार भी उत्पन्न करते हैं :

दुर्वार-दुर्गति-निकार-कदर्थ्यमान-
मालोक्य लोकमखिलं विपुलाशयेन।
सद्यःकृतं कनकवर्षणमिन्दुकान्त-
वर्ष्मत्विषा परमकारुणिकेन केन॥
गायन्ति कस्य विशदं विषमोग्रकाल-
संरुद्धशक्तिशरणागतरक्षणोत्थम्।
द्वन्द्वानि नन्दनसदामपदानमिन्दु-
धौतासु कौमुद-महोत्सवयामिनीषु॥
केनेश्वरेण महता वहतात्रिनेत्र-
संजातकान्ति वपुरद्भुतभूतिभूषम्।
उद्दामकामशितमागणदौर्मनस्य-
नवैरस्यमिद्धमहसा सहसा निरस्तम्॥[1]

स्तुतिकुसुमांजलिकी भाषाकी एक अन्य विशेषता है कि कविने एक ही वर्णद्वारा पूर्ण श्लोकका ग्रथन किया है, पर आश्चर्य यह कि ऐसे स्थलोंपर भी अर्थबोधमें किसी भी प्रकारकी रुकावट उत्पन्न नहीं होती। जिस शब्दावलीका कविने प्रयोग किया है, उस शब्दावलीमें प्रसाद गुणकी प्रमुखता है। अतः पद्यके पढ़ते ही अर्थबोध और रसोन्मेष दोनों ही तत्काल हो जाते हैं।

---

१. स्तुति० २०।३०-३२

निम्नोद्धृत श्लोक इसके उदाहरण हैं;

तस्मिन्क्षणे नयनवर्त्मनि जीवतेशः
शंसन् दृशा मधुरयैव मनःप्रसादम् ।
चक्रे पदं मम तमोमुकुलीकृतायाः
स्वैरं समेत्य सवितेव सरोरुहिण्याः ।[1]

'उसी समय स्वेच्छासे आकर अपनी मनोहर सौम्य दृष्टिसे मनको प्रसन्न करते हुए प्राणनाथने मूर्च्छासे व्याकुल हुए मेरे नयनोंमें वैसे निवास किया, जैसे कि अन्धकारसे संकुचित कमलिनीके नयनमार्गमें सूर्यदेव निवास करते हैं ।'

प्रस्तुत सन्दर्भमें कवि भगवान्‌की मनःप्रसादनशक्तिकी अलौकिकताका चित्रण करता है। भगवान् शंकरकी स्तुतिमें निरत वाणीसे युक्त कवियोंकी प्रशंसा करते हुए जगद्धरभट्ट कहते हैं :

यो मूर्धनि स्रजमिवोद्वहते धरित्री-
मुष्णीषतां श्रयति यस्य स भोगिराजः ।
यस्यामसौ वसति वाक्पतिरुक्तिदेवीं
तां ये वहन्ति हृदि ते कवयो जयन्ति ॥[2]

'जो इस पृथ्वीको अपने मस्तकपर पुष्प-मालाके समान धारण करता है, वह शेषनाग जिसका एक शिरोवेष्टन है, वह समस्त वाणियोंका पति परमेश्वर श्री सदाशिव जिस शक्ति-स्वरूपा वाणीमें निवास करता है, अर्थात् परमानन्द स्वरूपसे जिस वाणीके अन्दर उल्लास करता है, उस सर्वोत्कृष्ट वाणीको भी जो लोग अपने हृदयमें धारण करते हैं, वे सत्-कवि सर्ववन्द्य हैं ।'

जिन स्थानोंपर कविकी भावगम्भीरता अधिक होती है, उन सन्दर्भोंकी भाषा अधिक प्रौढ़ और परिमार्जित है। दीनाक्रन्दनस्तोत्रमें करुणाभावनाका समावेश सर्वाधिक हुआ है। इस स्तोत्रकी भाषा विचारोंकी गहनताके कारण अधिक प्रौढ़ है। कविने भावोंके अनुसार ही भाषाका प्रयोग किया है।

भगवान् शंकरकी स्तुतिके सन्दर्भमें कवि उनके वाहन नन्दीकी भी प्रशंसा करता है :

---

१. स्तुति० २०।१७
२. वही, ५।२

यद्वा भवत्यसुलभो भवदाश्रितस्य
शस्यः स कोऽपि महिमा न हि मादृशोऽपि ।
स्वच्छन्दमन्दमपि यत्र पदं त्वदुक्षा
धत्ते मही भवति हेममयी हि तत्र ॥[1]

'अथवा, हे प्रभो ! आपके आश्रित मुझ-सरीखे दीन-हीन व्यक्तिकेलिए आपके गुणगणोंकी स्तुति करने योग्य वह विलक्षण श्लाध्य महिमा कोई सुदुर्लभ नहीं है, अर्थात् आपके शरणागतका आपकी स्तुतिकेलिए उत्सुक होना यह कोई कठिन नहीं है । निश्चय ही आपका शरणागत वाहन नन्दी जहाँ थोड़ा-सा भी अपना स्वच्छन्द पद रखता है, वहाँ की सारी पृथ्वी सुवर्णमयी हो जाती है ।'

भगवान् शंकरकी स्तुतिकी महत्ता प्रदर्शित करते हुए कवि पुनः कहता है :

भीष्मो विषादपि विषादपिनद्धमेत-
च्चैतश्चकार सविकारमकारणारिः ।
मोहामयस्तमयमस्तमयं नयामि
स्वामिंस्तव स्तवरसायनसेवनेन ॥[2]

'प्रभो ! विषसे भी भयंकर, निष्कारण वैरी इस मोहरूपी व्याधिने मेरे चित्तको विषादसे आच्छादित और अनेक प्रकारके विकारोंसे विकृत कर दिया है । इसलिए अब मैं आपके स्तुतिरूपी रसायनके सेवनसे इस मोहरूपी महाव्याधिको समूल नष्ट कर रहा हूँ ।'

कवि भगवान् शंकरकी अहैतुकी कृपाकी प्रशंसा करता हुआ कहता है :

अपि जगद्विदितः करुणापरः परहिताहितमूर्तिपरिग्रहः ।
किमिति हंसि न हंस हृदम्बुजे कृतपदो विपदः शरणार्थिनाम् ॥[3]

'हे हंस (पूर्ण परब्रह्म परमात्मन्) ! आप जगद्विख्यात हैं, फिर भी (लोगोंपर) अहैतुकी दया रखते हैं । निर्गुण एवं निराकार होकर भी आप

---

१. स्तुति० ९।३
२. वही, ९।४
३. वही, १०।७

भवसागरमें निमग्न प्राणियोंके उद्धारार्थं सगुण एवं साकार स्वरूप धारण करते हैं। आप मुझ जैसे शरणागतोंके हृदयकमलमें निवास करते हैं। तब भी इस जन्म-मरणके त्रासरूप विपत्तियोंको क्यों नहीं दूर करते ?'

अज्ञानान्धकारसे मुक्तिकी कामना करता हुआ कवि पुनः कहता है।

अभयघोषमिषोन्मिषितामृतद्रवमवन्ध्यधृतस्मितचन्द्रिकम्।
वदनचन्द्रमसं तव पश्यतो मम कदा नु तमः शममेष्यति ॥[1]

'अयि काम-रिपो, मत डरो! मत डरो!! इस प्रकार अभयघोषके प्रदानके व्याजसे अमृत-रसका स्राव करनेवाले एवं भक्तजनोंके अभीष्ट वरदानमें सर्वथा अमोघ ईषत्-हास्यरूप चन्द्रिकासे सुशोभित आपके मुखचन्द्रको देखते हुए मेरा यह अज्ञानान्धकार कब दूर होगा ?'

संक्षेपमें स्तुतिकुसुमांजलिकी भाषामें निम्नलिखित विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं :

१. प्रौढ़ता, शुद्धता और परिमाजनयुक्तता;
२. अनुप्रासयुक्तता;
३. यमकके कारण सरसता और मधुरता;
४. वैदर्भी शैलीके कारण सहज अर्थगम्यता;
५. अभिधाकी अपेक्षा लक्षणा और व्यंजनाकी प्रधानता;
६. श्लेषजन्य चमत्कार;
७. समास-बहुलताके साथ यत्र-तत्र समासविरलताका समावेश;
८ श्रुतिमधुर वर्णोंका न्यास;
९. पदगत और वाक्यगत औचित्यका सद्भाव;
१०. कोमलकान्त पदावलीका संयोजन एवं
११. वर्णनसन्दर्भानुसार पदावलियोंका न्यास।

स्तुतिकुसुमांजलिमें चर्चित आख्यानोंका काव्यमूल्य[2]

कवि जगद्धरभट्ट स्तोत्रकाव्यके रचयिता होते हुए भी प्रबन्ध-श्रृंखलाके प्रेमी हैं। इन्होंने स्तुतियोंके मध्य पौराणिक, ऐतिहासिक एवं लोकप्रथित

---

१. स्तुति० १०।६१
२. द्रष्टव्य : परिशिष्ट संख्या १

महान् व्यक्तियोंकी नामावलिका निर्देश कर उदाहरणके रूपमें सन्दर्भांश प्रस्तुत किये हैं।

कविने सदाशिवकी स्तुति प्रस्तुत की है। इस स्तुतिके क्रममें उसने उनके लगभग दो सौ नामोंका निर्देश भी किया है।[1] शंकरकी नामावलिमें कतिपय ऐसे नाम हैं जिनके पेटमें बड़े-बड़े सन्दर्भ निहित हैं। अतः कविने भाषाको चमत्कारी बनानेके लिए शंकरके विभिन्न उपाख्यानोंके साथ कतिपय अन्य ऐसे महनीय व्यक्तियोंके नामोंका भी निर्देश किया है, जिनके साथ कोई न कोई सन्दर्भ निहित है।

इसमें सन्देह नहीं कि इस स्तुतिकाव्यमें चर्चित उपाख्यान पौराणिक होते हुए भी काव्यमूल्यकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। एक ही वस्तु या एक ही भावका अनेक बार वर्णन आनेसे नीरसता और ऊबसी प्रतीत होती हैं, भले ही यह वर्णन प्रकारान्तर रूपमें सम्पन्न किया गया हो। जो कवि जितना अधिक प्रतिभाशाली होता है, वह अपने काव्यमें उतना ही अधिक चमत्कार संयोजित करता है। पौराणिक सन्दर्भोंकी चर्चा काव्यभाषामें एक नया चमत्कार उत्पन्न करती है। इसके द्वारा बिखरे हुए मुक्तक पद्योंमें गाढ़बन्धत्व प्रस्तुत कर प्रबन्धात्मकताका आनंद उत्पन्न किया जाता है। जिन रचनाओंमें भक्ति या स्तुति अथवा दार्शनिक विचारोंका समावेश किया जाता है, वे रचनाएँ एक ही प्रकारकी भावरूपताके कारण ऊबसी उत्पन्न कर देती हैं। जिस प्रकार मिष्टान्नके अनन्तर लवणान्नकी आवश्यकता होती है क्योंकि यह लवणान्न ही मिष्टान्नको वास्तविक मिठास प्रदान करता है, उसी प्रकार मुक्तककाव्यमें पूर्णतया माधुर्य रहनेपर भी सन्दर्भांश उसमें काव्यात्मक सौन्दर्य एवं आह्लादकत्वका अभिवर्धन करते हैं। आह्लाद अधिक समय तक उत्पन्न हो और उसका प्रभाव गम्भीर पड़े, इस कारण कवि उपमानों, रूपकों, उदाहरणों और दृष्टान्तोंके रूपमें आख्यानांशोंको प्रस्तुत करता है।

इन आख्यानोंके निम्नलिखित काव्यात्मक मूल्य भी हैं।

बिम्बात्मकमूल्य

आख्यान रूप, व्यापार या भावको मूर्त रूपमें प्रस्तुत करते हैं। कविकी

---

१. द्रष्टव्य : परिशिष्ट संख्या २

और धूलको सिन्दूर बना देती है। मनुष्य अपनी प्राणभावनाको जड़ पदार्थों में भी आरोपितकर उनमें प्रवेश पा लेता है और उनमें अपनी चेतना, स्वभाव और व्यवहारका आरोप करता है। जिस प्रकार एक छोटा शिशु कल्पना शून्यको भी रूपरंगसे चित्रित करना चाहती है। वह राखको भभूत लाठीको घोड़ा मानकर चलाता है और इससे वह वास्तविक घुड़सवारीका आनन्द प्राप्त करता है, उसी प्रकार कवि संसारके अचेतन पदार्थों में भी चेतनाके गुणधर्मका आरोप करके उनको चेतन प्राणियोंकी कोटिमें प्रतिष्ठित कर देता है। उसकी प्राणतत्त्वकी प्रतिष्ठा इतनी अधिक व्यापक और विस्तृत हो जाती है कि वह उनमें इन्द्रिय और इन्द्रियातीत बिम्बोंकी भी योजना करता है। वस्तुतः कवितागत बिम्ब ऐसे शब्द-चित्र हैं जो किसी संवेग, मनोराग या आख्यानांशसे अनुप्राणित रहते हैं। आख्यानांश जीवनमें एक कथाभागको प्रस्तुत करता है। उस कथाभागका चित्र हमारे मानसपटलमें अंकित होता है और इस चित्रसे हमारे कितने ही भाव प्रभावित हो जाते हैं। एक छोटा मुहावरा, एक अनुच्छेद अथवा एक सन्दर्भांश हमारी कल्पनाको यथार्थ तत्त्वकी अपेक्षा बहुत कुछ दे देता है। अतएव प्रयुक्त आख्यानोंका सबसे बड़ा काव्यमूल्य ऐसे बिम्बोंकी योजना है, जो अधिक स्वच्छ और स्पष्ट होते हैं। सामान्य वस्तुएँ धूमिल बिम्बोंका निर्माण करती हैं, जो सरोवरमें पड़नेवाले चन्द्रबिम्बके समान घुलनशील होते हैं।

प्रतीकोंके रूपमें परिवर्त्तन

आख्यान घिसते-घिसते जब बहुत छोटे हो जाते हैं और उनका संक्षिप्त रूप प्रयोगमें आने लगता है तो वे प्रतीकोंका रूप धारण कर लेते हैं। जितने भी पौराणिक प्रतीक हैं, उनके भीतर कोई न कोई आख्यान अवश्य छिपा है। जैसे 'समुद्रपार' सेतुबन्धके आख्यानकी स्मृति दिलाता है। महाभारत कहते ही महाभारतकी कथा या कौरव-पाण्डवोंके युद्धकी प्रतीति होने लगती है। अतः पौराणिक आख्यान प्रतीकोंका रूप धारण करते हैं और उनमें आन्तरिक भावनाओंको पूर्णतया व्यक्त करनेकी क्षमता होती है। रूपक, उपमा, अन्योक्ति आदि अलंकार भी आख्यानोंके ही प्रतिफलन हैं। जब आख्यान बहुत पुरातन होकर जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं तो उनसे रूपक और उपमानोंका विकास होता है। पौराणिक उपमान आख्यानोंके ही वंशज हैं।

अर्थगर्भत्वका नियोजन

पौराणिक आख्यानोंके अंश ध्वन्यर्थकी अभिव्यंजना करते हैं और उनसे अर्थका अत्यधिक विस्तार होता है। जलमें उठनेवाली तरंगोंके समान रूप और भावसौन्दर्यकी तरंगे आख्यानोंसे उठती हैं। आर्द्र अजिनके सुनते ही गजासुरके वधका दृश्य प्रत्यक्ष हो जाता है। पूर्व और उत्तरवर्ती सन्दर्भोंकी शृंखलाएं मध्यमें निहित आख्यानके सन्दर्भसे आलोकित हो जाती हैं। सन्ध्याके समय सम्पन्न होनेवाला शंकरका ताण्डव नृत्य एक साथ कई भावोंका सृजन करता है। सुख, आनन्द, संघर्ष एवं रूप-लावण्यका बोध आख्यानोंके अर्थगर्भत्वके कारण ही होता है।

रसपरिपाककी तीव्रता

मधुमक्षिका अनेक फूलोंके परागसे मधुका निर्माण करती है। पुष्पोंके विभिन्न पराग मधुमें आकर अपना वैविध्य छोड़ देते हैं। मधु विभिन्न तत्त्वोंका एक परिपाक है। इसके आस्वादनमें फूलोंकी विविधताका बोध नहीं होता। कविके मानसमें भी एक रासायनिक प्रक्रिया चलती रहती है जिसके फलस्वरूप भावना और विचारणाके विविध तत्त्व अपनी विविधता त्यागकर एक सन्दर्भका बोध कराते हैं और भावोंके विविध पुष्प सौन्दर्य-मधुका स्वाद प्रस्तुत करते हैं। अत: रस-परिपाककी दृष्टिसे भी समाहित आख्यानोंका मूल्य है।

प्रभविष्णुताके वृद्ध्यर्थ

वर्ण्यवस्तुका प्रत्यक्ष रूप उपस्थित करनेकेलिए कवि तत्सम्बन्धी आख्यानांशका उल्लेख करता है या किसी अभिज्ञान विशेषको प्रस्तुत करता है। यथा शिवजीकी मूर्तिकेलिए त्रिशूल, जटा, गंगा एवं वासुकि आदिको चित्रित करता है। अत: आख्यान या सन्दर्भांशोंका संकेत प्रभविष्णुताकेलिए किया जाता है। अतएव भावसौन्दर्य एवं रससंचारकेलिए आख्यान-संकेतोंका नियोजन तर्कसंगत है।

स्तुतिकुसुमांजलिकी छन्दो-योजना [१]

स्तोत्रकाव्यमें संगीतका आधार छन्द होता है। जो कवि छन्दोयोजनामें जितना पटु होता है, उसके काव्यमें संगीत-तत्त्व उतना ही अधिक विकसित

१. द्रष्टव्य: परिशिष्ट संख्या ४

होता है। काव्यरूपोंके मूलमें छन्द एक आवश्यक घटक है। यदि वाक्य भाषाकी ईकाई है तो छन्द भाषाकी भंगिमा है। अतः जब भाषामें परिवर्तन होता है तो छन्दोंमें भी परिवर्तन हो जाता है। छन्दोंका माधुर्य काव्य-रूपोंको सुदृढ़ तो बनाता ही है, साथ ही कवितामें लय और स्वरमाधुर्य भी उत्पन्न करता है। कुशल कवि रसोंके अनुकूल छन्दोयोजना कर काव्यको रसमय बनाते हैं। हमारा यह विश्वास है कि विभिन्न प्रकारके छन्दोंकी योजना पृथक्-पृथक् रस, भाव और अलंकारकी व्यंजक है। यदि शृंगार रसके व्यजक छन्दोंका कवि प्रयोग करता है, तो इसके द्वारा शृंगार रस की विशेष पुष्टि होती है। निष्कर्ष यह है कि केवल शब्दयोजना ही काव्यमें रस व्रिद्धिकेलिए पर्याप्त नहीं है, उसकेलिए छन्दोयोजना भी अपेक्षित है।

जो कवि छन्दःसाधना करना चाहता है या जिसे छन्दःशास्तकी सिद्धि प्राप्त है, वह अल्पप्रयासमें ही अपने काव्यको सरस बना लेता है। वंश-वर्णन और तपस्याके चित्रणकेलिए कवि उपजाति छन्दका प्रयोग करता है। जहाँ उसे वीरता, युद्ध एवं सैन्य संगठनके वर्णनकी आवश्यकता प्रतीत होती है, वहाँ वह वंशस्थ छन्दका प्रयोग करता है। करुणा, दीनता, कृपणता और मनोव्यथाके चित्रणहेतु वैताली छन्दका प्रयोग वांछनीय माना जाता है। भौतिक एवं पारलौकिक समृद्धिके वर्णनकेलिए द्रुतविलम्बितका विधान है। रथोद्धता छन्दमें काम-क्रीड़ा, आखेट, रतिजन्यखेद एवं पश्चात्ताप आदिका वर्णन किया जाता है। प्रवास, विपत्ति और वर्षा ऋतुके वर्णनमें मन्दाक्रान्ताको विधेय माना गया है। प्रहर्षिणीका प्रयोग नामके अनुसार हर्षातिरेकके वर्णनम होता है। हरिणीछन्द नायकके अभ्युत्थान और सौभाग्यवर्णनके प्रसंगमें आता है। कार्यकी सफलता, ऋतुचित्रण एवं जीवनभोग वसन्ततिलका छन्दमें अंकित किये जाते हैं। जीवनमें जब अकस्मात् सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है तो स्वागतार्थ स्वागता छन्दका व्यवहार किया जाता है।

घबराहटमें मत्तमयूर, प्रपंच-परित्यागमें नाराच, निराशाके साथ निवृत्तिमें तोटक, कृतकृत्यतामें शालिनी, वीरताके चित्रणमें शार्दूलविक्रीडित और आत्मनिवेदनकेलिए शिखरिणी छन्दका प्रयोग प्रशस्त माना गया है।

निःसन्देह कवि जगद्धरभट्टने अपनी इस रचनामें छन्दोंकी सुन्दर योजना की है। यहाँ वर्णिक वृत्त रहनेपर भी तुकजन्य सौन्दर्य दिखलायी पड़ता

है। कविने भक्तिकी सिद्धिकेलिए जिन छन्दोंका प्रयोग किया है, वे संगीतका सुन्दर रूप प्रस्तुत करते हैं। यों तो संस्कृत भाषाही निसर्गतः कोमल और मधुर है, पर प्रतिभासम्पन्न कविके हाथमें पड़कर उसमें भाव-प्रकाशनकी अद्‌भुत क्षमता उत्पन्न हो जाती है। भावोंकी सूक्ष्मता और मनोविकारोंकी व्यापकताके प्रकाशनमें छन्द बहुत ही सहायक होते हैं।

स्तुतिकुसुमांजलिमें शब्दसौष्ठव, पदावलीका मधुमय विन्यास एवं पदोंकी कोमल शैय्या विद्यमान है। कविने भावप्रकाशनकेलिए जिन-जिन छन्दोंका चयन किया है, वे पूर्ण सशक्त तो हैं ही, साथ ही संगीत-तत्त्वके निर्माणमें भी समर्थ हैं। रसके उन्मीलन-हेतु छन्दोयोजना अपेक्षित होती है। भावोंमें तीव्रता और प्रवाहशीलता लानेकेलिए कवि ऐसे छन्दोंका प्रणयन करता है जिससे हृत्तन्त्रियाँ झनझना उठती हैं और पाठक तथा श्रोता रसविभोर हो झूमने लगते हैं। कवि जगद्धरभट्टका छन्दोंपर अपूर्व आधिपत्य है। जहाँ वह आत्मनिवेदन प्रस्तुत करता है और अपने दोषोंका उद्‌घाटन करने लगता है वहाँ वह शिखरिणी छन्दका प्रयोग करता है। कवि जगद्धरभट्ट में एक साथ दार्शनिकता, प्रौढ़ पाण्डित्य एवं विषयविवेचनकी अद्‌भुत क्षमता उपलब्ध होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्तुतिकुसुमांजलि गीतिकाव्यत्व, भाषा-शैली, भाषासौन्दर्य, भावगर्भित आख्यानों एवं प्रसंगानुकूल छन्दोयोजनाकी दृष्टिसे अत्यन्त उच्चकोटिका काव्य है।

परिशिष्ट

- ☐ स्तुतिकुसुमांजलिमें समाहित कतिपय प्रमुख आख्यान
- ☐ स्तुतिकुसुमांजलिमें समाहित शिव-नामावलि
- ☐ स्तुतिकुसुमांजलिकी उपमान-योजना
- ☐ स्तुतिकुसुमांजलिकी छन्दस्तालिका

परिशिष्ट—१

स्तुतिकुसुमांजलिमें समाहित कतिपय प्रमुख आख्यान

शिवके अंगभंगकी कथा

किसी समय स्वेच्छानुसार लोकोत्तर चर्यामें निरत भगवान् भोलेनाथ दिगम्बर वेशमें कहीं विहरण कर रहे थे। उनके परम सुमनोहर अलौकिक सौन्दर्यकी छटा देखकर मुनिपत्नियाँ उनपर आसक्त हो गयीं। अपनी पत्नियोंकी यह दशा देखकर उन मुनियोंने कुपित हो भगवान् शिवको शाप दिया, 'आपके लिंगका भंग हो जाय'। फलत: उसी समय भगवान् शिवका लिंग पृथ्वीपर गिर पड़ा। इससे समस्त संसारमें अनेक तरहके अकाल और उपद्रव होने लगे। तब अत्यन्त भयभीत हो ब्रह्मादि देवताओंने भक्ति-श्रद्धा-पुरस्सर सदाशिवके उस ज्योतिर्लिंगका अर्चन किया जिससे सबके मनोरथ पूर्ण हो गये। उसी समयसे अनन्त भूमण्डलमें शिवलिंगके अर्चनकी महिमा विस्तृत हुई।

शिवका ब्रह्मा एवं विष्णुका रूप धारण करना

एक समय आनन्दवनमें रमण करते हुए शिव और शिवाके मनमें यह इच्छा हुई कि किसी दूसरे पुरुषकी भी सृष्टि करनी चाहिए जिसपर सृष्टि-संचालनका यह महान् भार रखकर हम दोनों केवल काशीमें रहकर इच्छानुसार विचरें और निर्वाण धारण करें। ऐसा निश्चय करके शक्तिसहित सर्वव्यापी परमेश्वर शिवने अपने वामभागके दसवें अंशपर अमृत मल दिया जिससे एक पुरुष प्रकट हुआ जो तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दर, शान्त, सत्त्वगुणसम्पन्न, गम्भीर एवं क्षमाशील था। उस पुरुषने परमेश्वर शिवको प्रणाम करके निवेदन किया, 'स्वामिन्! मेरा नाम निश्चित करके मेरेलिए कार्य निर्धारित कर दीजिए।' उस पुरुषकी यह बात सुनकर महेश्वर भगवान् शंकरने हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा 'वत्स! अत्यन्त व्यापक होनेके कारण तुम विष्णुके नामसे विख्यात होगे। तुम सुस्थिर उत्तम तप करो, जो समस्त कार्योंका साधक है।' ऐसा कहकर

भगवान् शिवने श्वासमार्गसे श्री विष्णुको वेदोंका ज्ञान प्रदान किया। तदनन्तर अपनी महिमासे कभी च्युत न होने वाले श्री हरि भगवान् शिवको प्रणाम करके बहुत बड़ी तपस्या करने लगे। शक्तिसहित परमेश्वर शिव भी वहाँसे अदृश्य हो गये। तपश्चरणयुक्त भगवान् विष्णुके अंगोंसे नाना प्रकारकी जलधाराएँ निकलने लगीं। उस समय थके हुए परमपुरुष विष्णुने स्वयं उस जलमें शयन किया।

जब नारायण देव जलमें शयन करने लगे तब उनकी नाभिसे भगवान् शंकरके इच्छावश सहसा एक बहुत बड़ा उत्तम कमल प्रकट हुआ। उसमें असंख्य नालदण्ड थे। कल्याणकारी शिवने अपने दाहिने अंगसे उत्पन्न ब्रह्माको विष्णुके नाभिकमलमें डाल दिया। इस प्रकार कमलसे पुत्ररूपमें हिरण्यगर्भ ब्रह्माका जन्म हुआ। उनके चार मुख हुए। उनके शरीरकी कांति लाल थी। भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण ब्रह्माकी ज्ञानशक्ति इतनी दुर्बल हो गयी थी कि उन्होंने उस कमलको ही अपना जनक स्वीकार किया। उसी समय उनके मोहका विध्वंस करनेवाली शिवकी इच्छासे परम मंगलमयी उत्तम आकाशवाणी हुई, 'तप करो'। उस आकाशवाणीको सुनकर ब्रह्माने अपने जन्मदाताका दर्शन करनेकेलिए बारह वर्षों तक घोर तपस्या की। उसी समय चार भुजाओं और सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित भगवान् विष्णु हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर प्रकट हुए। तदनन्तर उन नारायण देवसे ब्रह्माकी बातचीत आरम्भ हुई। भगवान् शिवकी लीलासे वहाँ उन दोनोंमें कुछ विवाद छिड़ गया। इसी समय उन दोनोंके बीचमें एक महान् अग्निस्तम्भ प्रकट हुआ। ब्रह्मा और विष्णुने क्रमशः ऊपर और नीचे जाकर उसके आदि अन्तका पता लगानेका असफल प्रयत्न किया।

अन्तमें श्री हरिने वेद और शब्द दोनोंके आधारभूत विश्वात्मा शिवका चिन्तन किया जिससे वहाँ ऋषि-समूहके परम साररूप एक ऋषि प्रकट हुए। उन्हीं ऋषिके द्वारा परमेश्वर विष्णुने जाना कि इस परमलिंगके रूपमें साक्षात् महादेवजी ही यहाँ आये हुए हैं। ये चिन्तारहित रुद्र हैं। इस प्रकार देवेश्वर शिवको जानकर श्री हरिने शक्तिसम्भूत मन्त्रोंद्वारा उत्तम एवं महान् अभ्युदयसे शोभित होनेवाले उन महेश्वर देवका स्तवन किया। भगवान् विष्णुके द्वारा की हुई अपनी स्तुति सुनकर करुणानिधि महेश्वर

बड़े प्रसन्न हुए और सहसा उमादेवीके साथ वहाँ प्रकट हो गये। उस समय उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र शोभायमान हो रहे थे। भालदेशमें चन्द्रमा, सिरपर जटा एवं विशाल नेत्र सभी सुन्दर थे। महादेवको भगवती उमाके साथ देखकर ब्रह्मा और विष्णुने पुनः उनकी स्तुति की। अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उन्हें महाबली होनेका आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम दोनों मेरे दाहिने एवं बाम भागसे उत्पन्न हुए हो। यह भी बताया कि मैं ही सृष्टि, पालन और संहारका कर्त्ता हूँ तथा सच्चिदानन्द स्वरूप निर्विकार परब्रह्म परमात्मा हूँ। वास्तवमें सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणों अथवा कार्योंके भेदसे मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करके प्रकट हुआ हूँ।

उपमन्युको क्षीर समुद्र देना

उपमन्यु व्याघ्रपाद मुनिके पुत्र थे। वे शैशवसे ही माताके साथ मामाके घरमें रहते थे जो दैववश दरिद्र थे। एक दिन उन्हें (उपमन्युको) बहुत कम दूध पीने को मिला इसलिए अपनी मातासे वे बार-बार और दूध मांगने लगे। उनकी तपस्विनी माताने कुछ बीजोंको पीसकर पानीमें घोलकर उन्हें पीनेको दे दिया। माँके दिये उस दूधको पीकर बालक उपमन्युको संतोष न हुआ। वे रोने लगे। इससे माँको बहुत दुखः हुआ। उन्होंने बेटेको समझाते हुए कहा, 'बेटा! हमलोग सदा वनमें निवास करते हैं। हमें यहाँ पर्याप्त मात्रामें दूध कहाँसे मिल सकता है; वह तो भगवान् शिवकी कृपाके विना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं।'

माताकी यह बात सुनकर उपमन्युने भगवान् शिवकी आराधना करनेका निश्चय किया। वे तपस्याकेलिए हिमालय पर्वतपर गये और वहाँ वायु पीकर रहने लगे। उन्होंने आठ ईंटोंका एक मन्दिर बनाया और उसके भीतर मिट्टीके शिवलिंगकी स्थापना करके वन्य पत्र-पुष्पादि लेकर भक्तिभावसे पंचाक्षर मन्त्रके उच्चारणद्वारा साम्ब शिवकी दीर्घ काल तक पूजा की।

बालक उपमन्युकी तपस्यासे चराचर प्राणियोंसहित त्रिभुवन सन्तप्त हो उठा। तब देवताओंकी प्रार्थनासे उपमन्युके भक्तिभावकी परीक्षा लेनेकेलिए भगवान् शंकर उपमन्युके समीप पधारे। उस समय शिवने देवराज इन्द्रका, पार्वतीने शचीका, नन्दीश्वर वृषभने ऐरावत हाथीका तथा शिवके गणोंने सम्पूर्ण देवताओंका रूप धारण कर लिया था। निकट आनेपर

उन्होंने बालक उपमन्युको वर मांगनेकेलिए कहा। उपमन्युने केवल शिवभक्ति मांगी। इस बालकने भगवान् शिवके अतिरिक्त दूसरे किसीसे कुछ भी लेना अस्वीकार कर दिया। इन्द्रके द्वारा शिवकी निन्दा करनेपर उपमन्यु इन्द्रको मारकर स्वयं भी मर जानेको उद्यत हो गये। उन्होंने इन्द्रको लक्ष्य करके जो अघोरास्त्र चलाया उसे नन्दीने पकड़ लिया और उन्होंने (उपमन्युने) स्वयंको जलानेकेलिए जो अग्निकी ज्वाला धारण की उसे भगवान् शिवने शान्त कर दिया। फिर वे सब के सब अपने यथार्थ रूपमें प्रकट हो गये। शिवने उपमन्युको अपना पुत्र माना और कहा, 'वत्स! मैं तुम्हारा पिता और पार्वती देवी तुम्हारी माता हैं। वरदानस्वरूप मैं तुम्हारे लिए दूध, दही और मधुके सहस्त्रों समुद्र देता हूँ।' ऐसा कहकर शम्भुने उन्हें पिण्डीभूत एवं अविनाशी साकार क्षीरसागर ही दे दिया।

अर्जुनकी सहायताकेलिए किरातरूप धारण करके उनके भयको दूर करना

एक बार व्यासजीके उपदेशानुसार विधिपूर्वक स्नान तथा न्यास आदि करके अर्जुन परम भक्तिके साथ इन्द्रकील पर्वतपर शिवजीका स्मरण करके उनके सर्वोत्कृष्ट पंचाक्षर मन्त्रका जप करते हुए घोर तप करने लगे। उस तपस्याका ऐसा उत्कृष्ट तेज प्रकट हुआ कि देवगण विस्मित हो गये। वे शिवजीके पास जाकर कहने लगे, 'सर्वेश! एक मनुष्य आपकी तपस्यामें निरत है। वह व्यक्ति जो कुछ चाहता है उसे आप कृपा करके दे दीजिये।' तब उदारबुद्धि एवं प्रसन्नात्मा महाप्रभु शिवजीने देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

उसी समय दुरात्मा दुर्योधनकी प्रेरणासे मूक नामक दैत्य शूकरके रूपमें अर्जुनकी तपस्यामें विघ्न उत्पन्न करनेकेलिए वहाँ आया। अर्जुनकी दृष्टि उस मूक नामक असुरपर पड़ी। वे शिवजीके पादपद्मोंका स्मरण करके सोचने लगे, 'इसे देखते ही मेरा मन व्याकुल हो गया है और इन्द्रियाँ कलुषित हो उठी हैं, अतः निःसन्देह यह शत्रु होनेके कारण मार डालने योग्य है।' यों विचारकर अर्जुन बाणका संधान करके वहीं डटकर खड़े हो गये।

इसी बीच भक्तवत्सल भगवान् शंकर अर्जुनकी रक्षा, उनकी भक्तिकी परीक्षा और उस दैत्यका नाश करनेकेलिए शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। उस समय वे महान् अद्भुत सुशिक्षित भीलका रूप धारण किये हुए थे। इसी

बीच शूकरकी गुर्राहट दसो दिशाओंमें गूंज उठी। उस वनेचरके अद्भुत शब्दसे घबड़ाकर अर्जुन सोचने लगे, 'अहो! क्या ये भगवान् शिव तो नहीं जो यहाँ मेरा शुभ करनेकेलिए इस रूपमें पधारे हैं।' इस प्रकार अर्जुन उस शूकरके विषयमें तरह-तरहकी बातें सोच ही रहे थे कि इतनेमें बाणका लक्ष्यभूत शूकर वहाँ आ पहुँचा। उधर किरात-वेशधारी शिव भी उस शूकरके पीछे लगे हुए दीख पड़े। भक्तवत्सल भगवान् शंकर अर्जुनकी रक्षाकेलिए बड़े वेगसे आगे बढ़े। संयोगवश अर्जुन एवं शिव दोनोंने एक साथ ही उस शूकरपर बाण चलाया। शिवजीके बाणका लक्ष्य उसका पुच्छ-भाग और अर्जुनके बाणका लक्ष्य उसका मुखभाग था। शिवजीका बाण उसके पुच्छभागसे प्रवेश करके मुखके रास्ते निकल गया और शीघ्र ही भूमिमें विलीन हो गया। अर्जुनका बाण उसके पिछले भागसे निकलकर बगलमें ही गिर पड़ा। शूकर रूपधारी दैत्य उसी क्षण मरकर भूतलपर गिर पड़ा। उसका वध करके एवं अर्जुनको बचाकर भगवान् शंकरका मन संतुष्ट हो गया और अर्जुन भी मन ही मन सुखका अनुभव करते हुए कहने लगे कि अवश्य ही अद्भुत रूप धारण करनेवाले भगवान् शिवजी ने ही दैत्यक मारकर मेरी रक्षा की है।

कामदेवको भस्म करना

इन्द्रके कथनानुसार शिवको मोहनेकेलिए कामदेव अपनी पत्नी रति और मित्र वसन्तको साथ ले बड़ी प्रसन्नताके साथ उस स्थानपर गया जहाँ साक्षात् योगीश्वर शिव उत्तम तपस्या कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर उसने भगवान् शिवपर अपने बाण चलाये। तब शंकरजीके मनमें कामभाव उत्पन्न होने लगा और उनका धैर्य छूटने लगा। अपने धैर्यका ह्रास होता देख महायोगी महेश्वर अत्यन्त विस्मित हो मन ही मन सोचने लगे कि मैं तो उत्तम तपस्या कर रहा था, किस कुकर्मीने मेरे चित्तमें विकार उत्पन्न कर दिया।

इस तरह विचार करके सत्पुरुषोंके आश्रयदाता महायोगी शिव शंका-युक्त हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखने लगे। इसी समय वामभागमें बाण खींचे खड़े हुए कामदेवपर उनकी दृष्टि पड़ी। वह मूढ़चित्त मदन अपनी शक्तिके गर्वमें आकर पुनः अपना बाण छोड़ना ही चाहता था। इस अवस्थामें भगवान् शंकरको तत्काल रोष चढ़ आया। उधर बाण सहित धनुष लिये

खड़े हुए कामने भगवान् शंकरपर अपना अमोघ अस्त्र छोड़ दिया, जिसका निवारण करना बहुत कठिन था। परन्तु भगवान् शिवपर वह अमोघ अस्त्र भी मोघ हो गया। फलस्वरूप कुपित परमेश्वरके पास जाते ही वह शान्त हो गया। शिवपर अपने अस्त्रके व्यर्थ हो जानेपर मन्मथको बड़ा भय हुआ। भगवान् मृत्युंजयको सामने देखकर वह काँप उठा और इन्द्रादि समस्त देवताओंका स्मरण करने लगा। कामदेवके स्मरण करनेपर वे इन्द्र आदि समस्त देवता वहाँ आ पहुँचे और शम्भुको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।

देवता स्तुति कर ही रहे थे कि कुपित हुए भगवान् हरके ललाटके मध्य-भागमें स्थित तृतीय नेत्रसे तत्काल अग्नि प्रकट हुई। उसकी ज्वालाएँ ऊपरकी ओर उठ रही थीं। उसकी प्रभा प्रलयाग्निके समान प्रतीत होती थी। वह ज्योति तुरत ही आकाशमें उछली और पृथ्वीपर गिर पड़ी। फिर अपने चारों ओर चक्कर काटती हुई धराशायिनी हो गयी। 'भगवन्! क्षमा कीजिये! क्षमा कीजिये!!' यह बात देवताओंके मुखसे निकलनेके पहले ही उस अग्निने कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया।

शिवको विष्णुका नेत्रकमल चढ़ाना तथा शंकरका प्रसन्न होकर उन्हें चक्र देना

एकबार दैत्य अत्यन्त प्रबल होकर लोगोंको पीड़ा देने तथा धर्मका नाश एवं लोप करने लगे। उन महाबली और पराक्रमी दैत्योंसे पीड़ित हो देवताओं ने देवरक्षक भगवान् विष्णुसे अपना सारा दुःख कहा। तब श्रीहरि कैलाशपर जाकर भगवान् शिवकी विधिपूर्वक आराधना करने लगे। उन्होंने हजार नामोंसे शिवकी स्तुति प्रारम्भ की। शिवके एक-एक नामपर वे एक-एक कमल चढ़ाते जा रहे थे। भगवान् शंकरने विष्णुके भक्ति-भावकी परीक्षा लेनेकेलिए उनके लाये हुए एक हजार कमलोंमेंसे एकको छिपा दिया। शिवकी मायाके कारण घटी हुई इस घटनाका भगवान् विष्णुको पता नहीं लगा। उन्होंने एक फूल कम जानकर उसकी पूर्ति-हेतु अपने कमल सदृश एक नेत्रको ही निकालकर चढ़ा दिया। यह देखकर सबका दुःख दूर करनेवाले भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए और वहीं सामने तत्काल प्रकट होकर श्रीहरिसे बोले, 'हरे! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम इच्छा-

ुसार वर मांगो। तुम्हारेलिए मुझे कुछ भी अदेय नहीं है। विष्णु बोले, 'नाथ! आप अन्तर्यामी हैं अत: सब कुछ जानते हैं तथापि आपके आदेशका गौरव रखनेकेलिए कहता हूँ। दैत्योंने सारे जगत्को पीड़ित कर रखा है। हमलोगोंको सुख नहीं मिलता। मेरा अस्त्र-शस्त्र दैत्योंके वधमें काम नहीं करता। इसीलिए मैं आपकी शरणमें आया हूँ।' श्रीविष्णुका यह वचन सुनकर देवाधिदेव महेश्वरने दैत्योंके वधार्थ तेजोराशिमय अपना दिव्य सुदर्शन चक्र उन्हें दे दिया। उसको पाकर भगवान् विष्णुने उन प्रबल दैत्योंका उस चक्रके द्वारा संहार कर डाला।

शंकरके अर्धनारीश्वर होनेकी कथा

सृष्टिके आदिमें जब सृष्टिकर्ता ब्रह्माके द्वारा रची हुई प्रजा विस्तारको प्राप्त नहीं हो रही थी तब ब्रह्मा अत्यन्त चिन्ताकुल हो गये। उसी समय आकाशवाणी हुई, 'ब्रह्मन्! अब मैथुनी-सृष्टिकी रचना करो।' उस व्योम-वाणीको सुनकर ब्रह्माने मैथुनी-सृष्टि उत्पन्न करनेका विचार किया, परन्तु इससे पहले नारियोंका कुल ईशानसे प्रकट ही नहीं हुआ था, इसलिये पद्मयोनि ब्रह्मा मैथुनी-सृष्टि रचनेमें समर्थ न हो सके। शम्भुकी कृपाके विना मैथुनी-प्रजा उत्पन्न नहीं हो सकती ऐसा विचारकर ब्रह्मा तप करनेको उद्यत हुए। उस समय ब्रह्मा पराशक्ति शिवासहित परमेश्वर शिवका प्रेमपूर्वक हृदयमें ध्यान करके घोर तप करने लगे। तदन्तर तपोऽनुष्ठानमें लगे हुए ब्रह्माके उस तीव्र तपसे थोड़े ही समयमें शिवजी प्रसन्न हो गये। तब वे कष्टहारी शंकर पूर्ण सच्चिदानन्दकी कामदा पूर्तिमें प्रविष्ट होकर अर्धनीश्वरके रूपमें ब्रह्माके निकट प्रकट हो गये।

गजासुरका वध

गजासुर महिषासुरका पुत्र था। जब उसने सुना कि देवताओंसे प्रेरित होकर देवीने मेरे पिताको मार दिया था तब उसका बदला लेनेकी भावनासे उसने घोर तप किया। उसके तपकी ज्वालासे सब जलने लगे। देवताओंने जाकर ब्रह्मासे अपना दु:ख कहा। ब्रह्माने गजासुरके सामने प्रकट होकर उसके प्रार्थनानुसार उसे कामके वशीभूत किसी भी स्त्री या पुरुषसे न मारे जानेका वरदान दिया।

वरके अभिमानमें आकर उसने सब दिशाओं तथा सब लोकपालोंके स्थानोंपर अधिकार कर लिया। भगवान् शंकरकी राजधानी आनन्दवन

काशीमें भी वह सबको सताने लगा। देवताओंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की। कामके वशमें न होनेवाले शंकरने घोर युद्धमें हराकर उसे मार डाला।

बाणकन्या उषाकी कथा

बाणासुरकी कन्या उषा वैशाख मासमें माधवकी पूजा करके मांगलिक शृंगारसे सुसज्जित होकर रातके समय अपने अन्त:पुरमें सो रही थी। उसी समय वह स्त्रीभाव (कामभाव) को प्राप्त हो गयी। देवी पार्वतीकी शक्तिसे उषाका स्वप्नमें श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धसे मिलन हुआ। जागनेपर वह स्वप्नकी बातें याद करके व्याकुल हो गयी और उसने अपनी सखी चित्रलेखासे स्वप्नमें मिले हुए उस पुरुषको ला देनेकी प्रार्थना की। तब चित्रलेखाने कहा, 'देवि ! स्वप्नमें तुमने जिस पुरुषको देखा है उसे भला मैं कैसे ला सकती हूँ जब कि मैं उसे जानती ही नहीं। इसलिए जिस पुरुषने तुम्हारे मनका अपहरण किया है उसे तुम्हीं बताओ। वह यदि त्रिलोकमें कहीं भी होगा तो मैं उसे लाकर तुम्हारा कष्ट दूर कर दूँगी।' ऐसा कहकर चित्रलेखाने वस्त्रके परदेपर देवताओं, दैत्यों, दानवों, गन्धर्वों, सिद्धों, नागों और यक्षों आदिके चित्र अंकित किये। फिर वह मनुष्योंके चित्र बनाने लगी। उसने वासुदेव, राम, कृष्ण और प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धके चित्र खींचे। अनिरुद्धके चित्रको देखते ही उषा लज्जित हो गयी। उसका मुख अवनत हो गया और हृदय हर्षसे परिपूर्ण हो गया। उसने चित्रलेखासे कहा, 'सखि ! रात्रिमें मेरे पास आकर जिसने मेरे चित्तरूपी रत्नको चुरा लिया है, वह चोर पुरुष यही है।' तदनन्तर उषाके अनुरोधपर चित्रलेखाने ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीको तीसरे पहर द्वारिकापुरी पहुँचकर पलंगपर बैठे हुए अनिरुद्धको क्षणमात्रमें महलमेंसे उठाकर उषाके पास पहुँचा दिया। वह दिव्य योगिनी थी इसलिए उसे इस कार्यमें जरा भी कठिनाई नहीं हुई। उषा अपने प्रियतमको पाकर प्रसन्न हो गयी।

त्रिपुरदाहकी कथा

स्कन्दके द्वारा तारकासुरके मार डाले जानेपर उसके तीनों पुत्रोंने सन्तप्त होकर सभी उत्तमोत्तम एवं मनोहर भोगोंका परित्याग करके मेरु पर्वतकी एक कन्दरामें जाकर अद्भुत तपस्या आरम्भ की। यशस्वी ब्रह्माने उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो उन्हें वर मांगनेको कहा। उन्होंने वर मांगा, 'भगवन् ! यद्यपि हमलोग अत्यन्त पराक्रमी हैं तथापि हमारे पास कोई ऐसा घर नहीं

है जहाँ हम शत्रुओंसे सुरक्षित रहकर सुखपूर्वक निवास कर सकें।' इस प्रकार उन दैत्योंका कथन सुनकर सृष्टिकर्त्ता लोकपितामह ब्रह्माने ऐसा ही करनेका आश्वासन दिया। ब्रह्माने मयको आज्ञा देकर उनकेलिए तीन पुरोंका निर्माण करवाया। उन तीनों पुरोंको पाकर महान् बलपराक्रमसे सम्पन्न तारकासुरके लड़के उनमें समस्त भोगोंका उपभोग करते हुए रहने लगे।

तदनन्तर तारकपुत्रोंके प्रभावसे दग्ध हुए इन्द्र आदि सभी देवता दु:खी हो परस्पर सलाह करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये। वहाँ सम्पूर्ण देवताओंने मिलकर उनसे कहा कि त्रिपुरोंके स्वामी तारकपुत्रोंने तथा मायासुरने समस्त स्वर्गवासियोंको सन्तप्त कर दिया है। आप उनके वधका कोई उपाय बताइये जिससे हमलोग सुखी रह सकें। ब्रह्माने देवताओंको शिवजीके पास भेज दिया।

ब्रह्माजीके आदेशानुसार सभी देवता उस स्थानपर गये जहाँ वृषभ-ध्वज शिव रहते थे। तब उन सबने अंजलि बाँधकर देवेश्वर शिवको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उनसे अपनी विपत्तिकी कथा निवेदित की। देवताओंकी यह बात सुनकर शिवजीने समयकी अनुपयुक्तता बतलाकर उन्हें विष्णुके पास भेज दिया।

तदनन्तर वे देवगण विष्णुके समीप गये। वहाँ ऐसी व्यवस्था की गयी जिससे वे असुर शैव-धर्मसे विमुख होकर सर्वथा अनाचार-परायण हो गये। तब शिवेच्छासे भाइयों सहित उस दैत्यराजकी तथा मयकी भी शक्ति कुण्ठित हो गयी।

जब तीनों पुरोंकी पूर्ववत् दशा हो गयी तब भगवान् विष्णु और ब्रह्माके साथ सब देवता कैलास पर्वतपर गये और सुन्दर शब्दोंमें शिवकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार जब सुरेन्द्र आदि देवोंने महेश्वरकी स्तुति की और विष्णुने ईशान सम्बन्धी मंत्रका जप किया तब सर्वेश्वर भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और वृषपर सवार हो वहीं प्रकट हो गये। सम्पूर्ण देवताओं की ओर कृपाभरी दृष्टिसे देखकर गम्भीर वाणीमें श्री हरिसे बोले, 'उन अधर्मनिष्ठ दैत्योंके तीनों पुरोंको मैं नि:संदेह नष्ट कर सकता हूँ। किंतु वे महा दैत्य मेरे भक्त हैं और उनका मन सुदृढ़ रूपसे मुझमें लगा रहता है। अत: मेरेद्वारा मारने योग्य नहीं हैं। इसलिए जिन्होंने त्रिपुरवासी सारे

दैत्योंको धर्मभ्रष्ट करके मेरी भक्तिसे विमुख कर दिया है, वे विष्णु अथवा अन्य कोई भी उन्हें क्यों नही मारते ?' तब ब्रह्माने कहा कि भगवन् ! आपके सिवा कोई उनका वध नहीं कर सकता। ब्रह्मा और विष्णुसहित देवोंकी वह बात सुनकर शिवजी प्रसन्न होकर पुनः बोले, 'ब्राह्मण, देवगण तथा मुनियों ! अब त्रिपुरको नष्ट हुआ ही समझो। दिव्य रथ, सारथि, धनुष और उत्तम बाण तुम लोग तैयार करो।' तब अनेकविध आश्चर्योंसे युक्त दिव्यरथपर आरूढ़ होकर तीनों पुरोंको पूर्णतया दग्ध करनेकेलिए भगवान् शंकर ज्यों ही उद्यत हुए त्यों ही आकाशवाणी हुई, 'ऐश्वर्यशाली जगदीश्वर ! जब तक आप गणेशकी अर्चना नहीं कर लेंगे तब तक इन तीनों पुरोंका संहार नहीं कर सकेंगे।' ऐसी बात सुनकर भगवान् शिवने भद्रकालीको बुलाकर गजाननका पूजन किया। जब गणाधिपकी पूजा करके महादेवजी स्थित हुए तब वे तोनें पुर कालवश शीघ्र ही एकताको प्राप्त हो गये। त्रिपुरोंके परस्पर मिलकर एक हो जानेपर देवताओंको महान् हर्ष हुआ। तदनन्तर शिवजीने धनुषकी डोरी चढ़ाकर उसपर पूज्य पाशुपतास्त्र नामक बाणका सन्धान किया और उसे वे त्रिपुरपर छोड़नेका विचार करने लगे। उन्होंने धनुषकी टंकार तथा दुस्सह सिंहनाद करके अपना नाम घोषित किया और उन महासुरोंको ललकार कर करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान उस भीषण बाणको उनपर छोड़ दिया। तब जिसकी नोकपर अग्निदेव प्रतिष्ठित थे और जो विशेष रूपसे पापका विनाशक था उस महान् जाज्वल्यमान शीघ्रगामी बाणने उन त्रिपुर-निवासी दैत्योंको दग्ध कर दिया। तत्पश्चात् वे तीनों पुर भी भस्म हो गये और एक साथ ही भूमिपर गिर पड़े।

मृण्मय शंकरकी पूजाका विधान

मिट्टी की बनी हुई देवप्रतिमाओंकी पूजा इस भूतलपर अभीष्टदायक मानी गयी है। नदी, पोखरे अथवा कुएँमें प्रवेश करके पानीके भीतरसे मिट्टी ले आवे। फिर गन्धचूर्णके द्वारा उसका संशोधन करके उसे शुद्ध मण्डपमें रख कर पीसे। उसके बाद हाथसे देवताओंकी प्रतिमा बनाये और दूधसे उसका संस्कार करे। उस प्रतिमामें अंग प्रत्यंग अच्छी तरह प्रकट हुए हों तथा वह प्रतिमा सब प्रकारसे अस्त्रशस्त्रसे सम्पन्न बनायी गयी हो। द्विजको

गणेश, सूर्य, विष्णु, दुर्गा, शिव और शिवलिंगकी प्रतिमा बनाकर सदा पूजन करना चाहिए।

सम्पूर्ण मनोवांछित फलकी सिद्धिकेलिए ऊँची भक्ति-भावनाके साथ उत्तम पार्थिव लिंगकी वेदोक्त विधिसे किसी पवित्र स्थानमें पूजा करनेका विधान है। शिवलिंग बनानेकेलिए प्रयत्नपूर्वक मिट्टीका संग्रह करके उस मिट्टीको शुद्ध स्थानमें रखे। फिर उसे जलसे सानकर पिण्डी बना ले और वेदोक्त विधिसे सुन्दर शिवलिंगकी रचना करे। तत्पश्चात् भोग और मोक्ष रूपी फलोंकी प्राप्तिकेलिए भक्तिपूर्वक उसका पूजन करे।

दक्षयज्ञका विध्वंस

महादेवजीने जब देवर्षि नारदके मुखसे सुना कि अपने पिता दक्षसे अपमानित होनेके कारण सतीने प्राण त्याग दिये हैं और यज्ञवेदीसे प्रकट हुए ऋभुओंने उनके पार्षदोंकी सेनाको मारकर भगा दिया है तब वे बड़े ही कुपित हुए। उन्होंने उग्ररूप धारणकर अपनी एक जटा उखाड़ी जो बिजली और आगकी लपटके समान दीप्त हो रही थी। उन्होंने सहसा खड़े होकर गम्भीर अट्टहासके साथ उसे पृथ्वी पर पटका। उससे तुरत ही एक अदभुत मेघ-सदृश श्यामल पुरुष उत्पन्न हुआ। उसका शरीर स्वर्गको स्पर्श कर रहा था। उसकी एक हजार भुजाएँ थीं, सूर्यके समान जलते हुए तीन नेत्र थे, विकराल दाढ़ें थीं और अग्निकी ज्वालाओंके समान लाल-लाल जटाएँ थीं। उस अद्भुत पुरुषको शिवने दक्षयज्ञको नष्ट-भ्रष्ट कर देनेकी आज्ञा दी। देवाधिदेव शंकरकी ऐसी आज्ञा सुनकर वह वीरभद्र उनकी परिक्रमा करके चलनेको तैयार हो गया। उसके साथ शंकरके पार्षदोंकी एक विशाल सेना थी। वे भयंकर सिंहनाद करते हुए एक अति विकराल त्रिशूल हाथमें लेकर दक्षके यज्ञमण्डपकी ओर दौड़े। उनका त्रिशूल संसार-संहारक मृत्युका भी संहार करनेमें समर्थ था। भगवान् रुद्रके और भी बहुत से सेवक गर्जना करते हुए उनके पीछे हो लिए। उधर यज्ञशालामें बैठे हुए ऋत्विज, यजमान, सदस्य तथा अन्य ब्राह्मण और ब्राह्मणियोंने जब उत्तर दिशाकी ओर धूल उड़ती देखी तब वे सोचने लगे, 'अरे! यह अँधेरा सा कैसा होता आ रहा है? यह धूल कहाँ से आ गयी? क्या इसी समय संसारका प्रलय तो नहीं होने वाला है?' तब दक्षपत्नी प्रसूती एवं अन्य स्त्रियोंने व्याकुल होकर कहा, 'प्रजापति दक्षने अपनी सारी कन्याओंके सामने बेचारी निर-

पराधा सतीका तिरस्कार किया था, मालूम होता है यह उसी पापका फल है। पत्नीको मिले तिरस्कारकी वेदनासे दुःखी शंकर ही यज्ञके नाश-हेतु आते हुए प्रतीत हो रहे हैं। प्रलयकाल उपस्थित होनेपर जिस समय वे अपने जटाजूटको बिखेरकर तथा शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित अपनी भुजाओंको ध्वजाओंके समान फैलाकर तांडव नृत्य करते हैं उस समय उनके त्रिशूलके फलोंसे दिग्गज बँध जाते हैं तथा उनके मेघ-गर्जनके समान भयंकर अट्टहाससे दिशाएँ विदीर्ण हो जाती हैं। उस समय उनका तेज असह्य होता है। क्रोध में भरे हुए उन भगवान् शंकरको बार-बार कुपित करनेवाले पुरुष का—भले ही वह साक्षात् विधाता ही क्यों न हो—कल्याण नहीं हो सकता है।' जो लोग महात्मा दक्षके यज्ञमें बैठे थे वे भयके कारण एक दूसरेकी ओर कातर दृष्टि से निहारते हुए तरह-तरहकी बातें कर रहे थे। इतनेमें ही आकाश और पृथ्वीमें सब ओर सहस्रों भयंकर उत्पात होने लगे। इसी समय दौड़कर आए हुए रुद्र-सेवकोंने उस महान् यज्ञमण्डपको सब ओरसे घेर लिया। वे सभी तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थे। उनमेंसे किसीने यज्ञशालाके पश्चिमकी ओर स्थित पत्नीशालाको, किसीने यजमानगृहको और किसीने पाकशालाको तहस-नहस कर दिया। किसीने यक्षके पात्र फोड़ दिये, किसीने अग्नियोंको बुझा दिया और किसीने बेदीकी सीमाके सूत्रोंको तोड़ डाला। कोई मुनियोंको तंग करने लगे तथा कोई स्त्रियोंको डराने धमकाने लगे। मणिमानने भृगु ऋषिको बांध लिया, वीरभद्रने प्रजापति दक्षको कैद कर लिया, चण्डीने पूजाको और नन्दीश्वरने भग देवताको पकड़ लिया। भगवान् शंकरके पार्षदोंकी यह भयंकर लीला देखकर सभी ऋत्विज, सदस्य और देवता जहाँ-तहाँ भाग गये। वीरभद्रने हवन करते हुए भृगुकी दाढ़ी-मूँछ नोच ली क्योंकि उन्होंने प्रजापतिकी सभामें मूछें ऐंठते हुए महादेवजीका उपहास किया था। उन्होंने भगदेवताको पृथ्वीपर पटक दिया और उनकी आँखें निकाल लीं क्योंकि उन्होंने ही दक्षको उकसा कर देवसभामें महादेवको शाप दिलवाया था। उन्होंने पूजाके दाँत तोड़ दिये क्योंकि जब दक्षने महादेवजीको गालियाँ दी थीं उस समय वह दाँत दिखाकर हँसी थी। फिर वे दक्षकी छाती पर बैठकर एक तेज तलवारसे उनका सिर काटने लगे। परन्तु बहुत प्रयत्न करनेपर भी उस समय उसे धड़से अलग न कर सके। जब किसी भी प्रकारके अस्त्रशस्त्रसे दक्षकी त्वचा नहीं कटी तब उन्होंने यज्ञमण्डपमें यज्ञपशुओंको जिस प्रकार मारा जाता है उसी प्रकार दक्षरूप उस यजमान

पशुका सिर धड़से अलग कर दिया। यह देखकर भूत, प्रेत एवं पिशाचादि उनके इस भयंकर कर्मकी प्रशंसा करते हुए 'वाह-वाह' करने लगे। दक्षके दल-वालोंमें हाहाकार मच गया। वीरभद्रने अत्यन्त कुपित होकर दक्षके सिरको यज्ञकी दक्षिणाग्निमें डाल दिया और उस यज्ञशालामें आग लगाकर यज्ञका विध्वंस करके कैलाश पर्वत लौट गये।

ब्रह्मचारीके रूपमें पार्वतीके साथ संवाद

पर्वतराजपुत्री पार्वती भगवान् शंकरको पतिरूपमें प्राप्त करनेकेलिए तपस्या कर रही थीं। एक बार भगवान् शंकर देवी पार्वतीके तपकी परीक्षा लेनेके विचारसे जटाधारी तपस्वीका रूप धारण करके उनके आश्रमपर पधारे। उन अद्भुत तेजस्वी ब्राह्मणको देखकर पार्वतीने उनकी विधिवत् पूजा करके प्रसन्नता और प्रेमके साथ उनसे उनका परिचय एवं कुशल समाचार पूछा। पार्वतीके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए उस ब्राह्मणने कहा, 'मैं इच्छानुसार विचरनेवाला ब्राह्मण हूँ। परन्तु तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? और इस निर्जन वनमें किसलिए ऐसी घोर तपस्या कर रही हो? तुम्हारे पिता कौन है और तुम्हारा नाम क्या है?' पार्वती बोलीं, 'मैं पर्वतराज हिमालयकी पार्वती नामकी पुत्री हूँ। पूर्वजन्ममें मैं प्रजापति दक्षकी सती नामकी पुत्री थी। पिताके द्वारा की गयी पतिकी निन्दासे कुपित हो मैंने योगके द्वारा अपना शरीर त्याग दिया था। इस जन्ममें भी भगवान् शिव मुझे पति-रूपमें मिल जाते परन्तु भाग्यवश कामको भस्म करके वे मुझे भी छोड़कर चले गये। तब विरहतापसे उद्विग्न हो तपस्याकेलिए दृढ़ निश्चय करके मैं पिताके घर से यहाँ गंगाजीके तटपर चली आयी। यहाँ दीर्घकालतक तपस्या करके भी मैं अपने पति (भगवान् शंकर) को न पा सकी। इसलिए अग्निमें प्रवेश कर ही जाना चाहती थी कि इतनेमें आपको देखकर क्षण भरकेलिए ठहर गयी। अब आप जाइये और मैं पतिको पानेकेलिए अग्निमें प्रवेश करूंगी।' इतना कहकर पार्वती ब्राह्मण देवताके सामने ही अग्निमें समा गयीं। थोड़ी देर बाद जब वे आकाशकी ओर ऊपर उठने लगीं तब ब्राह्मण-रूपधारी शिवने पुनः पार्वतीसे तपस्याका ठीक-ठीक कारण पूछा। पार्वतीकी आज्ञासे उनकी विजया नामक प्राणप्यारी सखीने उस जटाधारी तपस्वीसे कहा, 'मेरी सखी पार्वती और काली नामसे विख्यात है। इसकी माताका नाम मेना है।

ये भगवान् शिवके सिवा किसी दूसरेको पतिरूपमें नहीं चाहतीं। भगवान् शिवकी प्राप्तिकेलिए ही मेरी सखीने ऐसा घोर तप प्रारम्भ किया है।'

सखीके ऐसा कहनेपर दण्डधारी ब्राह्मण देवता पुन: बोले, 'महादेवके प्रति मेरे मनमें गौरवबुद्धि है, अत: मैं उनको सब प्रकारसे जानता हूँ। वृषभके चिह्नसे अंकित ध्वजा धारण करने वाले महादेव सारे शरीरमें भस्म लगाये रहते हैं, सिरपर जटा धारण करते हैं, धोतीकी जगह बाघकी खाल पहनते हैं और चादरकी जगह हाथीकी खाल ओढ़ते हैं। हाथमें भीख मांगनेकेलिए एक नरकपाल लिये रहते हैं। साँप उनके अंगोंमें लिपटे रहते हैं। उनका जन्म कब, कहाँ और किससे हुआ यह आजतक प्रकट नहीं हुआ। उनकी दस भुजाएं हैं। किन्तु देवि! मैं समझ नहीं पाता कि किस कारणसे तुम उन्हें अपना पति बनाना चाहती हो। उनमें तो वरमें पाया जाने वाला एक भी गुण नहीं है। पुन: तुम तो स्त्रियोंमें रत्न हो, तुम्हारे पिता समस्त पर्वतोंके राजा हैं, फिर तुम क्यों इस उग्र तपस्याके द्वारा वैसे कुरूप एवं अमंगलकारी पतिको पानेकी अभिलाषा करती हो? इन्द्र आदि लोकपालोंको त्यागकर शिवके साथ तुम्हारा सम्बन्ध मुझे बड़ा ही अनुचित मालूम हो रहा है। तुम चन्द्रमुखी हो और शिव पंचमुखी कहे गये हैं। तुम्हारे अंगमें चन्दनका अंगराग होगा और शिवके शरीरमें चिताका भस्म। कहाँ तुम्हारे अंगोंमें दिव्य आभूषण और कहाँ शंकरके सर्वांगमें लिपटे हुए सर्प? सवारीके नामपर उनके पास एक बूढ़ा बैल है। उनकी कोई जाति नहीं है। पिशाच ही उनके सहायक हैं और विष तो उनके कण्ठमें ही निवास करता है। कहाँ तुम्हारे कण्ठमें सुन्दर हार और कहाँ उनके गलेमें नरमुण्डोंकी माला? तुम्हारा और हरका रूप ठीक एक दूसरेका विरोधी है। अत: मुझे तो यह सम्बन्ध नहीं रुचता। फिर भी तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो।'

यह बात सुनकर पार्वती शिवकी निन्दा करने वाले उस ब्राह्मणपर मन ही मन कुपित हो उठीं और उससे इस प्रकार बोलीं, 'ब्राह्मण देवता, आपने जो कुछ कहा है वह सब मुझे ज्ञात है। यदि शिवके विषयमें आपका ज्ञान ठीक होता तो आप ऐसी युक्ति एवं बुद्धिके विरुद्ध बात नहीं बोलते। यह ठीक है कि कभी-कभी महेश्वर अपनी लीलाशक्तिसे प्रेरित हो अद्भुत वेश धारणकर लिया करते हैं परन्तु वास्तवमें ये साक्षात् परब्रह्म हैं। आप ब्रह्मचारीका रूप धारण कर मुझे ठगनेके लिए यहाँ आये हैं। मैं भगवान्

शंकरके स्वरूपको भली प्रकार जानती हूँ। भगवान् शिवके भजनसे ही जीव मृत्युको जीतकर निर्भय हो जाता है। उन्हींके अनुग्रहसे विष्णु विष्णुत्व को, ब्रह्मा ब्रह्मत्व को और देवता देवत्वको प्राप्त हुए हैं। वे भगवान् स्वयं ही महाप्रभु हैं। उनके स्मरणमात्रसे ही सबका मंगल होता है। वे चिताका भस्म लगाते हैं परन्तु यदि उनका भस्म अपवित्र होता तो उनके शरीरसे गिरे भस्मको देवता लोग अपने सिरपर कैसे धारण करते ? मैं अपनी शुद्ध बुद्धिसे विचार कर शिवकेलिए वनमें आकर तपस्या कर रही हूँ। मेरे हृदयमें दीनोंपर अनुग्रह करने वाले उन महादेवको ही प्राप्त करने की इच्छा है।'

ऐसा कहकर गिरिराजकन्या चुप हो गयीं और निर्विकार चित्तसे भगवान् शिवका ध्यान करने लगीं। ब्राह्मण पुनः ज्यों ही फिर कुछ कहनेकेलिए उद्यत हुआ त्योंही पार्वतीने विजयासे उसे रोकनेका आदेश देते हुए कहा कि इस स्थानको छोड़कर हमलोग आजही किसी दूसरे स्थानमें चलें जिससे फिर इस अज्ञानीके साथ बात न करनी पड़े।

ऐसा कहकर उमाने ज्यों ही अन्यत्र जानेकेलिए पैर उठाया त्यों ही भगवान् शिवने अपने साक्षात् स्वरूपमें प्रकट होकर पार्वती का हाथ पकड़ लिया।

गंगाको अपने मस्तकपर धारण करना

भगीरथ अपने पूर्वज सगरपुत्रोंके उद्धारकेलिए गंगाको स्वर्गसे पृथ्वीपर लाना चाहते थे। एतदर्थ वे बड़ी भारी तपस्या करने लगे। तपस्या करते जब एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये तब पितामह ब्रह्माजी उनपर प्रसन्न हुए और देवताओंके साथ आकर तपस्यामें लगे भगीरथसे बोले, 'मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर मांगो।' तब महातेजस्वी भगीरथ हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गये और इस प्रकार बोले, 'यदि, आप मुझपर प्रसन्न हैं तो ऐसा उपाय कीजिए कि मेरे पूर्वज सगरके सभी पुत्रोंको मेरे हाथसे गंगाजीका जल प्राप्त हो।' ब्रह्माने 'एवमस्तु' कहते हुए उन्हें हिमालयकी पुत्री गंगाजीको धारण करनेकेलिए भगवान् शंकरको तैयार करनेको कहा, क्योंकि गंगाजीके गिरनेका वेग इस पृथ्वीकेलिए असह्य है। त्रिशूलधारी भगवान् शंकरके सिवा और कोई ऐसा नहीं है जो इन्हें धारण कर सके। इतना कहकर ब्रह्माजी अपने लोक चले गये।

देवाधिदेव ब्रह्माजीके चले जानेपर राजा भगीरथ पृथ्वीपर अंगूठेके अग्र भागसे खड़े हो एक वर्षतक भगवान् शंकरकी उपासनामें लगे रहे। वर्ष पूरा होनेपर भगवान् पशुपतिने प्रकट होकर भगीरथसे इस प्रकार कहा, 'मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य करूँगा। मैं गिरिराज-कुमारी गंगादेवीको अपने मस्तकपर धारण करूँगा। शंकरजीकी स्वीकृति मिल जानेपर हिमालयकी पुत्री गंगाजी बहुत बड़ा रूप धारण करके आकाशसे भगवान् शंकरके शोभायमान मस्तकपर गिरीं। गंगादेवीने यह सोचा था कि मैं अपने प्रखर प्रवाहके साथ शंकरजीको लेकर पातालमें चली जाऊँगी। उनके इस अहंकारको जानकर त्रिनेत्रधारी हर कुपित हो उठे और उन्होंने उस समय गंगाको अदृश्य कर देनेका विचार किया। गंगा भगवान् रुद्रके पवित्र मस्तकपर गिरीं, किन्तु भगवान् शिवके जटाजालमें उलझकर गंगा देवी वहाँसे निकलनेका मार्ग न पा सकीं और कई वर्षोंतक उस जटाजूटमें उलझी रहीं। पुनः भगीरथकी प्रार्थनापर शंकरकी कृपासे ही वे उस जटारूपी गुहासे मुक्ति पा सकीं।

समुद्र-मंथनके समय कालकूटका पान

सत्ययुगमें दिति-पुत्र दैत्यों एवं अदिति-पुत्र देवताओंके मनमें अजर-अमर और सदा नीरोग रहनेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। चिन्तन करते हुए उन विचारशील देवताओं और दैत्योंकी बुद्धिमें यह बात आयी कि यदि हमलोग क्षीरसागरका मन्थन करें तो उससे निश्चय ही अमृतमय रस प्राप्त करके हमलोग अजर-अमर हो सकेंगे। तदनन्तर समुद्रमन्थनका निश्चय करके उन देवताओं और दैत्योंने वासुकीनागको रस्सी और मन्दराचलको मथानी बनाकर क्षीरसागरको मथना आरम्भ किया। एक हजार वर्ष बीतनेपर रस्सी बने हुए सर्पके बहुसंख्यक मुख विष उगलते हुए मन्दराचलकी शिलाओंको अपने दाँतोंसे डसने लगे। इसके फलस्वरूप वहाँ अग्निके समान दाहक हालाहल नामक भयंकर विष ऊपरकी ओर उठकर देवताओं, असुरों और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत्को दग्ध करने लगा। यह देखकर देवता-लोग सबका कल्याण करने वाले पशुपति रुद्रकी शरणमें गये और त्राहि-त्राहिकी पुकार लगाकर उनकी स्तुति करने लगे।

देवताओंके इस प्रकार पुकारनेपर देवदेवेश्वर भगवान् शिव वहाँ प्रकट हुए। शंखचक्रधारी भगवान् श्रीहरि भी वहाँ उपस्थित हो गये। श्रीहरिने

त्रिशूलधारी भगवान्से कहा, 'सुरश्रेष्ठ! देवताओंके समुन्द्रमन्थन करनेपर आपकी अग्रपूजाके रूपमें प्राप्त इस विषको आप यहीं खड़े होकर ग्रहण करें।' ऐसा कहकर देवशिरोमणि विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये।

देवताओंका भय देखकर और भगवान् विष्णुकी बात सुनकर देवेश्वर भगवान् रुद्रने उस घोर हालाहल विषको अमृतके समान मानकर अपने कण्ठमें धारण कर लिया तथा देवताओंको विदा करके वे अपने स्थानको चले गये।

परिशिष्ट-२

स्तुतिकुसुमांजलिमें समाहित शिव-नामावलि

स्तुतिकुसुमांजलिमें कविने शिवके अनेक नामोंका उल्लेख किया है। इनमेंसे कुछ नाम तो शिवसहस्रनाममें अंकित नाम ही हैं और कुछका प्रयोग कविने गुणधर्मके आधारपर समस्यन्त शब्दावलिके रूपमें किया है।

हम यहाँ स्तुतिकुसुमांजलिमें प्रयुक्त शिवके विभिन्न नामोंकी सूची प्रस्तुत कर रहे हैं :

१. अकृपणः[१] (न कृपणः अकृपणः)—दीनताशून्य अर्थात् दानियोंमें श्रेष्ठ। शंकर दानियोंमें अग्रगण्य होनेके कारणही औढ़रदानी आदि विशेषणोंसे भी सम्बोधित किये जाते हैं।

२. अगोचरः[२] (न गोचरः अगोचरः)—इन्द्रियजन्यप्रत्यक्षाविषयः। अर्थात् इन्द्रियों की सहायतासे होनेवाले सभी प्रकारके ज्ञानके अविषय।

३. अघोरः[३] (न घोरः जन्मजरामरणत्रासदः अघोरः) कल्याणदायी। न घोरः अघोरः—प्राणियोंको जन्मजरामरणादिके दुःखसे मुक्त करने वाले।

४. अच्युतः[४] (न च्यवते स्वरूपतः) अर्थात् जो अपने स्वरूपसे कभी भी च्युत न हो—विनाशरहित।

५. अज :[५] (न जायते यः सः अजः)—अजन्मा। भगवान् शंकरका किसी भी समय किसीसे जन्म नहीं हुआ है।

६. अजर :[६] (नास्ति जरा यस्य सः)—भगवान् शंकर कभी भी वृद्ध नहीं होते हैं।

---

१. स्तुति० ११,१२८,
२. वही, ११९
३. वही, ९,४९,
४. वही, २९,१५,
५. वही, २०।३०; २९।२०; ३४।६
६. वही, २५।१८

७. अधीशः[1] (अधिकः ईशः)—अधिपति। ये देवताओंके भी स्वामी हैं।

८. अनघः[2] (नास्ति अघं यस्य सः)—निष्पाप। भगवान् शंकर पापरहित हैं।

९. अनन्यजशासनः[3] (अनन्यजः कामदेवः, तस्मिन् शासनं करोति यः सः अनन्यजशासनः)—कामदेवपर शासन करनेवाले।

१०. अनामय[4] (न आमयः अनामयः)—जिन्हें कोई भी आधि या व्याधि अपने वशमें नहीं कर सकती।

११. अनंगजित्[5] (नास्ति अंगं यस्य सः अनंगः कामदेवः तस्य जेता—अनंगजित्)—कामदेवको जीतनेवाले।

१२. अनंगदमनः[6] (अनंगं दमयति यः सः अनंगदमनः)—कामदेवका दमन करनेवाले।

१३. अनंगशासनः[7] (अनंगे शासनं करोति यः सः) अर्थात् कामदेवपर शासन करनेवाले।

१४. अनन्तः[8] (नास्ति अन्तः सीमा विनाशो वा यस्य सः)—अशेष, अन्त-रहित। जिनकी कोई सीमा या विनाश नहीं है।

१५. अन्तकरिपुः[9] (अन्तं विनाशं करोति इति अन्तकः यमः तस्य रिपुः)—यमराजके शत्रु।

१६. अन्धकरिपुः[10] (अन्धकस्य असुरस्य रिपुः)—अन्धकासुरका वध करने-वाले भगवान् शंकर।

---

१. स्तुति० २७।४
२. वही, २५।१४
३. वही, ८।४४
४. वही, २३।१९;२४।२८
५. वही, ८।४८
६. वही, ३।२५
७ वही, ७।५
८. वही, १०।२६; १६।३; १८।१४
९. वही, ३५।१
१०. वही, ६।६;१४।१६

१७. अभयदः[१] (न भयम् अभयम्, अभयं ददाति यः सः अभयदः)—सभी प्रकारकी विपत्तियोंसे रक्षा करके अभय प्रदान करनेवाले।

१८. अमरः[२] (न म्रियते अमरः)—जिसकी कभी मृत्यु न हो।

१९. अमृतेशः[३] (अमृतानम् देवतानां ईशः)—देवताओंके स्वामी।

२०. अमृतांशुशेखरः[४] (अमृतम् इव अंशवः यस्य सः अमृतांशुः चन्द्रः; अमृतांशुशेखरे यस्य सः अमृतांशुशेखरः)—चन्द्रशेखर—चन्द्रमाको सिरपर धारण करनेवाले।

२१. अव्ययः[५] (नास्ति व्ययः यस्य)—जिसका नाश नहीं होता।

२२. अहार्यपुत्रीभर्त्ता:[६] (न हरणयोग्यः अहार्यः पर्वतः तस्य पुत्री अहार्यपुत्री पार्वती तस्याः भर्त्ता—स्वामी)—पार्वतीके पति।

२३. अहीन्द्रहारः[७] (अहिः सर्पः तेषां इन्द्रः अहीन्द्रः, अहीन्द्रः हारः यस्य)—वासुकि नागको गलेमें हारके रूपमें पहननेवाले।

२४. अक्षरः[८] (न क्षरति अक्षरः)—विनाश रहित।

२५. आपन्नबन्धुः[९] (आपन्नानां विपद्ग्रस्तानां जनानां बन्धुः)—आपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके एकमात्र रक्षक।

२६. इन्दुकलाधरः[१०] (इन्दोः कला इन्दुकला, तां शिरसि धारयति इति इन्दुकलाधरः) चन्द्रमाकी कलाको मस्तकपर धारण करनेवाले।

---

१. स्तुति० १३।३४
२. वही, २६।१६
३. वही, १३।८;१९।३०;२७।५
४. वही, ३०।३
५. वही, ३४।४
६. वही, ११।६
७. वही, १३।३१
८. वही, १४।१७
९. वही, २।१०
१०. वही, २४।१६

२७. इन्दुकान्त :[१] (इन्दोः कान्तिः इव यस्य कान्तिः सः इन्दुकान्तः)। चन्द्रमाके समान मनोहर कान्तिवाले।

२८. इन्दुधर :[२] (इन्दुं चन्द्रं धारयति यः सः)—जो मस्तकपर चन्द्रमा धारण करता है।

२९. इन्दुमौलिः[३] (इन्दुः मौलौ यस्य सः इन्दुमौलिः)—जिसके मस्तकपर चन्द्रमा विराजमान हो।

३०. इन्दुशिरः[४] (इन्दुः चन्द्रः शिरसि यस्य)—चन्द्रमाको शिरपर धारण करनेवाले।

३१. ईशः[५] (ईष्टे इति ईशः)–ईश+क—जो शासन करे।

३२. ईश्वरः[६] (ईष्टे इति ईशः ईश्+वरच् यद्वा अश्नुते व्याप्नोतीति)—जो शासन करते हैं अथवा जो सर्वत्र व्याप्त हैं।

३३. उग्रः[७] (उच्+रक्)—भयंकर, जिनका स्वरूप बड़ा ही भयंकर हैं। अर्थात् महादेव।

३४. उदारमतिः[८] (उदारा मतिः यस्य सः)—जिनकी बुद्धि बहुत ही उदार है, अर्थात् आशुतोष भगवान् शंकर।

३५. उमाधवः[९] (उमायाः धवः पतिः)—उमापति भगवान् शंकर।

---

१. स्तुति० १।३१
२. वही, ९।५४; ११।१०; ३६।२२
३. वही, १।२६; ३।२४, ३२; ८।३८; १५।३२; १९।१५; २६।२९
४. वही, ३।३०; १०।७३
५. वही, १।३०; ८।४२, ५२; ९।२७; १५।४, ११; १६।१६; १८।१९; १९।१२, १६, १७; २०।२; २६।२, २४; २७।१९; ३०।३; ३५।९
६. वही, १।५, २३; ३।७, १३; ८।८; ९।६४; १०।३३; ११।२०, १११, ११८, १४१; १४।१; १५।८; १६।२१; १९।१८; २६।७; २६।२०; ३६।१७; ३८।१२
७. वही, १२।१२
८. वही, २३।११
९. वही, २९।४

३६. **उमापतिः**[१] (उमायाः पतिः)—पर्वतराज हिमालयकी पुत्री उमाके पति अर्थात् पार्वती-पति शंकर।

३७. **उरगाभरणः**[२] (उरसा गच्छन्ति इति उरगाः, उरगानां आभरणानि यस्य सः उरगाभरणः)—सर्पों का आभूषण धारण करनेवाले शंकर भगवान्।

३८. **कनकवर्षघनः**[३] (कनकस्य सुवर्णस्य वर्षकः घनः मेघः)—अर्थात् सुवर्णकी वर्षा करनेवाला मेघ अर्थात् भगवान् शंकर।

३९. **कपाली**[४] (कपालः अस्ति अस्य)—जिनके हाथमें कपाल है।

४०. **करुणार्णवः**[५] (करुणायाः दयायाः अर्णवः सागरः)—दयानिधि भगवान् शंकर।

४१. **करुणानिधानः**[६] (करुणायाः निधानम्)—करुणासे परिपूर्ण।

४२. **करूणापरः**[७] (करुणा परा यस्य)—करुणाको ही सर्वश्रेष्ठ समझनेवाले।

४३. **कविः**[८] (कवते सर्वं जानाति, सर्वं वर्णयति, सर्वतः गच्छति इति कविः)—जो सभी बातें जानता हो एवं सभी स्थानों पर जा सकता हो। भगवान् शंकर सर्वज्ञ हैं एवं उनकी गति अविच्छिन्न है।

४४. **करुणानिधिः**[९] (करुणायाः निधिः)—करुणाके समुद्र। इस विशेषणसे प्राणिमात्रके प्रति उनकी सहज दयालुताका आभास मिलता है।

४५. **कात्यायनीकामुकः**[१०]—(कात्यायन्याः पार्वत्याः कामुकः पतिः)—अर्थात् कालीका रूप धारण करनेवाली भगवती पार्वतीके पति शंकर।

---

१. स्तुति० १।१३; १५।२०, ४०
२. वही, ३।४०
३. वही, ३।१४
४. वही, २।९
५. वही, १६।१०
६. वही, १६।३३
७. वही, २९।२०
८. वही, ३।५७
९. वही, ११।४१
१०. वही, ३।६०

४६. कृतान्तकसंहृत्[1] (कृतः अन्तः येन कृतान्तकः, तस्य संहारकर्त्ता—कृतान्तक-संहृत्)—यमराजका संहार करनेवाले। एकबार यमराजसे युद्ध करते समय शंकरने उन्हें परास्त किया था। इस विशेषणसे इसी कथाका संकेत मिलता है।

४७. कृती[2] (कृतं प्रशस्तं कर्म येन)—प्रसिद्ध एवं शुभ कर्मोंको करनेवाले।

४८. कृपापरः[3] (कृपा परा यस्य)—कृपाको ही सर्वश्रेष्ठ समझनेवाले अर्थात् दयालु।

४९. कृपापरमतिः[4] (कृपापरा मतिः यस्य)—जिनकी बुद्धि सदैव कृपाकी ओर उन्मुख रहती है।

५०. गिरिजाजीवितनाथः[5] (गिरिजायाः जीवितस्य नाथः)—गिरिराजपुत्री भगवती पार्वतीके प्राणोंके स्वामी।

५१. गिरिजापतिः[6] (गिरिजायाः पतिः)—पर्वतराजपुत्री पार्वतीके पति।

५२. गिरिजाभुजंगः[7] (गिरिजायाः भुजंगः)—पार्वतीके कामुक।

५३. गिरिपतिसुताकान्तः[8] (गिरिपतेः सुता गिरिपतिसुता, गिरिपतिसुतायाः कान्तः—गिरिपतिसुताकान्तः)—पर्वतराज हिमालयकी पुत्री पार्वतीके स्वामी।

५४. गिरिवरकन्याकान्तः[9] (गिरिषु वरः गिरिवरः, तस्य कन्या, तस्याः कान्तः)—नगराज हिमालयकी पुत्री पार्वतीके पति।

५५. गिरीशः[10] (गिरेः कैलासस्य ईशः—गिरीशः)—कैलाश पर्वतके स्वामी।

---

१. स्तुति० १५।३८
२. वही, २२।११
३. वही, २७।१३
४. वही, २७।१६
५. वही, १।३१
६. वही, १२।२१
७. वही, ३१।१-५
८. वही, १०।७४
९. वही, १८।१२
१०. वही, ८।४३; ९।५, ३९; ११।३; २३।१

५६. गिरीन्द्रकन्याहरिः[१] (गिरीन्द्रस्य कन्यायाः हरिः— गिरीन्द्रकन्या हरिः) —पर्वतराज हिमालयकी पुत्री पार्वतीके स्वामी।

५७. घृणार्णवः[२] (घृणायाः करुणायाः अर्णवः सागरः)—दयासागर।

५८. चण्डीपतिः[३] (चण्डी—दुर्गा, तस्याः पतिः)—दुर्गाका रूप धारण करनेवाली भगवती पार्वतीके पति।

५९. चण्डीशः[४] (चण्डी तस्याः ईशः)—चण्डीपति भगवान् शंकर।

६०. चन्द्रकिरीटः[५] (चन्द्रनिर्मितः किरीटः मुकुटः यस्य सः)—चन्द्रमाका बना मुकुट धारण करनेवाले अर्थात् चन्द्रमाको ही मुकुट के रूपमें मस्तकपर धारण करनेवाले।

६१. चन्द्रचूडः[६] (चन्द्रः चूडे यस्य)—जिसके मस्तकपर चन्द्रमा विराजमान है।

६२. चन्द्रमौलिः[७] (चन्द्रः मौलौ यस्य)—जिसके शिरपर चन्द्रमा विराजमान है।

६३. चन्द्रशेखरः[८] (चन्द्रः शेखरं यस्य)—चन्द्रमा जिसका शिरोभूषण है।

६४. चन्द्रार्धचूडामणिः[९] (चन्द्रार्धः चूडामणिः यस्य)—अर्द्ध चन्द्रमाको चूडामणिके रूपमें धारण करनेवाले।

६५. चन्द्रार्धमौलिः[१०] (चन्द्रार्धः मौलौ यस्य)—जिसके मस्तकपर अर्द्ध चन्द्र सुशोभित है।

---

१. स्तुति० ३।४५
२. वही, १०।५०
३. वही, ५।२९
४. वही, १०।८२
५. वही, १३।१९; १५।२४
६. वही, ३।२६; ३६।९
७. वही, ११।११
८. वही, ३५।२
९. वही, ३३।१६
१०. वही, ३३।१

६६. चन्द्रावचूडः[1] (चन्द्रः अवचूडे यस्य)—जिसके मस्तकपर चन्द्रमा सुशोभित होता है।

६७. जगदीशः[2] (जगतामीशः)—संसारपर नियंत्रण रखनेवाले।

६८. जगदेकगुरुः[3] (जगतः एकः गुरुः)—संसारके एकमात्र शासक।

६९. जगद्गुरुः[4] (जगतां गुरुः)—जगन्नियन्ता।

७०. जयदः[5] (जयं ददातीति जयदः)—विजय प्रदान करनेवाले।

७१. जितकालः[6] (जितः कालः येन सः)—जिन भगवान् शंकरने काल—यमपर भी विजय प्राप्त कर ली है।

७२. जितस्मरः[7] (जितः स्मरः येन)—जिसने कामदेवपर विजय प्राप्त कर ली है।

७३. जितामयः[8] (जिताः आमयाः येन)—जिन भगवान् शंकरने सभी प्रकारकी व्याधियोंको वशमें कर लिया है।

७४. जीवितहरः[9] (क्षणमपि वियोगेन जीवितं हरति)—जिसका क्षणभर का वियोग भी प्राणोंको समाप्त कर देनेमें सक्षम है।

७५. तमांतकरतारः[10] (तमायाः अन्तं करोति इति तमान्तकरः सूर्यः स एव तारायां यस्य)—जिसके नेत्रमें सूर्यका निवास है। सर्वविदित है कि शिवके तीन नेत्रोंमें सूर्य, चन्द्र और अग्निका निवास है।

---

१. स्तुति० ३६।९
२. वही, २८।३
३. वही, ८।४३
४. वही, १०।६
५. वही, १३।२८
६. वही, १३।२३
७. वही, १५।३८
८. वही, १५।३८
९. वही, ९।२३
१०. वही, १४।१६

७६. तमीरमणशेखरः[1] (तमीरमणः शेखरं यस्य)—जिसके मस्तकपर चन्द्रमा शिरोभूषणके रूपमें विराजमान है।

७७. तरुणेन्दुभृत्[2] (तरुणम् इन्दुं बिभर्तीति)—बाल चन्द्रको धारण करनेवाले।

७८. तरुणेन्दुमौलिः[3] (तरुणः इन्दुः मौलौ यस्य सः तरुणेन्दुमौलिः)— जिसके मस्तकपर नवीन चन्द्र विराजमान है।

७९. तरुणेन्दुशेखरः[4] (तरुणेन्दुः शेखरं यस्य तरुणेन्दुशेखरः) मस्तकपर बाल चन्द्रमाको शिरोभूषणके रूपमें धारण करनेवाले।

८०. तुषारकिरणाभरणः[5] (तुषारकिरणः एव आभरणं यस्य–तुषारकिरणाभरणः) --चन्द्रमाको आभूषणके समान धारण करनेवाले।

८१. दयापरः[6] (दया परा यस्य)—दयाको ही सर्वश्रेष्ठ समझनेवाले।

८२. दयामृतनिधिः[7] (दयामृतस्य निधिः दयामृतनिधिः)—दयारूपी अमृतके सागर।

८३. देवः[8] (दीव्यति यत् क्रीडति सर्गादिति विजिगीषति असुरान् व्यवहरति सर्वभूतेष्वात्मतया द्योतते स्तूयते स्तुत्यैः सर्वत्र गच्छति तस्माद्देवः) महाभारतमें भी शंकरको देव शब्दके द्वारा सम्बोधित किया गया है–परश्वायुधो देवः अनुकारी सुबान्धवः (महा० १३।१७।९८)

८४. दर्पकान्तकः[9] (दर्पकस्य अन्तकः दाहकृत्)—कामदेवका अन्त करनेवाले।

१. स्तुति० १।२८

२. वही, ३८।२६

३. वही, ७।३७

४. वही, १४।४

५. वही, ३१।६-१०

६. वही, ९।२३; १५।३८

७. वही, १६।२६

८. वही, ३।११, १४, ३४, ४७, ५०; ८।५०, ५१; ९।४९; ११।१०, १५, ६२, ८३, ९४; १२।१, २७, २८, १४।११, १३; १५।१२; १७।२८; १८।७, १७, २३; १९।११; २१।१; २३।११, १५, १७; २४।४; २६। ३, ६, ८, १४, ३४; २८।२२; ३०।२२; ३३।३०; ३५।२५; ३८।२३

९. वही, ३०।७

८५. धीवरः[1]—किरात रूप धारण करनेवाले भगवान् सदाशिव। अर्जुनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उनकी भक्ति एवं शक्तिकी परीक्षा लेनेकेलिए भगवान् शिवने किरातका रूप धारण किया था।

८६. धूर्जटिः[2] (धूः गंगा जटायां यस्य)—जिसके केशोंमें गंगा निवास करती है।

८७. नाथः[3] (नाथति शत्रुम् उपतापयति)—जो शत्रुओंका भली प्रकार दमन करके उन्हें वशमें कर ले। शंकरने अन्धकासुरका वध किया था, इसलिए इन्हें इस विशेषणसे सम्बोधित किया गया है। त्रिपुरारि आदि शब्दोंसे भी शंकरका यही रूप स्पष्ट होता है।

८८. नीलकण्ठः[4] (नीलः कण्ठः यस्य)—नीलवर्णकी ग्रीवा वाले।

८९. नीलगलः[5] (नीलः गलः यस्य)—नीले वर्णकी ग्रीवावाले। नीलकण्ठ और नीलगल ये दोनों शिवके उस रूपका संकेत करते हैं जब उन्होंने देवताओंके अनुरोधपर समुद्रमन्थनसे निकले विषका पान कर लिया था।

९०. परमपावनः[6] (परमश्चासौ पावनः)—परमपवित्र।

९१. परमात्मा[7] (परमश्चासौ आत्मा)—परम शिव भगवान् शंकरही एक मात्र देव हैं। अन्य सभी देव तो मात्र उनके प्रतिबिम्ब ही हैं।

९२. परमेशः[8] (परमः ईशः)—देवताओंमें श्रेष्ठ। इसी कारण भगवान् शंकरको देवेश भी कहा जाता है।

---

१. स्तुति० ३०।२६
२. वही, ३।५२
३. वही, ९।२३, ५६; ११।३८, ५७, ६०, ६४, ६८, ७५, १३३; १२।३०; १४।६, ८; १५।१३, १७।७; १८।१६, १९; १९।२०; २०।४; २४।३; २५।५; ३०।५; ३५।८; ३६।२
४. वही १।१४; ७।२५; १४।४
५. वही, ११।२१; ३८।१०
६. वही, ३२।५
७. वही, २।१
८. वही २५।२

९३. परमेश्वरः[१] (परमश्चासौ ईश्वरः)—'महालिंगार्चनतन्त्र' के अन्तर्गत शिवशतनाम प्रकरणमें बताया गया हैं :

सहस्रारे महापद्मे त्रिकोणनिलयान्तरे।
बिन्दुरूपे महेशानि ! परमेश्वर ईरितः ॥

९४. परमेष्ठी[२] (परमे व्योम्नि चिदाकाशे ब्रह्मपदे वा तिष्ठति इति परमेष्ठी)। महाभारतमें भी इसी आशयका श्लोक आया है :

क्रियतां दर्शने यत्नो देवस्य परमेष्ठिनः।
दर्शनात्तस्य कौन्तेय ! संसिद्धः सर्वमेष्यसि ॥ ३।३७।५८

९५. परापरः[३] (परात्परः, ब्रह्मादिभ्यः उत्कृष्टः)—ब्रह्मा आदिसे भी श्रेष्ठ।

९६. परेशः[४] (परः ईशः)—श्रेष्ठ स्वामी।

९७. पशुपतिः[५] (पशूनां स्थावरजंगमानां पतिः)—महाभारतमें भगवान् शिवको पशुपति कहा गया है—'ऊर्द्ध्वगात्मा पशुपतिर्वातारंहा मनोजवः' (१३।१७।१३४) 'चिन्तामणिघृतवचन'में भी इसी आशय का एक पद मिलता है :

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्त्तिताः।
तेषां पतिर्महादेवः स्मृतः पशुपतिः श्रुतौ ॥

यह भगवान् शंकरकी यजमानमूर्त्ति है। 'महालिंगेश्वरतंत्रके' अन्तर्गत आये शिवशतनाम स्तोत्रमें भी बताया गया है कि नेपालमें भगवान् शंकर पशुपतिनामसे विराजते हैं—'नेपाले च पशुपतिः केदारे परमेश्वरः'। तथा 'महादेवो हि नेपाले पीठस्थाने पशुपतिरित्याख्यया विराजते।'

९८. पार्वतीचाटुकारः[६] (पार्वत्याः चाटुकारः)—पार्वतीकी चाटुकारिता करनेवाले शंकर। इस विशेषणके पढ़ते ही भगवान् शंकरका

---

१. स्तुति० ३।५, ३६; २८।१२
२. वही, २।१२
३. वही, १५।३८
४. वही, १९।२२
५. वही, ११।९७; ३७।५
६. वही, १८।१

वह रूप सामने आता है जिसमें वे पार्वतीके रूठ जानेपर उन्हें मनाते रहते हैं। यह उनका 'प्रियतम' रूप है।

९९. पिनाकी[1] (पिनाक: अस्ति यस्य)—भगवान् शंकरके धनुषका नाम पिनाक है। यही कारण है कि इन्हें पिनाकी कहा जाता है।

१००. पिनाकपाणि:[2] (पिनाक: पाणौ यस्य)—यह शब्द भी पिनाकीका ही अर्थ द्योतित करता है।

१०१. पुररिपु:[3] (पुरस्य रिपु:)—पुरनामक दैत्यको नष्ट करने वाले। भगवान् शंकरने पुर नामक दैत्यके तीन नगरोंको नष्ट किया था इसलिए इनकी यह संज्ञा है।

१०२. पुरशासन:[4] (पुरस्य शासक:)—पुरपर शासन करनेवाले। यह भी पुररिपुका ही पर्याय है।

१०३. पुरहर:[5] (पुराणां हर्त्ता)—यह भी उपर्युक्त शब्दका ही पर्याय है।

१०४. पुरान्तक:[6] (पुराणां अन्तक: अन्तकर्त्ता)—यहाँ भी उपर्युक्त अर्थ ही ग्रहण करना चाहिए।

१०५. पंकजनाभि:[7] (पंकजं नाभौ यस्य)—यों तो यह भगवान् विष्णुका विशेषण है, पर इसका प्रयोग स्तोताने शिवकेलिए किया है। अर्थात् शिवका वह रूप जिसमें उन्होंने सृष्टि क्रममें विष्णुका रूप धारण किया था।

१०६. प्रभु:[8] (प्रभवतीति प्रभु:)—महाभारतमें भी शिवकेलिए प्रभु शब्दका प्रयोग है—'हरश्च हरिणाक्षश्च सर्वभूतहर: प्रभु:।' (महा० १३।१७।३१)

---

१. स्तुति० २।२५; १६।१०
२. वही, ११।९
३. वही, ३।३७, ३८ ; ३८।२७
४. वही, १९।९
५. वही, १३।२, २५ ; २४।९ ; ३१।२१-२५
६. वही, १५।३८
७. वही, ३।२०
८. वही, ३।४२, ४९, ५५; ७।५, ३१; ९।३७, ७०; १०।६६; १२।१५; १७।२९; १८।२५; २०।४१; २६।४; २७।३०, ३१; २९।१; ३३।१४; ३७।२० ; ३८।११, १५

१०७. प्रमथाधिपः[1] (प्रमथानां गणानां अधिपः स्वामी)—प्रमथादि गणोंके स्वामी।

१०८. प्रवरधीवरः[2] (प्रवरश्चासौ धीवरः)—श्रेष्ठ किरातरूपधारी भगवान् शंकर। यह भगवान् शंकरके किरातरूप धारण करनेका संकेत करता है।

१०९. बालचन्द्रचूडामणिः[3] (बालचन्द्रः चूडामणौ यस्य)—बालचन्द्रको मस्तकपर धारण करनेवाले।

११०. भगवान्[4]—भगः 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः प्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतींगना।'
इत्युक्तलक्षणं षडैश्वर्यम् यस्य अस्ति। भगयुक्तः (भग+नित्ययोगे मतुप्)—सभी प्रकारके ऐश्वर्यों, शक्ति, यश, लक्ष्मी, ज्ञान एवं वैराग्य इन सभी की भग संज्ञा है। इन सबसे जो युक्त हो उसे भगवान् कहते हैं। भगवान् शंकर में ये सभी गुण हैं अतः उन्हें भगवान् कहा गया है।

१११. भर्गः[5] (भृज्यन्ते कालादयः अनेन)—कथासरित्सागर (१।३४) में भी शिवको भर्ग कहा गया है—'प्रत्युवाच ततो भर्गः पुरा दक्ष-प्रजापतेः'।

११२. भवः[6] (भवत्यस्मादिति) (भू+अपादाने अप्) जिससे सारे विश्व की उत्पत्ति होती है।

---

१. स्तुति० ३।२०

२. वही, ३०।२६

३. वही, ३।३१

४. वही, ३।५३; ७।३६; ८।४६; ९।१७, २८, ३०, ३१, ५४; १०।५१; ११।६१, ७८, ८३, ८७; १२।५, ६, ११, २५; १३।२१, २९; १५।९, १०, २६; १९।१६, १८; २०।२; २५।२, ४, २३; २८।५, ८, १६; २९।४; ३०।१०; ३३।१०; ३५।२३; ३८।१

५. वही, ३।२७; ८।४७; १७।३०; ३४।२, ३

६ वही, २।७, ३०, ९।१, ३४; १०।२४, ५४, ५८; १२।२६, ३०; १३।१२, १३, २०, २१, २२, २८, ३३, ३८; १४।२, १२, २५; १५।३१; १७।६; १८।४, १२, १४; १९।५; २३।८, १२, २४; २४।२६, २७; २९।१४, ३०।२१; ३३।२, ४०, ४४

११३. भवसेतुः[1] (भवस्य जगद्रूपसमुद्रस्य सेतुः तारकः—भवसेतुः) – संसार-रूपी भवसागरसे पार कराने योग्य सेतु।

११४. भवानीश्वरः[2] (भवान्याः ईश्वरः)—भवानीके पति।

११५. भव्याभः[3] (भव्या आभा यस्य) – दीप्तिशाली।

११६. भुजगहारः[4] (भुजगः एव हारः यस्य)—सर्पोंका आभूषण धारण करनेवाले।

११७. भुवनभावनः[5] (भुवनानि भावयति)—संसारको प्रिय लगनेवाले।

११८. भूतेश्वरः[6] (भूतानां ईश्वरः)—सभी प्राणियोंके स्वामी।

११९. भूधरपुत्रिकापतिः[7] (भूधरस्य हिमालयस्य पुत्रिकायाः पतिः)—पर्वत-राज हिमालयकी कन्या पार्वतीके पति।

१२०. भैरवः[8] (भीः भयंकरो रवो यस्य—भैरवः)—भयंकर शब्दोंमें गर्जन करनेवाले।

१२१. मदनमर्दनः[9] (मदनस्य मर्दनं करोति)—कामदेवका विनाश करनेवाले।

१२२. मदनशासनः[10] (मदने शासनं करोति)—कामदेवको अपने वशमें करनेवाले।

१२३. मदनसादनः[11] (मदनं सादयति नाशयति वा)—कामदेवको नष्ट करनेवाले।

---

१. स्तुति० २।२३
२. वही, ११।१४०
३. वही, १४।२७
४. वही, १९।३१
५. वही, ३।२५
६. वहीं, ११।९७
७. वही, १५।१५
८. वही, २।२८; ३।५४; ७।३; १९।८
९. वही, १०।६०; २७।१२
१०. वही, १०।४०
११. वही, ५।२१

१२४. मधुनाशिनुतः[१] (मधुनामानं दानवं नाशयतीति मधुनाशी विष्णुः तेन नुतः स्तुतः)—अर्थात् मधु नामक दैत्यका वध करनेवाले भगवान् विष्णुद्वारा स्तुत ।

१२५. महेशः[२] (महान् ईशः महेशः) —देवाधिदेव। शिवध्यानमें बताया गया है 'ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसम् ।'

१२६. महेश्वरः[३] (महांश्चासौ ईश्वरः महेश्वरः) —जो 'कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा-कर्त्तुम्' सभीमें समर्थ हो, वह महेश्वर है। महेश्वरकी व्युत्पत्ति इस प्रकार बतलायी गयी है—विश्वनाथश्च सर्वेषां महतामीश्वरः स्वयम्। महेश्वरं च तेनेमं प्रवदन्ति मनीषिणः।

१२७. महाकालः[४] (महांश्चासौ कालश्चेति—अर्थात् 'कल्पविरमे संहार-कारको महाकालः')—अर्थात् कल्पान्तमें सभीका संहार करनेवाले। महानिर्वाणतन्त्रमें इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है— 'कलनात् सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः ।'

१२८. महिताभः[५] (महिता आभा यस्य सः महिताभः) —अत्यन्त दीप्तिशाली ।

१२९. मारमारः[६] (मारं मारयतीति मारमारः) —कामदेवका वध करनेवाले ।

१३०. मृडः[७] (मृडति हृष्यति इति मृडः)—जो सारे संसारको आनन्द प्रदान करते हैं ।

१३१. मृत्युंजयः[८] (मृत्युं जयतीति)—भगवान् शंकरने मृत्युपर विजय प्राप्त की है इसलिए इन्हें मृत्युंजय कहा जाता है। इसकी कथा वैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डके १५वें अध्यायमें आती है ।

---

१. स्तुति० २३।१६

२. वही, १०।२७, ५३, ८०; ११।५२, ६४, ७२, १०२, ११०; १२।२८; १४।१३; १६।१९, २०; १८।२; १९।२; २४।१८; २५।३, ५, ९; २६।३४

३. वही, ३।४; ८।५१; ९।६८; ११।११४; १५।३८, ३९; २५।६; २९।१; ३८।१३

४. वही, २।११

५. वही, २४।२५

६. वही, १४।१७

७. वही, ११।८३

८. वही, १४।२७

१३२. मृत्युंजयेश्वरः[1] — मृत्युको जीतने वालोंमें श्रेष्ठ।

१३३. मृत्युंजित्[2]—मृत्युपर विजय प्राप्त करनेवाले।

१३४. यामिनीरमणमण्डनः[3] (यामिनीरमणः चन्द्रः एव मण्डनं यस्य)—चन्द्रमा ही जिनका आभूषण है।

१३५. रोहिणीरमणखण्डमण्डनः[4] (रोहिणीरमणस्य चन्द्रस्य खण्डमेव मण्डनं यस्य)—चन्द्रमौलि भगवान् शंकर।

१३६. वरदः[5] (वरं ददातीति वरदः) — प्रसन्न होनेपर जो भक्तको वर देकर उसके अभीष्टकी पूर्त्ति करते हैं।

१३७. वाक्पतिः[6] (परापश्यन्तीमध्यमावैखरीभेदेन चतुर्विधानां वाचां पतिः परमात्मा परमशिवः)—सभी प्रकारकी वाणियोंके अधिपति।

१३८. विभुः[7]—स्वामी। महाभारत (१३।१७।१६) में शंकरको विभुके रूपमें स्मरण किया गया गया है—'त्रिजटश्चीरवासाश्च रुद्रः सेनापतिर्विभुः।' विभु शब्द का अर्थ है—वस्तुतत्वावधारणसमर्थः। जो व्यक्ति प्रत्येक कालकी वस्तुओंका ज्ञान रखता हो, उसे विभु कहते हैं।

१३९. विश्वनाथः[8] (विश्वस्य नाथः)—त्रिलोकस्वामी। काशीको विश्वनाथपुरी कहा गया है।

१४०. विश्वेश्वरः[9] (विश्वस्य ईश्वरः। काशीस्थः महादेवः)।

---

१. स्तुति० ११।८३

२. वही, २८।१४

३. वही, १०।३५

४. वही, ३०।२

५. वही, १८।१;१९।१;३२।७,८;३५।१७,२२;३६।३३

६. वही, ५।२

७. वही, १।१७,२२;२।२५;७।११;८।३९,४०,४१,४९;१०।६२,६४; ११।७, ३१, ९५;१२।१४,१७,१८; १३।१, २४;१४।२३;१८।२४; २७।२०; २८।२, ३५।२,२४;३८।८,९

८. वही, ११।८३

९. वही, ३३।५

१४१. वृषकेतुः[१] (वृषः केतौ यस्य)—जिसकी ध्वजापर वृषभका चिह्न अंकित है।

१४२. वृषलक्ष्मणः[२] (वृषः लक्ष्मणः चिह्नं यस्य)—बैल जिसकी पहचान का चिह्न है।

१४३. वृषाकपिः[३] (वृषः कपिः यस्य)—हरिवंश पुराण (२१६ ४७) में भगवान् शंकरको वृषाकपि कहा गया है—
'वृषाकपिश्च कपर्दी रैवतस्तथा।'

१४४. शबरः[४]- अर्जुनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर शंकरने एक बार किरातका रूप धारण किया। शबर शब्दसे उनके उसी रूपका संकेत मिलता है।

१४५. शम्भुः[५] (शं मंगलं भवति अस्मात् इति शम्भुः)—विष्णुपुराण में बताया गया है कि ये एकादश रुद्रों में अन्यतम हैं। भागवत महापुराण (४।७।५७) में बताया गया है कि शम्भुका उच्चारण करते ही कल्याणकी प्राप्ति होती है। अतः शंकरको शम्भु कहा गया है।

१४६. शर्वः[६] (शृणाति सर्वाः प्रजाः संहरति प्रलये संहारयति वा भक्तानां पापानि इति शर्वः)—प्रलयकालमें जो सम्पूर्ण प्रजाका संहार करे, अथवा जो अपने भक्तोंके पापोंका नाश करे वह शर्व है। शिव-सहस्रनाममें बताया गया है—
'शर्वः सर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः।' रघुवंशमें भी इसी आशयका श्लोक (११।९३) उपलब्ध होता है।

१४७. शशांकशिखामणिः[७] (शशांक एव शिखामणिः यस्य)—चन्द्रशेखर।

---

१. स्तुति० २।२३

२. वही, २।८;१६।१

३. वही, ७।४

४. वही, २।३०

५. वही, २।१,१५;३।१०,२८,३५,४६; ५।३०;८।१,३;१५।८३;१७।१.९, १०, १२, १५,१७, १९,२१; १९।७; २६।२१; २९।१९; ३३।५.९, १०; ३७।६-१८;३८।२९

६. वही, ३।३९,६०;१४।४;२०।४१;३३।५

७. वही, १८।२३

१४८. शशांकशेखरः[1] (शशांकः शेखरं यस्य)—चन्द्रमाको मस्तकपर आभूषणरूपमें धारण करनेवाले।

१४९. शंकरः[2] (शं कल्याणं करोतीति शंकरः)—शिव। स्कन्दपुराणमें कहा गया है :
'सदाध्यानाच्च भक्तानां पवनं यन्निरामयम्।
भूतनाथत्वमप्यस्मात्तेनाहं शंकरः स्मृतः।'

१५०. शशधरशिखरः[3] (शशधरः चन्द्रः शिखरे यस्य)—चन्द्रमौलि भगवान् शंकर।

१५१. शितिकण्ठः[4] (शितिः कृष्णवर्णः कण्ठो यस्य)—नीलकण्ठ भगवान् शंकर। उनका यह नाम उनकेद्वारा विषपानकी कथा सूचित करता है।

१५२. शितिगलः[5] (शिति गलो यस्य)—यह भी उपर्युक्त कथाका ही सूचक है।

१५३. शिवः[6] (शिवं कल्याण विद्यतेऽस्य इतिः शिवः)—जो कल्याण करता हो, वह शिव है। अथवा 'श्यति अशुभमिति शिवः' जो अशुभोंका विनाश करता है, वह शिव है। या 'शेरते अवतिष्ठन्ते अणिमादयोऽष्टौ गुणाः अस्मिन् इति शिवः'। जिसमें अणिमादि गुण निवास करते हैं वही शिव है। इस प्रकार शिव शब्दकी अनेकधा व्युत्पत्ति की गयी है। यह शब्द शंकरकेलिए प्रयुक्त हुआ है।

---

१. स्तुति० ३३।५
२. वही, १।२१, २४; ५।२३; ७।२३; ९।१४, ६१, ६६, ६७; १०।५, ११।८३; १३।३; २६।२०; २८।२०; २९।९; ३४।१३
३. वही, ३३।४५
४. वही, ३।३३; ८।४५; १३।२३; १९।१३, २७
५. वही १३।१६
६. वही, १।५, २५; २।२, ३०; ३।१६, १८, १९, २९; ९।४६; १०।३१, ३८, ४५; ११।४, ९, ३६, ७३, ८०, ८३, ९३, ९६, ९७ १२०, १३।३७; १४।१४, २६; २७।१०; २९।७; ३३।५; ३६।२६; ३७।३, ४; ३८।७

१५४. शीतकरखण्डशेखरः[१] (शीतकरखण्डः शेखरं यस्य) —जिसके मस्तक-पर अर्द्धचन्द्र आभूषणरूपमें विराजमान है।

१५५. शीतकरशेखरः[२] (शीतकरः शेखर यस्य)—चन्द्रमौलि भगवान् शंकर।

१५६. शीतमयूखमौलिः[३] (शीतमयूखः चन्द्रः मौलौ यस्य)—चन्द्रमौलि भगवान् शंकर।

१५७. शुभकरः[४] (शुभं करोति इति शुभकरः)—सदा भक्तोंका कल्याण करने वाले सदाशिव।

१५८. श्रीकण्ठः[५] (श्रीः कण्ठे यस्य)—भगवान् शंकरका कण्ठ अपने नील वर्णके कारण विशेष शोभा धारण करता है। यही कारण है कि उनके लिए श्रीकण्ठ शब्द प्रयुक्त हुआ है।

१५९. सदयः[६] (दयया सह)—दयालु

१६०. सप्रकर्षः[७] (प्रकर्षेण: सहितः सप्रकर्षः)—सर्वोत्कृष्ट।

१६१. सर्वज्ञः[८] (सर्वं जानातीति सर्वज्ञः)—जो भूत, भविष्य और वर्त्तमान तीनों कालोंकी बातें जाने।

१६२. सर्वेशः[९] (सर्वेषामीशः)—सभीके स्वामी।

१६३. सारंगकेतुमुकुटः[१०] (सारंगकेतुः मुकुटे यस्य)—चन्द्रमा को शिरोभूषणके रूपमें धारण करनेवाले।

---

१. स्तुति० ३०।८
२. वही, ९।५५
३. वही, ११।५
४. वही, १।२१
५. वही, ३।५३, ५९; ११।५१; २१।२; ३३।५
६. वही, ३०।२३
७. वही, १३।१०
८. वही, ११।६९, ८३
९. वही, ११।१०४
१०. वही, ९।१८

१६४. सिद्धसाध्यार्चित:[१] (सिद्धसाध्यैः अर्चितः पूजितः)— सिद्ध एवं साध्योंके पूज्य।

१६५. सुधाकरशेखरः[२] (सुधाकरः चन्द्रः शेखरं यस्य)—चन्द्रमाको शिरोभूषणके रूपमें धारण करने वाले।

१६६. सुधामयः[३] (सुधया युक्तः)—जिसकी प्रकृति सुधा अर्थात् आनन्दयुक्त है।

१६७. सुधाद्युतिवतंसः[४] (सुधाद्युति चन्द्रं अवतंसरूपेण धारयतीति)—चन्द्रको आभूषणके रूपमें धारण करने वाले।

१६८. सोमार्द्धकृतमौलिः[५] (सोमार्धेन कृतः मौलिः)—जिन्होंने अर्द्धचन्द्रसे अपने मस्तकका श्रृंगार किया है।

१६९. सोमार्धदेहः[६] (सोमार्धं देहे यस्य)—जिनके शरीरपर अर्धचन्द्र सुशोभित है।

१७०. स्थाणुः[७] (तिष्ठतीति स्थाणुः)—भगवान् शंकरको स्थाणु क्यों कहा है, इसका विस्तृत वर्णन वामनपुराणके ४६वें अध्यायमें प्राप्त होता है।

१७१. स्मरजित्[८] (स्मरं जितवान् इति स्मरजित्)—कामदेवको भस्म करके वशमें करनेवाले।

१७२. स्मरहरः[९] (स्मरं हरति नाशयतीति)—कामदेवको नष्ट करनेवाले।

१७३. स्मरारि[१०] (स्मरस्य अरिः)—कामको भस्म करनेके कारण भगवान् शंकर कामके शत्रु कहे जाते हैं।

---

१. स्तुति० ३०।२२
२. वही, १०।५७
३. वही, १५।३८
४. वही, १६।२
५. वही, १।१९
६. वही २।२१
७. वही, ३।१२; ११।८३
८. वही, १।४; २।१४
९. वही, ३।४८; १७।२८; ३४।७
१०. वही, १९।६

१७४. स्वयम्भूः[१] (स्वयं भवतीति स्वयम्भूः)—जो स्वयं उत्पन्न होता है उसे स्वयम्भू कहते हैं। यही कारण है कि शिवका ऐसा नाम है।

१७५ स्वशक्तिसचिवः[२] (स्वशक्तिः सचिवः यस्य सः)—अपनी इच्छाशक्तिकी ही सहायतासे कार्य करनेवाला।

१७६. स्वानुभूतिसमयैकसाक्षी[३] (स्वा चासावनुभूतिस्तस्या यः समयः स एवैकः साक्षी यस्य)—अपने हृदयकी अनुभूतिके द्वारा ही जिसका ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

१७७. स्वामी[४] (स्वम् असौ अस्तीति स्वामी)—अधिपति। भगवान् शंकर सभी प्राणियोंके अधिपति होनेके कारण स्वामी पदसे सम्बोधित होते हैं।

१७८. हतदर्पः[५] (हतो दर्पः येन सः)—कामदेवके अभिमानको नष्ट करनेवाले।

१७९. हतदुर्नयः[६]—(हताः दुर्नयाः त्रिपुरान्धकप्रभृतयः येन)—जिन्होंने त्रिपुर एवं अन्धक आदि दुष्ट एवं उपद्रवी दैत्योंको मारा था।

१८०. हरः[७] (हरति पापान् इति हरः)—जो पापोंको नष्ट करे वह हर है। रघुवंश (४।३२)में बताया गया है :

स सेनां महतीं कर्षन् पूर्वसागरगामिनीम्।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गंगामिव भगीरथः॥

---

१. स्तुति० २।५; ७।३३

२. वही, १।१५

३. वही, १।९

४. वही, १।१, २, ३; २।१६, १८, २२; ९।२, ३, ४, १०, १३, २०, ५९; १०।८, ६९; ११।१२, २७, ३०, ३३, ५४, ५५, ६६, ६७, १०७; १३१, १३७, १३८, १३९; १२।२२, २३, २४, ३१; १९।१०, १४, १९, २४, २५; २०।१२, १३, १४, ४०; ३३।२, १७, १८, २४, ३३; ३५।१७; ३६।३४

५. वही, १३।१६

६. वही, ३०।१९

७. वही, २।३०; ५।११, ६।१-८; ७।२४, ३४; ९।७, २६, ४१; १०।१६, ४९, ५२, ५९, ७२; १३।३, ४, २८; १५।२१; १६।१४, १५; १८।६; २३।१५; २४।१५, २७; १५।१७; २७।१, १०, १३, २८; २८।२१; २९।८, ११, १३; ३१।३०; ३२।१-७; ३५।२२; ३६।४, २८

१८१. हतान्धकः[1] (हतः अन्धकः येन सः)—अन्धकासुरका वध करनेवाले।

१८२. हरिणांकलक्ष्मणः[2] (हरिणांकः चन्द्रमाः लक्ष्मणं यस्य)—चन्द्रमाको चिह्न रूपमें धारण करनेवाले।

१८३. हरिणांकशिखामणिः[3] (हरिणांकः चन्द्रः शिखामणिः यस्य)—जो चन्द्रमाको अपनी जटामें आभूषणके रूपमें धारण करते हैं।

१८४. हरिणांकशेखरः[4] (हरिणांकः चन्द्रः शेखरं यस्य)—चन्द्रमाको शिरोभूषणके रूपमें धारण करनेवाले।

१८५. हिमकरलेखाशेखरः[5] (हिमकरलेखा शेखरं यस्य)—जो अपने मस्तक पर चन्द्रमाकी रेखाको शिरोभूषणके रूपमें धारण करते हैं।

१८६. हिमाद्रिकन्याकान्तः[6] (हिमस्य अद्रिः हिमाद्रिः तस्य कन्यायाः कान्तः पतिः)—पर्वतराज हिमालयकी कन्याके पति।

१८७. हृतकामः[7] (कामः हृतः येन)—कामदेवका संहार करनेवाले।

१८८. हंसः[8]—परमात्मा इति।

१८९. क्षितिधरपुत्रीवल्लभः[9] (क्षितिधरः पर्वतः तस्य पुत्री, तस्याः वल्लभः)—पर्वतकी पुत्री पार्वतीके स्वामी।

१९०. त्रिजगत्पतिः[10] (त्रयाणां जगतां पतिः)—त्रिभुवन स्वामी।

१९१. त्रिजगद्गुरुः[11] (त्रयाणां जगतां गुरुः)—त्रिभुवन गुरु।

---

१. स्तुति० १५।३८
२. वही, १५।३
३. वही, २७।६
४. वही, ७।१४
५. वही, १८।१०, १३, १८
६. वही, ३।६
७. वही, २४।१९
८. वही, २।१३; १०।७, २५
९. वही, १८।९
१०. वही, १५।३८
११. वही, ३।४, ४८; ११।९२

१९२. **त्रिनयन:**[१] (त्रीणि नयनानि यस्य स:)—जिन्हें तीन नेत्र हैं।

१९३. **त्रिपुरद्विट्**[२] (त्रिपुरं द्वेष्टि)—त्रिपुरासुरसे द्वेष करनेवाले।

१९४. **त्रिपुरशासन:**[३] (त्रिपुरे शासनं करोति)—त्रिपुरासुरपर शासन करनेवाले।

१९५. **त्रिभुवनाधिपति:**[४] (त्रयाणां भुवनानाम् अधिपति:)—तीनों लोकोंके स्वामी महादेव।

१९६. **त्रिभुवनैकगुरु:**[५] (त्रयाणां भुवनानाम् एक: गुरु:)—तीनों भुवनोंके एकमात्र अलौकिक गुरु।

१९७. **त्रिलोकनाथ:**[६] (त्रिलोकस्य नाथ:)—तीनों भुवनोंके स्वामी।

१९८. **त्र्यम्बक:**[७] (त्रीणि चन्द्रसूर्याग्निरूपाणि अम्बकानि नेत्राणि यस्य स:)—सूर्य चन्द्र और अग्नि रूपी तीन नेत्रोंवाले।

१९९. **त्र्यक्ष:**[८] (त्रीणि अक्षीणि यस्य स:)—त्रिनेत्र धारी भगवान् शंकर।

---

१. स्तुति० १४।४
२. वही, ३।१७,५८
३. वही, ३२।६
४. वही, १०।४
५. वही, १९।१७
६. वही, ७।४
७. वही, १४।४;३४।५
८. वही, ३४।१२

परिशिष्ट-३

स्तुतिकुसुमांजलिकी उपमानयोजना

सरस्वती यथा इयं सरस्वती—नदीके समान अमृतवर्षिणी वाणी—१।१

सरस्वती यथा सरस्वती – वीणाके समान वाणीकी मनोहर ध्वनि—१।२

प्रणयिनी यथा सरस्वती—कामिनीके समान सरस्वती—१।३

वरला यथा सरस्वती स्मरजितः मानसं विशतु—हंसिनीके समान वाणी सदाशिवके निर्मल चित्तमें प्रविष्ट हो—१।४

सर्वमंगला ईश्वरं यथा तथा सर्वमंगला ईश्वरमेव आराधयिष्यति—पार्वतीके समान वाणी भी ईश्वरकी आराधना करेगी – १।५

अम्बरम् इव महः—अम्बरके समान परब्रह्म—१।८

अम्बरमणेः बिम्बमिव— सूर्यबिम्बके समान परब्रह्म—१।८

चन्द्रकरसुन्दरत्विषं सिद्धसिन्धुम्—चन्दमाकी किरणोंके समान निर्मल देवगंगा—१।१८

पार्वणेन्दुकरसुन्दरवाहहंसः —पूर्ण चन्द्रमाकी किरणोंके समान स्वच्छ वाहन हंस—१।२६

इन्दुद्युतिः गीः—चन्द्रकान्तिके समान वाणी—१।३१

उदकमिव भेदिषु यदभेदि—जलके समान जो शिव अलग-अलग प्रतिभासित होते हुए भी एक हैं – २।२४

स्वर्णमिव—स्वर्णके समान (शिव)—२।२४

नीरदभरः इव जगत्—मेघमालाके समान संसार – ३।२

सुधांशुधाम इव जगत् —चन्द्रतेजके समान संसार – ३।२

वीचिव्यूहः इव जगत्—तरंग-समूहके समान क्षणभंगुर संसार – ३।२

आमलकीफलाभं जगत्—आँवलेके समान स्पष्ट संसार – ३।५

कन्दुकैः इव पुरन्दरपद्मसद्मपद्मापतिप्रभृतिभिः—कन्दुकके समान इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओंके साथ – ३।६

तुषारशुभ्रं शम्भोः वपुः—हिमके समान शुभ्र शंकरका शरीर—३।१०

अदभ्रशरदभ्रशुभ्रं शम्भोः वपुः—शरत्कालीन मेघके समान शंकरका शुभ्र शरीर—३।१

नीहारहारिणि वपुषि—हिमके समान स्वच्छ शरीर—३।२९

बालप्रवालरुचिरकरे—कोमल विद्रुमके समान हस्तकमल—३।३०

हेमरुचिकलापे—सुवर्णके समान मनोहर जटाजूट—३।३०

कविप्रवरवागिव चूडामणेश्चरणरेणुकणावली—महाकविकी वाणीके समान पवित्र शंकरजीके चरणकमलोंकी रेणुपंक्ति—३।३१

नवनीलसरोजदामश्यामद्युतिः शितिकण्ठकण्ठः—नवीन नीलकमलकी मालाके समान श्यामल शंकरका कण्ठ—३।३३

द्यौः इव दृक् अभीष्टफलपाककृत्—आकाशके समान सकल अभीष्टको परिपक्व करनेवाली दृष्टि—३।३५

औदन्वती तनुः परमेश्वरस्य दृक्—समुद्रके समान शंकरकी दृष्टि—३।३६

अमृतनिर्झरविशेषा सरस्वती—अमृतनिर्झरके समान वाणी—३।४२

सौमनसी शेषा इव क्षितिः—पुष्पमालाके समान पृथ्वी—३।४२

शलभलघुतां कालः लेभे—पतंगके समान निस्तेज यमराज—३।४६

मन्दाकिनीव स्तुतिः—मन्दाकिनीके समान स्तुति—३।४६

तुषारगौरं गौरवृषभम्—हिमके समान श्वेत वृषभ—३।५०

बालमरालनिर्मलरुचिः—बालहंसके समान निर्मलकान्तिवाले शंकर—३।५०

नक्षत्रपाली इव श्रीकण्ठस्य मूर्त्तिः—नक्षत्रपालीके समान शंकरकी मूर्त्ति—३।५३

इन्दुगौरम् अर्द्धभागम्—चन्द्रमाके समान स्वच्छ अर्द्धभाग—४।३

गगनापगा इव वाणी—आकाशगंगाके समान कवि-वाणी—५।१

घृणा इव वाणी—करुणाके समान कवि वाणी—५।१

ईश्वरी इव वाणी—पार्वतीके समान वाणी—५।१

शशिभृत्कला इव वाणी—चन्द्रकलाके समान कवि-वाणी—५।१

सुधा इव भणितिः—अमृतके समान उक्ति—५।५

सायन्त्रिकाः इव महाकवयः—पोतवणिकोंके समान महाकवि—५।६

तुषारकरानुकारि कविकर्म—पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर काव्य—५।९

बालमृगांकमौलेः चरित्रमिव कविकर्म—शंकरके दिव्य चरित्रके समान काव्य—५।०

चित्रस्थिताः इव मूर्खाः—चित्रलिखितके समान मूर्ख (निचेष्ट)—५।१७

हरिणाः इव ये मूर्खाः —हरिणके समान जो मूर्ख—५।१७

भृंगावलिद्वितयविभ्रमप्रभृतभ्रूकन्दलीयुगलम्—भ्रमरपंक्तियोंके समान भृकुटि-रूप लताएँ—५।१८

कल्पलता इव वागीश्वरी—कल्पलताके समान वाणी—५।३२

प्रलयवारिवाहः हरः —प्रलयकालीन मेघके तुल्य भयंकर शंकर—६।७

शाम्भवी कथा इव कवीन्द्रवाक् निर्वृतिमातनोतु—शिवजीकी कथाके समान महाकविकी वाणी परम आनन्द प्रदान करे– ७।१

नवीनवध्वाः चकिता दृक्छटा इव वाणी—नयी वधूकी चकित दृष्टिच्छटाके समान वाणी—७।१

सुरस्रवन्ती इव कवीन्द्रवाक् निर्वृतिमातनोतु—सुरनदीके समान कवीन्द्रोंकी वाणी आनन्द प्रदान करे--७।१

निशान्तनिद्रा इव कवीन्द्रवाक्—प्रातःकालीन निद्राके समान कविकी आनन्द-दायिनी वाणी —७।१

शैशवी दशा इव कवीन्द्रवाक्—बाल्यावस्थाके समान कविवाणी परमकल्याण करती है —७।१

वायुरिवायुः प्रयाति – वायुके समान आयु बीतती है—७।३२

सुरगिरेः पादाः इव शम्भुविषयस्य पादाः विष्टपानि मण्डयन्ति पुनन्ति च—सुवर्णमय सुमेरुपर्वतके पादोंके समान शंकरविषयक पद्यके पाद जगत्को विभूषित और पवित्र करते हैं—८।१

रवेः पादाः इव शम्भुविषयस्य पादाः —सूर्यकी किरणोंके समान शम्भुकी महिमाका वर्णन करनेवाले पद्य—८।१

तरंगाभिरामगतयः स्तुतयः—तरंगोंके समान मनोहर गतिवाली स्तुति—८।२

कर्पूरधूलिपटलश्रियम्—कर्पूरकी धूलिके समान स्वच्छ—८।१०

इन्दीवरस्रजः इव कृष्णभुजगाः—नीलकमलकी मालाके समान काले सर्प भक्तोंको आनन्दित करते हैं—८।११

कमलावली इव कपालपाली अविकलं कुशलं करोति – कमलपंक्तिके समान मुण्डमाला अखण्ड सुखद है—८।१३

कलकण्ठनादहृदया कुसुमिता वधूः—कोकिलके समान मधुर स्वरवाली कुसुमिता वधू—८।२७

इन्दुधवलानि यशांसि––चन्द्रमाके समान स्वच्छ यश––८।२९

सिद्धसिन्धोः जलानि इव यशांसि––गंगाजलकी तरह संसारको पवित्र करने वाले यश––८।२९

घनसारभांसि चरितानि––कर्पूरके समान स्वच्छ चरित्र––८।३०

विरचनामिव कौमुदीं मूर्ध्नि धत्ते––चन्दनकी तरह चन्द्र-ज्योत्स्नाको मस्तक पर धारण करते हैं––८।३७

सौमनसी स्रक् इव आपगा––मालतीकी पुष्पमालाके समान देवगंगा––८।३७

कल्पलतिका इव शितिकण्ठसेवा फलति–कल्पलताके समान ही भगवान् शंकरकी सेवा फल प्रदान करती है––८।४५

यः शारैः इव क्रीडति––जो अक्ष (पासों) के समान क्रीड़ा करता है––८।५२

दूरीकृतान्यसरणिः हरिणी इव मम वाणी पदमपि गन्तुं न क्षमैत––व्याधके कर्ण-मनोहर वेणु-निनादके श्रवणमें मग्न हरिणीके समान मेरी वाणी एक पद भी आगे जानेमें समर्थ नहीं है––९।१०

प्रमोदभरनिर्भरभृंगलक्ष्मीं हृदयं धत्ते––गाढ़ अन्धकारके प्रवाहमें मग्न अति-निश्चल भ्रमरके समान मेरा मन सुशोभित हो रहा है––९।१३

नवीनकदलीदलसौकुमार्यम् अंगम्–नवीन कदलीदलके समान सुकुमार अंग ––९।२१

बीजप्ररोहवत् असौ परस्परनिमित्तिनिमित्तभावः––बीजांकुरके समान परस्पर कार्यकारणभाव––९।३३

शरदि नदीजलस्य इव बलस्य हानिः––शरत्कालीन नदीके जलकी तरह निरन्तर बलकी हानि––९।३६

असत्परिभवाः इव दुःखानि दुःसहानि––दुर्जनोंके तिरस्कारके समान असह्य दुःख––९।३६

अधिशुचि अहानि इव दीर्घाणि अघानि––ग्रीष्मकालीन दिनोंकी तरह वर्द्धनशील पाप––९।३६

निर्भर्त्सितः अभिमानी बन्धुः इव विवेकः नीरसं चित्तं मा स्पृशतु––अपमानित अभिमानी बन्धुके समान विवेक नीरस चित्तका स्पर्श न करे––९।३७

घर्मरुचि: इव मोहः मनः उपतापयेत—सूर्यके समान मोह मनको सन्तप्त कर रहा है—९।१३७

प्रतिपदिन्दुकला इव तनुः यावत् अवसायं न उपैति—प्रतिपद्की सायंकालीन चन्द्रकलाके समान शरीर जब तक क्षीण नहीं हो जाता—९।१३८

हारामलं विवेकम्—मुक्ताहारके समान स्वच्छ विवेक—९।१४१

भेकपोतः इव अहं त्वद्भक्तिम् एमि—भेकपोतके समान मैं आपकी भक्तिकी शरण लेता हूँ—९।१४२

अभयानकस्य तुल्यश्रिया शुभया वाचा—अभयकी घोषणा करने वाले नगाड़ेकी ध्वनिके समान मधुर और कल्याणकारिणी वाणी—९।१४४

इन्दोः अमृतमयी कलिका इव बालाः—चन्द्रमाकी अमृतमयी कलाके समान मनोहर बालिकाएँ—९।१४५

विनायकेन मुक्ता भवद्गणसभा इव त्वया परिहृता वाणी—गणपतिसे रहित अनेकगणोंकी सभाके समान आपसे विमुख वाणी—९।१४६

नायकेन रहिता मुक्तावली इव त्वया परिहृता वाणी केन सम्भाव्यते—मध्यस्थ मणिसे रहित मुक्ताहारके समान आपसे विमुख वाणी किसको वशमें कर सकती है—९।१४६

चकोरस्य ज्योत्स्नाछटाभिरिव ते कथाभिः कस्य प्रीतिः न—जैसे चकोर पक्षीको चन्द्रमाकी छटासे स्वभावतः अति प्रीति होती है उसी प्रकार आपकी स्तुतिसे किसे प्रीति नहीं होगी ? ९।१४९

बर्हिकिशोरकस्य दैवीभिरद्भिरिव ते कथाभिः कस्य प्रीतिः न—जैसे मयूर-बालकको नवीन मेघोंके जलसे स्वाभाविकी प्रीति होती है वैसे ही आपकी स्तुतिसे किसे प्रीति नहीं होगी ? ९।१४९

धीवरः इव मृत्युः हठेन हरते—धीवरके समान मृत्यु बलपूर्वक हरण करती है—९।१५३

निद्रानिभेन विनिमीलितलोचनाय—निद्राके समान बन्द नेत्र—९।१५६

कुनृणां श्रीरिव या नर्त्तयति—दुर्जनोंकी सम्पत्तिके समान जो नचाती है—९।१६०

तिलकेन वनावली इव शम्भोः विज्ञप्तिः—तिलकवृक्षसे सुशोभित वनावलीके समान शंकरके प्रति किया गया आत्मनिवेदन आनन्दप्रद है—९।१८०

तिलकेन भालस्थली इव शम्भो: विज्ञप्ति:—तिलकसे सुशोभित ललाटके समान शंकरके प्रति किया गया आत्मनिवेदन सुशोभित होता है—९।८०

एणतिलकेन विभावरी इव शम्भो: विज्ञप्ति: बसन्ततिलकेन—चन्द्रमासे रजनीके सुशोभित होनेके समान शंकरके प्रति किया गया निवेदन—९।८०

हृदयनन्दनचन्दनकन्दली अभंगुरा शंकरभक्ति:—भावुकोंके हृदयरूपी नन्दनवनमें चन्दनलताके समान विराजमान शंकरकी भक्ति—१०।५

तृषिता: हरिणा: इव—प्यासे हरिणके समान दु:खपीड़ित मनुष्य—१०।११

पवनवेल्लितबालमृणालिनीदलचलज्जलबिन्दुनिभं वपु:—वायुसे कम्पित सुकोमल कमलदलमें स्थित अतिचंचल जलविन्दुके समान क्षणभगुर मानवदेह—१०।२३

बुद्बुदवत् जन्तव:—जलके बुदबुदोंके समान जीव—१०।२९

समुद्रसमानया गिरा—समुद्रके समान गम्भीर वाणी—१०।४९

निर्झरनिर्झरिणीमिव हृदये दयां किं न वहसि—मन्दाकिनीके समान हृदय में दया क्यों नहीं धारण करते—१०।६२

हरिणकेतुकलामिव दयां हृदि निधेहि—चन्द्रकलाके समान दयाको हृदयमें धारण कीजिये—१०।६३

प्रस्फुरद्विम्बोष्ठम्—विम्बफलके समान सुन्दर अधर—१०।७८

समुन्मिषितमालतीमुकुलकोमला: कवे: सूक्तय:—विकसित मालती पुष्पकी कलियोंके समान अतिकोमल कविकी प्रौढ़ोक्ति—१०।८५

शरत्सुधाकरकरानुकारित्विष: कवे: सूक्तय:—शरत्कालके पूर्णचन्द्र किरणोंके समान स्वच्छ सत्कविकी सूक्तियाँ—१०।८५

सुधामधुरं वारुणी रस:—अमृतके समान मधुर वारुणीरस—१०।८९

जननी इव भगवती उक्तिदेवी किमपि सम्यक् अमृतं स्रवन्ती मम संजीवनं विदधाति—जननीके समान किसी विलक्षण अलौकिक अमृतको स्रवित करती हुई वाणी मुझे संजीवनी प्रदान कर रही है—११।१

सौमेरवी पदवी इव वाणी—सुमेरुपर्वतकी सुवर्णमय पदवीके समान—११।२

चकिता दृष्टिछटा इव वाणी—चकित दृष्टिच्छटाके समान वाणी—११।४

उन्मतभाषितमिदम्—उन्मत्तभाषितके. समान वाणी—११।२८

सिद्धसिन्धुः यथा सरस्वती—देवगंगाके समान मेरी वाणी—११।२९

बन्धुजीवदलसद्रुचिः एषः अग्निः—बन्धुजीव नामक रक्तपुष्पके दलके समान सुमनोहर कान्तियुक्त अग्नि—११।४७

सवितुः प्रभा इव तव नैसर्गिकी कृपा—सूर्यप्रभाके समान आपकी स्वाभाविकी करुणा—११।७१

कुलवधूः इव दुर्गतिः—कुलवधूके समान (दुर्गति नहीं छोड़ती)—११।७२

मलयानिलवेल्ल्यमानकल्लोललोलनिधनानि धनानि—मलयानिलसे कम्पित तरंगोंके समान चंचल सम्पत्ति—११।७३

तितउकल्पम्—चलनीके समान चित्त—११।८१

अमृतांशुः इव आश्रितः—चन्द्रमाके समान आश्रित (मैं)—११।९०

कामः त्वयि इव मयि निष्फलतामवाप—जैसे कामदेव आपकेलिये व्यर्थ हुआ उसी प्रकार काम (अभिलाषा) मेरे लिए निष्फल हुआ—११।९४

तव विधुरोचिता मूर्त्तिः इव मे विधुरोचिता मूर्त्तिः—आपकी चन्द्रमासे सुशोभित मूर्त्तिके समान ही मेरी मूर्त्ति दीनतासे युक्त है—११।९६

अजगरोपगूढं श्रीखण्डचन्दनमिव मानुष्यं शोचनीयम् जातम्—अजगरोंसे परिवेष्टित श्रीखण्ड चन्दनके समान शोचनीय मनुष्य जन्म—११।९८-१००

स्वर्भानुगीर्णं पूर्णशशांकबिम्बमिव मम मानुष्यं शोचनीयम्—राहुसे ग्रस्त पूर्ण चंद्रबिम्बके समान मेरा मनुष्य जन्म शोचनीय है—११।९८-१००

दारिद्र्यदग्धं साधुगृहस्थवृत्तम् इव मानुष्यम्—दरिद्रतासे निपीड़ित सद्गृहस्थके चरित्रके समान शोचनीय मनुष्यजन्म—११।९८-००

दारुणविरुग्णम् बालांगनांगमिव मानुष्यं शोचनीयम्—दारुण व्याधिसे क्षीण षोडशीके अंगके समान शोचनीय मनुष्यजन्म—११।९८-१००

पिशुनैः व्यूढं नृपस्य पादमूलमिव मानुष्यं शोचनीयम्—स्वार्थी खल व्यक्तियोंसे परिवृत धार्मिक राजाके राजदरबारके समान शोचनीय मनुष्य-जन्म—११।१००

हालाहलाक्तं दुग्धमहाब्धिनीरमिव मानुष्यं शोचनीयम्—विषसे व्याप्त क्षीर-सागरके नीरके समान शोचनीय मनुष्यजन्म—११।९९-१००

महामकररुद्धं द्यु सिंधोः तीरमिव मानुष्यम्—भयंकर मकरोंसे अवरुद्ध गङ्गा-
तटके समान शोचनीय मनुष्यजन्म—११।९९-१००

श्रुतविश्रुतस्य समत्सरं चित्तमिव मानुष्यं शोचनीयम्—विद्वान् पुरुषके ईर्ष्या-
युक्त चित्तके समान शोचनीय मनुष्यजन्म—११।९९-१००

कापुरुषस्य निर्दानभोगं वित्तमिव मनुष्यं—दान और भोगसे रहित कृपणकी
सम्पत्तिके समान शोचनीय मनुष्यजन्म—११।१००

सत्कुलजस्य विद्याविहीनं रूपमिव मानुष्यं शोचनीयम्—विद्याविहीन कुलीन-
पुरुषकी सुन्दरताके समान शोचनीय मनुष्यजन्म—११।१००

शठवत् त्वं कठिनः असि—खलके समान आप कठोर हैं—११।१०१

दूढ्यः इव निष्ठुरपुष्टभाषी—खलके समान कठोर भाषण करनेवाला—
११।१०५

शमी इव आर्त्तिः—शमीवृक्षके समान विपत्ति—११।१११

अनलोग्रदृशम्—अग्निके समान उग्र दृष्टि—११।१२०

उदन्वान् इव हृदये दुर्वहमग्निम् उद्वहामि—समुद्रके समान हृदयमें अतिदुःसह
अग्नि धारण करता हूँ—११।१३२

तिर्यग्वत् विवेकरहितम्—पक्षीके समान विवेकरहित—११।१३३

हाराः इव भक्तिमन्तः सन्तः ईशस्य हृदि पथं कथं न भजन्ति—हारके समान
भक्तिमान् सन्तपुरुष ईश्वरके हृदयमें स्थान क्यों नहीं पायेंगे—१२।१०

भगवान् इवाहम्—भगवान्के समान मैं—१२।११

निशिताः शराः इव खलाः तुदन्ति—तीक्ष्णबाणके समान दुष्ट पीड़ा पहुँचाते
हैं—१२।२३

प्रभातमिव भाललोचनम्—प्रभाके समान भालनेत्र—१२।३२

दर्पणाभं मतिम्—दर्पणके समान स्वच्छ मति—१३।१६

अनभ्रनभोनिभः कण्ठः—मेघरहित आकाशके समान नीला कण्ठ—१३।२४

शरदिन्दुसुन्दराभं वदनम्—शरत्कालीन पूर्णचन्द्रकी तरह अत्यन्त सुन्दर
मुख—१३।२४

हिमहारि गांगं वारि—हिमके समान स्वच्छ गंगाजल—१३।२५

कुवलयदलकान्तिकलिन्दकन्यकाम्भः—नीलकमलकी कान्तिके समान यमुना
जल—१३।२५

हिमकरहारि गांगं वारि—चन्द्रमाके समान स्वच्छ गंगाजल—१३।२५

सिताब्जशुभ्रप्रसृमरचामर:—श्वेतकमलके समान श्वेतछत्र चामररूप—१३।३३

दहनसमानरोष:—अग्निके समान क्रोध—१३।३५

सकलकलधौतधौतमूर्त्ति:—सुन्दर सुवर्णके समान गौर आकृतिवाला—१३।३६

शुष्कशष्पमिव वासवासनपरिग्रहग्रह:—शुष्क घासके समान तुच्छ इन्द्रासन ग्रहणकी इच्छा—१४।२

तृणोपमं महीतलम्—तृणके समान तुच्छ महीतल—१४।४

चित्रलिखिता: इव वह्निशीतकरधर्मरश्मयो: स्थिता:—तीनों नेत्रोंमें रहनेवाले अग्नि, चन्द्र और सूर्य मेरे लिए चित्रलिखितसे हैं—१४।६

कमलिनीदलस्खलन्नीरशीकरचला: विभूतय:—कमलपत्रपर हिलते हुए जलकणोंके समान चंचल सम्पत्तियाँ—१४।११

तृणवत् भूभृतां विलोकनम्—तृणके समान राजाओंको तुच्छ समझना—१४।१२

अलिनी इव भारती—भ्रमरीके समान वाणी—१५।४

अरुणानुजजन्मन: तनुमिव भूधरपुत्रिकापते: करुणा—अरुणानुजकी कायाके समान शंकरकी करुणा—१५।१५

नरकान्तकारिण: अर्जिता शिशुलीला इव तावकी करुणानियतं मूलनिकृंतनक्षमा—श्रीकृष्णकी बाललीलाके समान आपकी करुणा काम और क्रोधके मूलको काटनेमें समर्थ है।—१५।१८

सरला इव मे भारती—साध्वी स्त्रीके समान मेरी वाणी विकासको प्राप्त हो—१५।२५

घनांजनपुंजसन्निभो भुजगो—गाढ़ कज्जलकी राशिके समान काला सर्प—१५।२७

परुषा मर्मभेदिनी गी: इव वेदना—कठोर मर्मभेदिनी वाणीके समान वेदना—१५।२८

कैटभद्विष: विभूतिरिव उमापते: करुणा—भगवान् विष्णुकी विभूतिके समान शिवकी करुणा—१५।४०

तुलितोदितेन्दव: वृषलक्ष्मण:—पूर्ण चन्द्रके समान वृषभध्वज भगवान् शंकर—१६।१

जीर्णतृणवत् वसुधा—जीर्ण तृणके समान पृथ्वी—१६।२

शलभजृम्भितोपमं हृदयं गुणकौशलं प्रथयन्ति—पतिंगेकी तरह हृदयगुण चातुर्यको प्रकट करते हैं—१६।७

मृदुमृदंगमंदलस्वनसन्निभध्वनितनिर्झरोर्मिषु – कोमल मृदंगकी मंगलमयी ध्वनिके समान मनोहर कलकल शब्द करनेवाले झरनोंकी तरंगें – १६।९

मृदुमृणालिनीदलस्खलदम्बुविन्दुतरलाः सम्पदः—कोमल कमलिनीके पत्ते पर पड़े जलविन्दुओंके समान चंचल सम्पत्ति—१६।२०

आयामिनी यामिनी इव अहन्ता—अत्यन्त विस्तृतरात्रिके समान अहन्ता—१६।२७

कण्ठीरवरवसदृक् ध्वनिः—सिंहनादके समान अति स्पष्ट ध्वनि – १७।४

प्रपा इव भावत्की भक्तिः—प्याऊके समान आपकी आनन्ददायिनी भक्ति —१७।७

कार्तिकीयाकान्ता ज्योत्स्ना इव भावत्की अमृतस्यन्दिनी भक्तिः – कार्तिक-मासकी मनोहर चन्द्रिकाके समान आपकी अमृतवर्षिणी भक्ति— १७।७

तावकीना वाणी इव भावत्की भक्तिः—आपकी अभयवाणीके समान आपकी अमृतवर्षिणी भक्ति—१७।७

धनुर्बद्धबाणाभिरामैः भ्रूभंगैः—धनुषपर चढ़ाये बाणोंके समान मनोहर कटाक्ष—१७।१३

चन्द्रिका इव दोषप्लोषक्षमा भक्तिः – चन्द्रिकाके समान दोषोंको शान्त करनेमें समर्थ भक्ति—१७।१३

जीर्णपर्णमंजरी यथा मूर्त्तिः प्रथयति—जीर्ण पत्तोंवाली मंजरीके समान यह शरीर कांप रहा है—१७।१७

भोगाः इव भोगाः वेष्ट्यन्ते —सर्पोंके समान विषय घेर रहे हैं—१७।१७

मृत्युदूती इव जरा प्रसरति —यमदूतीके समान बुढ़ापा आ रहा है—१७।१७

कुलिशनिशिताः कटाक्षाः—वज्रके समान तीक्ष्ण कटाक्ष—१७।२२

तुलितविवलद् बालमार्णालनालं बाहुद्वन्द्वम्—कोमल बालमृणालके समान सुमनोहर भुजाएँ—१७।२३

केतकामोदहृद्यम् वदनम्—केतकीपुष्पके समान मनोहर मुख—१७।२४

कलशाकारं—कलशके समान स्तनयुगल—१७।२५

तृणगणगणानां त्रैलोक्यं लम्भयन्तः शुष्क—तृणके समान त्रैलोक्यको तुच्छ समझते हुए—१७।२७

कारागारानुकारे भवे —कारागारके समान अन्धकारयुक्त संसार—१७।२८

हैमनयामिनी इव तृष्णा दिनाद्दिनम् अवृंहत्—हेमन्त ऋतुकी दीर्घ रात्रिके समान तृष्णा दिनोदिन बढ़ती जा रही है—१७।७५

स्वर्धुनी इव परमतापक्लेशजित् सरस्वती—मन्दाकिनीकी तरह क्लेशोंको दूर करनेवाली सरस्वती—१८।३

घनवर्षावारिवाहं तव पादपीठं—वर्षाकालीन मेघके समान आनन्ददायिनी आपकी चरणपीठिका—१८।४

बालशैवालशैय्या—नवीन शैवालके समान कोमल शय्या—१८।५

सितकरधवलाभ्यां चामराभ्याम्—चन्द्रकिरणोंके समान स्वच्छ चँवरोंसे—१८।८

मधुमधुरं—मधुके समान मधुर वाक्यसुधा—१८।१५

लतिका इव मनीषा—लताके समान कम्पनशीला बुद्धि—१८।१६

पंकेरुहद्वितयकान्ति तवपादद्वयम्—कमलयुगलकी छविके समान छविवाले आपके चरणयुगल—१९।५

शरदम्बुधरानुकारि पुरशासनस्य उरः—शरत्कालके मेघका अनुकरण करने वाला शंकरका वक्ष—१९।९

सिन्दूरितामरमतंगजकुम्भशोभि पुरशासनस्य उरः—सिन्दूरसे लिप्त सुरगजके गण्डस्थलके समान सुशोभित सदाशिवका वक्षस्थल—१९।९

चन्दनस्य विटपा इव तव अमी भुजाः आनन्दयंति—चंदनवृक्षकी शाखाओंके समान आपकी भुजाएँ आनंदित करती हैं—१९।१०

नक्षत्रपंक्तिः इव तव अक्षमाला चकास्ति—नक्षत्रमालाके समान आपकी अक्षमाला सुशोभित होती है—१९।११

बालार्कचुम्बितनवाम्बुदभंगिमत्वम्—प्रातःकालके सूर्यसे मिले नवीन मेघके समान सुशोभित—१९।१२

शाणोपलतोत्कषणशुद्धन्वेन्द्रनीलनीलद्युतिः कण्ठः—शाणपत्थरसे घिसे नवीन इंद्रनीलमणिके समान नीली कांतिवाला कण्ठ—१९।१३

घनांजनरुचिः भुजगः—गाढ़ कज्जलके समान काला वासुकिनाग—१९।१३

सुधाच्छकान्तेः वदनात्--अमृतके समान स्वच्छ मुखारविन्द (से)—१९।१७

प्रतप्ततपनीयपिशंगकान्तिः तव जूटः—अग्निसे तपाये सुवर्णके समान पिंगल-वर्ण आपका जटाजूट—१९।२४

दुग्धनिधिः इव तव जूटः कस्य अमृताय न भवति—क्षीरसागरके समान आपका जटाजूट किसे अमरत्व नहीं देता—१९।२४

मरालमाला इव नृकपालमाला—मरालमालाके समान नरकपालोंकी माला—१९।२५

सुधावदवदातरुचिः इयं नृकपालमाला—सुधाके समान स्वच्छ नरकपालोंकी यह माला—१९।२५

लसत्कुसुमोपमेन येन—विकसित कुसुमके समान स्वच्छ हास्य—२०।३

प्रावृट्पयोधरगंभीररवानुकारि यत् हास्यम्—वर्षाकालीन मेघकी गम्भीर ध्वनिका अनुकरण करनेवाला हास्य—२०।१४

नीरन्ध्रनीरभरमेदुरमेघखण्डलग्नेन्दुमण्डलविडम्बनं यत्—काले मेघखण्डपर खिले हुए चन्द्रमण्डलके समान जो हास्य सुशोभित होता है—२०।१५

सखी इव निद्रा मम सम्मुखम् आजगाम—सखीकी तरह निद्रा मेरे पास आयी—२०।१६

कल्पकल्पाम् क्षपाम्—कल्पके समान रात्रि—२०।१६

सविता इव जीवितेशः नयनवर्त्मनि पदं चक्रे—सूर्यदेवके समान प्राणनाथने मेरे नयनोंमें निवास किया—२०।१७

बालकदलीदलकोमला तव मूर्तिः—नवीन कदलीदलके समान कोमल तुम्हारी मूर्त्ति—२०।१९

कमलगर्भनिभौ पादौ—कमलकोषके समान अतीव सुकोमल चरण—२०।२०

प्रथमपल्लवकोमलेन करेण—नवीन किसलयके समान सुकोमल हाथ—२०।२०

भारः इव हारः—भारके समान असह्य हार—२०।२१

मुक्ताफलोपमसमुद्गतघर्मलेशं मुखम्—मुक्ताफलोंके समान स्वेद-विन्दुओंसे व्याप्त मुख—२०।२३

संजीवनौषधम् इदं त्रिभुवनाभरणं शरीरम्--नवीन संजीवनीके समान त्रैलोक्यभूषण शरीर—२०।२६

तुषारहारगौराणि सुकृतानि—मुक्ताहारके समान स्वच्छ पुण्य—२०।२९

उदारघनसारोपमेन सितेन हसितेन—प्रचुर कर्पूरके समान स्वच्छ हास्य—२०।४०

हारोपमेन सितेन हसितेन—मुक्ताहारके समान स्वच्छ हास्य—२०।४०

तुषारोपमेन सितेन हसितेन—हिमके समान स्वच्छ श्वेत हास्य—२०।४०

कह्लारोपमेन सितेन हसितेन—श्वेत कमलके समान स्वच्छ हास्य—२०।४०

अखण्डसितांशुकान्तं—पूर्ण चन्द्रमाके सदृश मनोहर (मुख)—२०।४०

शारदनिशारमणोपमेन सितेन हसितेन—शरत्कालीन पूर्ण चन्द्रमाके समान स्वच्छ श्वेत हास्यसे—२०।४०

स्फटिकशिलामलं—स्फटिक शिलाके समान स्वच्छ—२१।३

भृंगालीरुचिकचसंचयांचितं—काले भ्रमरोंके समान काले केशोंसे—२१।४

सुधाच्छछवि अनृजुः इन्दुलेखा—सुधाके समान स्वच्छ छविवाली कुटिल चन्द्रकला—२१।१४

कुमुदकान्तकीर्तिभिः कुशलकार्यकारिभिः—कुमुदके समान मनोहर कीर्त्तिवाले कुशल पुण्यात्माओंसे—२२।१

तृणं भजतां प्रमदा—शुष्क तृणके समान नगण्य स्त्री—२३।३

नलभेकवत् अहम्—तृणमें रहनेवाले मण्डूकके समान विलाप करता हुआ मैं—२३।९

विलपन्नगवद्—बिलमें रहनेवाले सर्पके समान अन्धकारसे आच्छादित—२३।९

अमृतोपमं रसितम्—अमृतके समान प्रसादवचन—२३।१२

शशिनः सदृशं वदनम्—चन्द्रमाके समान मुख—२३।१३

मलयानिलमिव सुरभि तव नाम—सुगन्धित मलयानिलके समान आपका नाम हृदयको आनन्दित करता है—२३।१९

कुसुमैः सुरभि वनमिव तव नाम—कुसुमोंसे सुरभित स्वच्छ उपवनकी तरह आपका नाम आनन्ददायक है—२३।१९

सुरसरिदम्बुविडम्बिहसितम्—गंगाके नीरके समान स्वच्छ हास्य—२४।७

हिमकरकिरणसमूहसितं हसितम्—चन्द्रकिरणोंके समान उज्वल हास्य—२४।७

उपमितमन्मथचापलतां भ्रुवम्—कामदेवकी चपलताके समान मनोहर भृकुटि—२४।८

तुषारसितेन तेन—हिमके समान शुभ्र एवं मनोहारी अभयशब्द—२४।२३

सिद्धधुनिनीरसदृक्वपुः—सुरसरिके नीरके तुल्य स्वच्छ शरीर—२५।२

स्रक् इव गीः—मालाके समान मनोहर वाणी—२५।३

सुधाकरकलोपमिता तव दृक्—चन्द्रकलाके समान निर्मल एवं शीतल आपकी दृष्टि—२५।४

तृणवत् सुरक्षितिधरः—तृणके समान तुच्छ सुमेरु—२५।७

मरुता इव कमलया—वायुके समान लक्ष्मी—२५।८

जितामृतरसं वचनम्—अमृतके समान अभय वाक्य—२५।१२

वसनं यथा प्रभुः शरणम्—वस्त्रके समान प्रभु ही शरण हैं—२५।१७

स्रजा इव मम वाणी ते हृदि पदं क्रियताम्—पुष्पमालाके समान मेरी वाणी आपके हृदयमें स्थान प्राप्त करे—२५।२०

क्षमया मुरजितः चरणौ यथा मया भवतः चरणौ अधिगतौ—पृथ्वीको भगवान् विष्णुके चरणारविन्द प्राप्त होनेके समान मुझे भी आपके चरणारविन्द प्राप्त हुए हैं—२५।२२

रवेः उदितां विभामिव दृशम्—सूर्यमण्डलसे उदित दीप्तिके समान दृष्टि—२५।२३

प्रपा इव रसना सन्तापसन्तापहरा—प्याऊके समान तापोंके सन्तापको हरण करने वाली जिह्वा—२६।१

दावहुताशवन्तम् रोषम्—दावानलके समान उग्र रोष—२६।८

दयिता इव आनन्ददा श्रीः—प्रेयसीके समान आनन्द देनेवाली लक्ष्मी—२६।१६

तृणं नन्दनभूः—तृणके समान तुच्छ नन्दनवन—२६।१९

बालरवेः आभा इव शंकरभक्तिः—बालारुणकी आभाके समान शंकरकी भक्ति—२६।२०

नवचन्द्रिका इव शंकरभक्तिः—नवचन्द्रिकाके समान शंकरकी भक्ति—२६।२०

वारविलासिनी इव या आयाति—अभिसारिकाके समान जो पास आती है—२६।२२

कण्ठोपकण्ठोपगता बाला इव या—प्रियतमके निकट गयी युवतीके समान जो वाणी—२६।२३

वशा इव या वाणी—करिणीकी तरह जो वाणी—२६।२३

तरलतरलताग्रस्पर्द्धिनी श्रीः—चञ्चललताग्रके समान अतीव चंचल लक्ष्मी—२६।३५

रविभातिः इव तव दया—सूर्यकी दीप्तिके समान आपकी कृपा—२७।१४

रजनीपतिश्रीः कान्ता—चन्द्रमाके समान सुमनोहर नरांगना—२७।३४

यथैवाभा भक्तिः—आभाके समान भक्ति—२८।१

चन्द्ररश्मिरुचितैः चामरैः—चन्द्रमाकी किरणोंके समान स्वच्छ चँवरोंसे—२८।५

घुसृणक्षोदारुणम् आननम्—कुंकुमके समान लाल मुख—२८।७

जीवनं यथा वचः—सुशीतल जलके समान वचनामृत—२८।८

हंसानां कुलमिव कपालपटलम्—हंसगणोंकी भाँति स्वच्छ कपालपटल—२८।१३

मरकतश्यामं गलम्—मरकतमणिके समान श्यामल कण्ठ—२८।१६

अनुकृतश्यामाधवं—चन्द्रमाके समान गौर विष्णु—२८।१७

पौष्णः करः इव शांकरकरः आशां प्रकटीकरोति—सूर्यकी किरणोंके समान शंकरका कर आशाओंको पूर्ण करता है—२८।२०

शिशुमृग इव मम दृष्टिः—बालमृगके समान (कातर) मेरी दृष्टि—२८।२२

राजीवराजी यथा सा मंगला मंगलाभं घटयति—कमलपुष्पोंके समान वह मुण्डमाला मंगलोंकी वृद्धि करती है—२८।२५

रजनी इव धनाशा—रात्रिके समान धनकी आशा—२८।२७

कुंकुमपंकरोहितः देव्याः करः—कुंकुम पंकके समान पार्वतीका अरुण हस्त-कमल—२९।२

सुरस्रवन्तीयमुनौघयोः समागम इव उमारमाकामुकयोः सितासितः समागमः—गंगा और यमुनाके श्वेतकृष्ण संगमके समान विष्णु और शंकरका सितासित संगम—२९।५

दिनान्तरात्र्यागमयोः समागम इव उमारमाकामुकयोः सितासितः समागमः—दिन और रात्रिके समागमके समान शंकर और विष्णुका श्वेत कृष्ण समागम—२९।५

सुधासिता: पावक कल्करेणव:—सुधाके समान श्वेत सूक्ष्मवर्ण— २९।८
शरदं यथा अहम्—शरद् ऋतुके समान (निर्मल) मैं— २९।१७
कल्पलतासमानतां तव स्तुतिम्—कल्पलताके समान स्तुति—२९।२६
भगवान् इव भगवान्—भगवान् बुद्धके समान सदाशिव—२९।२९
शारदीं नदीमिव ऐश्वरीं मूर्त्तिम्—शरत्कालीन नदीके समान अतीव प्रसन्न ईश्वरीय मूर्त्ति—३०।१
रंक्वंकतनोः कला इव सुधा—चन्द्रमाकी कलाके समान स्वच्छ सुधा—३०।१९
वरूथिनी इव नवा गी:—सेनाके समान नवीनवाणी—३०।१७
मलयाद्रिवत् अमलया कमलया—मलयाचलके समान निर्मल लक्ष्मी—३०।२६
उषा इव उषा मां कदा एष्यति—बाणासुरकी कन्या उषाके समान भगवद्-दर्शनरूप उषा मुझे कब प्राप्त होगी—३०।४४
इन्दुकरानुकारा—चन्द्रमाकी किरणोंके समान मनोहर प्रभुकी कृपा—३०।४५
आकाशान्तर्वर्तिरविवत् प्रचुरप्रकाशा—आकाशगत सूर्यके समान अतीव प्रकाशमयी शंकरकी दृष्टि—३०।४६
काशावकीर्णखिलतुल्यकृतान्तकाशा—काशके तृणोंसे भरे हुए महान् अरण्यके तुल्य—३०।४६
अर्करश्मिपटली इव—अर्करश्मिपटलीके समान माया—३०।४८
ओषधि: इव कृतसाधुविपद्विरामा न अस्थिरा—औषधिके समान सज्जनोंके दु:खोंका अन्त करनेवाली अचल लक्ष्मी—३०।४९
वारांगना इव दृक्—वारांगनाके समान दृष्टि—३०।५०
वाराणसी इव दृक्—वाराणसीके समान मनोहारिणी दृष्टि—३०।५०
वारांनिधे: सुधा इव तव दृक्—सुधावृष्टिके समान आपकी दृष्टि—३०।५०
पृतना इव दृक्—महासेनाके समान दृष्टि—३०।५०
भद्राभिधे गजे इव भद्रासने—भद्रानामक हाथीके समान भद्रासनपर—३०।५१
भद्रातिथि: इव ईप्सितदा भद्रातनु:—भद्रा तिथिके समान अभीष्टकी सिद्धि देनेवाली मनोहर काया—३०।५१
गुणविडम्बितरामभद्रा भद्रातनु:—रामभद्रके समान गुणोंसे युक्त आपकी मनोहर काया—३०।५१

सुरपुरी नागालयमिव अनागा धी:—जिस प्रकार सुरपुरी नागलोकको नहीं जा सकती उसी प्रकार मेरी बुद्धि भी स्तुति से अन्यत्र नहीं जा सकती—३०।५२

सारावली इव मम धी:—तीव्र ज्वरके तापको हरनेवाली सारावली नामक औषधिके समान बुद्धि—३०।५३

सारावकोकिलवचः सम सूक्तिसारा मम सारा सहाधी:—कोकिलोंके सुमनोहर कलरवके समान सूक्ति सारावली—३०।५३

गिरेः धारा इव आधारार्पणी तव दृक् सुखदा—पर्वतके शिखरकी समभूमिके समान आश्रय देनेवाली सुखदायिनी आपकी दृष्टि—३०।५५

दुरितासिधारा इव दृक्—तीक्ष्ण खड्गधाराके समान पापनाशिका दृष्टि—३०।५५

धारापुरी इव मनोहरा दृक्—धारा नगरीके समान मनोहर दृष्टि—३०।५५

सकर्णधारा तरी इव तव दृक् सुखदा—केवटसे युक्त नौकाके समान सुखदायिनी आपकी दृष्टि—३०।५५

ऊषरवर्षधारा इव तव दृक् सुखदा—ऊसर भूमिमें वर्षाकी धाराके समान आपकी सुखदायिनी दृष्टि—३०।५५

कालाग्निवत् ते दृक् क्षणदग्धकाला—कालाग्नि रुद्रके समान आपकी दृष्टि क्षणभरमें कालको भस्म कर देती है—३०।५६

कालायसोपमरुचि: ते गलभू:—काले लोहेकी कान्तिके समान आपकी सुश्यामला कण्ठस्थली—३०।५६

मुक्तावली इव विमला गी:—मुक्तावलीके समान निर्मल वाणी—३०।५७

कल्पाद्भुलतिः इव मम गी: अकल्पाक्षया अस्तु—कल्पलताके समान मेरी वाणी कल्पपर्यन्त अक्षय बनी रहे—३०।५८

सहसा अर्कः इव सहसा असहभारभृत् कृतः अस्मि—जैसे मार्गशीर्ष मास सूर्यको निर्बल कर देता है, उसी प्रकार दुष्ट कामने मुझे बलहीन कर दिया है—३०।५९

मधुनां अलसां वधूमिव गिरम्—मद्यपानसे अलसायी वधूके समान वाणीको—३०।६२

नवा सुधा इव तव दृक—नवीन सुधाके समान आपकी दृष्टि—३०।६३

सुधासितच्छवि यशो—सुधाके समान धवल सुयश—३०।६३

सुधासमया गिरा—सुधाके समान मधुर वाणी—३०।६४

स्रजि कलिका इव मुकुटे कान्तिभृत् कलिका—मालामें पुष्प कलिकाके समान आपके मुकुटमें ज्योत्स्नामयी चन्द्रकला – ३०।६५

कलकलकलकण्ठवन्नवनवनवरोचितवाच: अस्मान्–अत्यन्त मधुरभाषी कोकिलों के समान नवीन स्तुति रचनाद्वारा उत्कृष्ट बचन बोलने वाले---३०।६८

दिग्विजया वृष्ट्या इव मूर्त्या भू: आवि--आकाश-वृष्टिके समान स्वयम्भू मूर्ति जगत्की रक्षा करती है – ३०।७०

अन्धकारे तरणे: तनु: इव—अन्धकारमें सूर्यकी प्रकाशमयी मूर्तिके समान यह वाणी—३०।८०

कान्तारमध्ये सरित् इव कान्ताया:—महारण्यमें निर्मल सरिताके समान सुमनोहर निर्मल वाणी—३०।८०

महाविहंगमिव मन:प्लवंगं निरुध्य—भारी पक्षीके समान मनरूपी वानर को रोककर – ३१।२

परावरणं कल्पितकरिकृत्ति—उत्तम वस्त्रकी तरह गजचर्म— ३१।१०

तरुणतमालमलीमसनालम्—नवीन तमाल पुष्पके समान नीलाकण्ठ— ३१।११

कमलपरागपिशंगजटालम्—कमलके केसरके समान पिंगल जटाजूट—३१।१५

सुधासरलम् हृदयम्—सुधाके समान सरल हृदय—३१।१८

तनुतृणगणनिभमनसिज—शुष्क तृणके समान कामदेव - १३।२३

सरसिजभरनिभधृतनरशिरसम्—श्वेत कमलके तुल्य नरमुण्ड धारण किये हुए—३१।२५

जलदम् इव पुरहरम्—मेघके समान तापकी शान्तिमें समर्थ शंकर—३१।२५

अमृतशीकरशीतलम् चरणपंकजम्—अमृतकणके समान शीतल चरणकमल —३१।२८-३०

कुलिशकर्कशहृदय:—वज्रके समान कठोर हृदयवाला—३२।१

पवनवेल्लितकमलिनीदलतलचलज्जलचंचलं विभवयौवनसुतसुखादिवम्---वायुके वेगसे प्रकम्पित कमलपत्रपर हिलते जलविन्दुके समान चंचल—३२।४

विमलबोधनदीम् इव दृशम्—विमल बोधरूपी नदीके तुल्य निर्मल दृष्टि—३२।७

सौन्दर्यसमुद्रसान्द्रलहरी हेलाचलच्चामर—सौन्दर्य सिन्धुकी सघन लहरियोंके समान स्वच्छ चँवर—३३।२५

अनलशिखापिंगजिह्वा—अग्निशिखाके समान पीली जिह्वा—३३।३३

अलाबुतुम्बीविडम्बी ब्रह्माण्डपिण्ड:—अलाबुतुम्बीके समान ब्रह्माण्ड—३३।४०

तव अदः वचनमिव तमःखण्डनम् मण्डनं मांगल्यम्—भगवान्के इस स्तुति-वाक्यके ही समान उनका वक्र चन्द्रखण्डरूप श्रेष्ठ आभूषण सर्वत्र वंद्यमान है—३४।२
घर्मप्रभम् अलकचयम्—सुवर्णके समान पिंगल केश—३४।६
सप्तच्छददलधवलं भस्म—सप्तच्छदके पर्णके समान सुन्दर स्वच्छ भस्म—३४।६
कन्दुकगतिः नराः—कन्दुककी गतिके समान गतिवाले मनुष्य—३५।७
सान्द्राभृत मधुरया करुणया—गाढ़ अमृतके समान मधुर करुणा—३५।१५
कैलालमिव त्वाम् अधिष्ठातारं बिना भवविधिः न भवति—कुम्भकारके समान आप अधिष्ठाताके विना संसारकी रचना नहीं हो सकती—३५।१८
खपुष्पोपमं भूयः जन्म—आकाशपुष्पके समान पुनर्जन्म (नहीं)—३५।१५
इन्दुकरसुन्दरं—चन्द्रमाके समान निर्मल धर्म—३६।४
अश्मशकलानि इव पापानि—अश्मशकलके समान पाप—३६।७
इक्षुसारमधुरान्—इक्षुरसके समान मधुर (स्तुतियाँ)—३६।१४
पशुसमानमपि—पशुओंके समान (महा अज्ञानी जीव)—३६।१७
महीरुहमिव मोहं प्रविमूलयन्ति—वृक्षके समान मोहको जड़से उखाड़ देते हैं—३६।२३
तृणगणान् इव क्लेशान्—तृणके समान क्लेश—३६।२४
अलिकुलश्यामलं मलम्—भौंरोंके समूहके समान श्यामल मल—३६।३२
ऐन्दवमणिमिव ते सतः चेतः द्रवयन्ति—चन्द्रकान्तमणिके समान वे सत्पुरुष सज्जनोंके चित्तको द्रवित करते हैं—३६।३४
पूगवत् सूक्तीः चर्वयन्ति—सुपारीकी तरह सूक्तियोंका आस्वाद लेते हैं—३६।३५
अमृतमधुराः गिरः—अमृतके समान मधुर सूक्ति—३६।३६
निबिडान् पाशान् इव क्लेशान्—दृढ़ रज्जुओंके समान क्लेश—३६।३९
यमवदघौघं दाहयन्ति—यमके समान पापको भी नष्ट करते हैं—३६।४०
मदनवत् अघौघं दाहयन्ति—कामदेवके समान पापको नष्ट करते हैं—३६।४०
तरुमिव अघं तक्षयन्ति—वृक्षके समान ही वे पापोंको भी कटवाते हैं—६।३४१
जलैःकमलदलानि इव सुधियः बहिरावरणै न लिप्यन्ते—जलमें कमलदलकी तरह महात्मालोग शुभाशुभ कर्मोंसे लिप्त नहीं होते—३७।१
सरस्वती यथा सरस्वती सुधां वर्षतु—वीणाके समान अति मनोहर वाणी अमृतवर्षा करे—३८।२
सरस्वती यथा सरस्वती—नदीके समान अमृतवर्षिणी वाणी—३८।२

इन्दुकला यथा सरस्वती सुधां वर्षतु—चन्द्रकलाके समान मेरी वाणी अमृतकी वर्षा करे—३८।२

यथा स्रवत्पीनसंदिग्धनासिक: शिशु: परस्य हृद्यता न एति किन्तु स्वकीयस्य पितु: जीविताधिक: तथा मम अयं उपहास्य: अयि उद्यम: —जिस प्रकार कुत्सित मुखवाला और झरते हुए नासिकामलवाला अतिघृणास्पद बालक दूसरोंको प्रिय नहीं लगता, किन्तु वही बालक अपने पिताकेलिए प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है उसी प्रकार श्रुतिकटुत्वादि दोषोंसे दुष्ट होनेके कारण मेरी स्तुति भले ही दूसरोंको प्रिय न लगे तथापि आपकेलिए तो यह अत्यन्त ही प्रिय है—३८।८

गुणालंकृतया मनोभिरामया इव गिरा—लज्जा लावण्यादि गुणोंसे अलंकृता सती नारीके समान ओज प्रसादादि गुणोंसे अलकृत वाणी—३८।६

सान्द्रसुधासमाना: या: गिर:—गाढ़ अमृतके तुल्य बाणी—३८।७

गीतरीतय: जनंगमानाम् इव इमा: गिर: प्रभो: प्रांगणसीमसेविनां चमत्करिष्यन्ति—वाह्यजनोंको चमत्कृतकरनेवाले ग्रामीण गीतके समान ये स्तुतिवचन प्रभुके प्रांगणमें रहनेवाले गणोंको अवश्य आश्चर्यचकित करेंगे—३८।११

गार्हस्थ्यमिव वर्ष्म—गृहस्थाश्रमके समान शरीर—३८।१२

सहस्रपत्रै: पल्लवोदकमिव महेश्वरस्तवै: मानुष्यं जन्म–कमलोंसे युक्त सरोवरके जलके समान शंकरकी स्तुतियोंसे युक्त मनुष्य जन्म मनोहर—३८।१३

मणिवज्रै: सदोषमपि फणीन्द्रस्य शिरस: इव महेश्वरस्तवै: मानुषं मनोरमं मन्ये—मणिगणोंसे सदोष सर्पके फणके समान शंकरकी स्तुतियोंसे मनुष्य जन्मकी सार्थकता मानता हूँ—३८।१३

मौक्तिकोत्करा: इव अमी स्तवा:—मुक्ताओंके अंकुरोंके समान ये सूक्तियाँ—३८।१४

मृगेन्द्रशावा: इव अमी स्तवा:—मृगेन्द्र बालकके समान मनोहर ये स्तुतियाँ—३८।१४

कुचस्थले हारलता इव इयं महेश्वरस्तवावली आभरणं भवतु—युवतियोंके कुचपर स्थित हारलताके समान यह शंकरकी स्तुति सज्जनोंको आभूषित करे—३८।१५

मरालमाला सरसीव निर्मले इयं महेश्वरस्तवावली सताम् वक्त्रसरोरुहे आभरणं भवतु—सरोवरमें मरालमालाके समान विद्वानोंके मुखकमलमें महेश्वर-स्तवावली सुशोभित हो—३८।१५

रथांगनामा तरणे : त्विषमिव इमां स्तवावलीं वीक्ष्य कः न प्रमोदते—प्रभात-समयकी सूर्यकान्तिको देखकर आनन्दित होनेवाले चक्रवाकके समान इस स्तोत्रावलीको देखकर कौन आनन्दित न होगा— ३८।१६

चकोरकः कार्तिकचन्द्रिकामिव इमां स्तवावलीं वीक्ष्य कः न प्रमोदते—शरत्काल-लीन चन्द्रमाको देखकर प्रसन्न होनेवाले चकोरबालकके समान इस स्तोत्रावलीको पढ़कर कौन प्रसन्न नहीं होगा – ३८।१६

उन्मुखः शिखी घनश्रेणिमिव इमां स्तवावलीं वीक्ष्य कः न प्रमोदते – वर्षा-ऋतुकी मेघमालाको देखकर आनंदित होनेवाले मयूरकी तरह मेरी स्तोत्रावलीसे कौन आनंदित नहीं होगा—३८।१६

पिकः विकोषां चूतमंजरीमिव इमां स्तवावलीं कः न चर्वयति—प्रफुल्लित आम्रमंजरीको आस्वादित करनेवाली कोयलके समान इस स्तोत्रावलीका आस्वादन किसे प्रिय न होगा—३८।१७

पंकज कर्णिकामिव स्तवावलीं कः न चर्वयति—कमलकर्णिकाके समान स्तोत्रा-वलीका कौन स्वाद न लेगा—३८।१७

चूतमंजरीमिव स्तवावलीं कः न चर्वयति—आम्रमंजरीके समान मधुर स्तोत्रा-वलीका कौन आस्वादन न करेगा—३८।१७

मधुव्रतः सौमनसीं स्रजमिव इमां स्तवावलीं कः न चर्वयति – सुगंधित पुष्प-मालाका समास्वादन करनेवाले भ्रमरके समान इस स्तोत्रावलीका कौन बुद्धिमान् स्वादन नहीं करेगा—३८।१७

सितच्छदः पंकजकर्णिकामिव इमां सरस्वतीं कः न चर्वयति—कमल कर्णि-काका स्वादन करनेवाले हंसके समान इस स्तोत्रावलीका कौन आस्वा दन नहीं करेगा – ३८।१७

मनस्विनीनां वीक्षितमिव सूक्तिवीरुधां मधु—मानवती स्त्रियोंके कटाक्षके समान सूक्तिरूपी लताका मनोहर मधु—३८।१८

स्तनन्धयानां मुग्धजल्पितमिव सूक्तिवीरुधं मधु मनीषिणां मानसमवश्यमार्द्र-यिष्यति—छोटे-छोटे बालकोंकी मुग्ध वाणीके समान इन स्तुतिरूपलताओं का मधुर मधु सहृदयोंके अन्तःकरणको अवश्य आनन्दित करेगा—३८।१८

मधुश्रीः इव इयं सरस्वती – वसन्तकालीन श्रीके समान स्तवावली – ३८।१९

प्रावृट् इव इयं स्तवावली—वर्षाऋतुके समान यह स्तोत्रावली—३८।१९

करबदरवत् समस्तं जगत्—करबदरके समान सम्पूर्ण संसार—३८।२२

परिशिष्ट—४

स्तुतिकुसुमांजलिकी छन्दस्तालिका

१. अनुष्टुप्—२।२-२४
२. आर्या—३७।१-२०
३. इन्द्रवज्रा—२६।१-३४, ३१।१
४. उपजाति—१२।१-११, २१।२३, ३१।२-४
५. उपेन्द्रवज्रा—१४।२०, ३०।१४, ३०।२२, ३१।५
६. तोटक—३०।४०-४१, ३०।५९-६१, ३०।७७
७. द्रुतविलम्बित—१०।१-६४, २७।१-३३, २९।२५, २९।२९, ३०।२३-३०, ३०।३९, ३०।७१-७३, ३०।७५-७६, ३८।३०
८. प्रहर्षिणी—१३।४२, २१।१-१७
९. पृथ्वी—१।२८, ३।४५, ६।१-८, ७।३९-४०, १०।८५, १०।८७-९१, ११।१२९-१३०, १३।३८-४१, १८।२४-२५, २०।४१, ३०।७८
१०. मन्दाक्रान्ता—१।२९-३०, ३।४६-४७, ७।४१-४२, १०।७४, १०।८२, ११।१२६-१२८, १३।१-३७, १४।२७, १५।३३-३६, १७।१-२६, २८।२१-२५, २९।३५, ३६।३२-४१
११. मालिनी—१८।१-२१, १।३१, २६।३५, ३८।२८-२९
१२. रथोद्धता—१।१-२२, १४।१-१९, २२।१-११
१३. वसन्ततिलका—१।२४-२७, ३।१-४४, ३।४६, ४।१-८, ५।१-२३, ७।३४-३८, ८।१-४९, ९।१-८०, १०।६५-६६, ११।१-१२३, १२।२२-३१, १३।४३, १५।३१-३२, १९।१-३०, २०।१-४०, २१।१०-२२, २२।१२, २७।३४, ३०।४२-५८, ३०।७०, ३६।१-३१, ३८।२३-२५
१४. वंशस्थ—२।२५-२९, ७।१-३३, १२।१२-२१, १४।२१-२५, २९।१-२४, २९।२६-२८, २९।३०-३२, ३०।१५-२१, ३०।७४, ३८।१-२१
१५. शार्दूलविक्रीडित—३।४८, ३।५०-६०, ५।२८-३६, ८।५०-५२, ९।८१-८२, १०।७६-८१, ११।१३१-१३९, ११।१४१-१४३, १४-२८, १५।३९, १७।२९, २१।१४, २८।१-२०, २९।३६, ३३।१-२९, ३५।२३-२५
१६. शिखरिणी—५।२५-२७, १०।६७-७३, १०।८३-८४, ११।१२४-१२५, १५।३७, ३५।१-२२
१७. स्रग्धरा—११।१४०, १७।२७-२८, १७।३०, २८।२६-२७, ३०।८०-८१, ३३।३०-४५, ३४।१-१३
१८. हरिणी—५।२४, १०।७५, १८।२२-२३।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-तालिका

- ☐ संस्कृत-ग्रन्थ
  - वैदिक-वाङ्मय
  - पुराणेतिहास
  - शास्त्रीय ग्रन्थ
  - काव्य-ग्रन्थ
  - स्तोत्र-ग्रन्थ
- ☐ हिन्दी-ग्रन्थ
- ☐ पत्र-पत्रिकाएँ
- ☐ अंग्रेजी-ग्रन्थ

संस्कृत-ग्रन्थ

☐ वैदिक-वाङ्मय

अथर्ववेद : सं० श्री राम शर्मा
आश्वलायन गृह्यसूत्र : सं० वी० एस० एस० रानाडे
ऋग्वेद : सं० श्री राम शर्मा
ऐतरेय ब्राह्मण : सं० टॉमस ऑफ्रेट्
केनोपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर
कौशीतकि गृह्यसूत्र : सं० रतन गोपाल भट्ट
प्रश्नोपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर
बृहदारण्यक उपनिषद् : गीताप्रेस, गोरखपुर
बौधायन गृह्यसूत्र : सं० आर० शामशास्त्री
बौधायन धर्मसूत्र : सं० चिन्नस्वामी शास्त्री
मनुस्मृति : कुल्लूकभट्टकृत मन्वर्थमुक्तावलीसहित
मानव गृह्यसूत्र : सं० एम० जे० ड्रेस्डेन
मैत्रायणी संहिता : सं० वॉन श्रोदर
यजुर्वेद : सं० श्री राम शर्मा
सामवेद : सं० श्री राम शर्मा

☐ पुराणेतिहास

अग्निपुराण : काशिराज ट्रस्ट, वाराणसी
मत्स्यपुराण : काशिराज ट्रस्ट, वाराणसी
महाभारत : गीताप्रेस, गोरखपुर
मार्कण्डेयपुराण : काशिराज ट्रस्ट, वाराणसी
लिङ्गपुराण : काशिराज ट्रस्ट, वाराणसी
वामनपुराण : काशिराज ट्रस्ट, वाराणसी
विष्णुपुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर
शिवपुराण : काशिराज ट्रस्ट, वाराणसी

श्रीमद्भागवतपुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण : गीताप्रेस, गोरखपुर
स्कन्दपुराण : काशिराज ट्रस्ट, वाराणसी

☐ शास्त्रीय-ग्रन्थ

अष्टाध्यायी (पाणिनि) : सं० एस० सी० बसु
काव्यप्रकाश (मम्मट) : सं० सत्यव्रत सिंह
काव्यादर्श (दण्डी) : सं० रामचन्द्र मिश्र
काव्यालङ्कार (भामह) : सं० देवेन्द्रनाथ शर्मा
काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति (वामन) : सं० डॉ० नगेन्द्र
कौटिलीय अर्थशास्त्र : सं० वाचस्पति गैरोला
दशरूपक (धनञ्जय धनिक) : सं० भोलाशंकर व्यास
ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धन) : सं० आचार्य विश्वेश्वर
नाट्यशास्त्र (भरत) : सं० रघुवंश
नारदभक्तिसूत्र : गीताप्रेस, गोरखपुर
निरुक्त (यास्क) : सं० भगवद्दत्त
रसगंगाधर (पण्डितराज जगन्नाथ) : सं० बद्रीनाथ झा एवं मदन मोहन शर्मा
व्यक्तिविवेक (महिमभट्ट) : सं० रेवा प्रसाद द्विवेदी
शाण्डिल्य भक्तिसूत्र (भक्तिचन्द्रिका टीका सहित) : सं० बलदेव उपाध्याय
षड्दर्शन समुच्चय (हरिभद्र) : सं० दामोदर शास्त्री
साहित्यदर्पण (विश्वनाथ) : सं० सत्यव्रत सिंह
सिद्धान्तकौमुदी (भट्टोजी दीक्षित) : सं० गोपाल शास्त्री नेने

☐ काव्य-ग्रन्थ

अभिज्ञानशाकुन्तल (कालिदास) : सं० सीताराम चतुर्वेदी
किरातार्जुनीय (भारवि) : सं० आदित्यनारायण पाठक
कुमारसम्भव (कालिदास) : सं० सीताराम चतुर्वेदी

गीतगोविन्द (जयदेव)	:	सं० मोरेश्वर राव देशमुख
नैषधीयचरित (श्रीहर्ष)	:	सं० शिवदत्त
बुद्धचरितम (अश्वघोष)	:	सं० सूर्यनारायण चौधरी
मालविकाग्निमित्रम (कालिदास)	:	सं० सीताराम चतुर्वेदी
मेघदूतम् (कालिदास)	:	सं० सीताराम चतुर्वेदी
रघुवंशम (कालिदास)	:	सं० सीताराम चतुर्वेदी
विक्रमोर्वशीय (कालिदास)	:	सं० सीतराम चतुर्वेदी
शिशुपालवध (माघ)	:	सं० हरगोविन्द शास्त्री

☐ स्तोत्र-ग्रन्थ

अमृतलहरी	:	पण्डितराज जगन्नाथ
अर्द्धनारीश्वरस्तोत्र	:	कल्हण
आनन्दमन्दाकिनी	:	मधुसूदन सरस्वती
आनन्दमन्दिरस्तोत्र	:	लल्ला दीक्षित
आनन्दसागरस्तव	:	नीलकण्ठ दीक्षित
आर्यातारास्रग्धरास्तोत्र	:	सर्वज्ञमित्र
आलबन्दारस्तोत्र	:	यामुनाचार्य
ईश्वरशतक	:	अवतार
कनकधारास्तव	:	शंकराचार्य
करुणालहरी	:	पण्डितराज जगन्नाथ
कल्याणमन्दिर	:	सिद्धसेन दिवाकर
गंगालहरी	:	पण्डितराज जगन्नाथ
चण्डीकुचपञ्चाशिक	:	लक्ष्मणकवि
चण्डीशतक	:	बाणभट्ट
चतुर्विंशतिजिनस्तुति	:	समन्तभद्र
चतुःषष्ट्युपचारमानसपूजा	:	शंकराचार्य
चतुःस्तव	:	नागार्जुन
चर्पटपञ्जरिका	:	शंकराचार्य
दयाशतक	:	वेदान्त देशिक
दीनाक्रन्दनस्तोत्र	:	लोष्टक

देवीशतिका	:	आनन्दवर्द्धन
द्वादशपञ्जरिका	:	शंकराचार्य
नारायणीय	:	नारायणभट्ट
परशम्भुमहिम्नस्तव	:	दुर्वासा
पादुकासहस्र	:	वेदान्त देशिक
बौद्धस्तोत्रसंग्रह (खण्ड १)	:	बिब्लियोथेका इण्डिका, १९०८
बृहत्स्तोत्रमुक्ताहार (दो भाग)	:	गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई
बृहत्स्तोत्ररत्नाकर	:	कल्पतरुप्रेस बम्बई,
बृहत्स्तोत्ररत्नाकर	:	शिवदत्त मिश्र
बृहत्स्तोत्रसरित्सागर	:	गुजराती न्यूज प्रेस, बम्बई
भक्ताभरस्तोत्र	:	मानतुंगाचार्य
भक्तिरसायण	:	मधुसूदन सरस्वती
भक्तिशतक	:	रामचन्द्र कवि भारती
महाराज्ञी स्तोत्र	:	कृष्णपण्डित
मुकुन्दमालास्तोत्र	:	कुलशेखर
मूकपञ्चशती	:	मूककवि
रामशतक	:	सोमेश्वर
ललितास्तवरत्न	:	दुर्वासा
लक्ष्मीलहरी	:	पण्डितराज जगन्नाथ
लक्ष्मीसहस्त्र	:	वेंकटाध्वरि
लोकेश्वरशतक	:	वज्रदत्त
वक्रोक्तिपञ्चाशिका	:	रत्नाकर
वरदराजस्तव	:	अप्पयदीक्षित
वेदसारशिवस्तुति	:	शंकराचार्य
त्रिपुरसुन्दरीमहिम्नस्तोत्र	:	दुर्वासा
त्रिपुरसुन्दरी मानसिकोपचारपूजा	:	शंकराचार्य
शिवकेशादिपादान्त-वर्णनस्तोत्र	:	शंकराचार्य
शिवताण्डवस्तोत्र	:	रावण
शिवपादादिकेशान्तवर्णनस्तोत्र	:	शंकराचार्य
शिवमहिम्नस्तोत्र	:	पुष्पदन्त
शिवस्तुति	:	लंकेश्वर

शिवस्तोत्रावली : उत्पलदेव
शिवापराधक्षमापण : शंकराचार्य
साम्बपञ्चाशिक : साम्ब
सुदर्शनशतक : कूटनारायण
सुधालहरी : पण्डितराज जगन्नाथ
सुभगोदयस्तुति : गौडपादाचार्य
सूर्यशतक : मयूरभट्ट
स्तवमाला : रूपगोस्वामी
स्तवसमुद्र : सं० पूर्णचन्द्र डे
स्तुतिकुसुमाञ्जलि : जगद्धरभट्ट
स्तोत्रावली : उत्पलदेव

हिन्दी—ग्रन्थ

अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग : रामलाल वर्मा शास्त्री
अरस्तू का काव्यशास्त्र : सं० डॉ० नगेन्द्र
आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली : रांगेय राघव
आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप-विधाएँ : निर्मला जैन
काव्य-दर्पण : राम दहिन मिश्र
गीतिकाव्य : राम खेलावन पाण्डेय
गीतिकाव्य का विकास : लालधर त्रिपाठी
चिद्विलास : सम्पूर्णानन्द
नवधा भक्ति : गीताप्रेस, गोरखपुर
पाश्चात्य काव्यशास्त्र : सिद्धान्त और वाद : राजकुमार कोहली
पुराण विमर्श : बलदेव उपाध्याय
प्रणव भारती : ओंकारनाथ ठाकुर
प्रेम भक्ति प्रकाश : गीता प्रेस, गोरखपुर
भक्ति का विकास : मुंशीराम शर्मा

भक्ति-दर्शन	: ज्ञानानन्द
भक्ति रसार्णव	: स्वामी करपात्री जी
भक्ति साहित्यकी मधुरोपासना	: परशुराम चतुर्वेदी
भक्ति-सुधा	: स्वामी करपात्रीजी
भगवान् श्रीकृष्ण और शिवतत्त्व	: गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा	: डॉ० नगेन्द्र
भारतीय दर्शन	: बलदेव उपाध्याय
भारतीय दर्शन	: वाचस्पति गैरोला
भारतीय संस्कृतिका इतिहास	: आचार्य चतुरसेन
भारतीय संस्कृतिमें जैनधर्म का योगदान	: हीरालाल जैन
भ्रमरगीतसार	: सं० रामचन्द्र शुक्ल
भारतीय काव्य-परम्परा और विहारी	: रामसागर त्रिपाठी
रससिद्धान्त : स्वरूप विश्लेषण	: आनन्द प्रकाश दीक्षित
रास और रासान्वयी काव्य	: दशरथ ओझा एवं दशरथ शर्मा
वाङ्मय विमर्श	: विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
विचार और विवेचन	: डॉ० नगेन्द्र
वैदिक देवशास्त्र	: सूर्यकान्त
शास्त्रीय समीक्षाके सिद्धान्त	: गोविन्द त्रिगुणायत
शिव-महादेव	: वासुदेव शरण अग्रवाल
शैवमत	: यदुवंशी
श्री कृष्ण कर्णामृत	: सं० प्रमोद गणेश लाले
साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	: रघुवंश
साहित्य-विज्ञान	: गणपतिचन्द्र गुप्त
साहित्यशास्त्र	: रामकुमार वर्मा
संस्कृत कवि दर्शन	: भोलाशंकर व्यास
संस्कृतका दार्शनिक विवेचन	: देवराज
संस्कृतके सन्देश-काव्य	: रामकुमार आचार्य
संस्कृत-शब्दार्थ कौस्तुभ	: सं० द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी
संस्कृत शास्त्रोंका इतिहास	: बलदेव उपाध्याय

संस्कृत साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास	:	रामजी उपाध्याय
संस्कृत साहित्यका इतिहास (कीथ)	:	अनु० मंगलदेव शास्त्री
संस्कृत साहित्यका इतिहास	:	बलदेव उपाध्याय
संस्कृत साहित्यमें सादृश्यमूलक अलंकारोंका विकास	:	ब्रह्मानन्द शर्मा
संस्कृत सुकवि समीक्षा	:	बलदेव उपाध्याय
हिन्दी गीतिकाव्य	:	ओम प्रकाश अग्रवाल
हिन्दी साहित्य कोष	:	धीरेन्द्र वर्मा

पत्र-पत्रिकाएँ

परिषद् पत्रिका	:	विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
भक्ति अंक (कल्याण)	:	गीताप्रेस, गोरखपुर
भारतीय जैन-साहित्य संसद् पत्रिका	:	जैन सिद्धान्त भवन, आरा
सरस्वती सुषमा	:	संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
साधना अंक (कल्याण)	:	गीताप्रेस, गोरखपुर
संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क (कल्याण)	:	गीताप्रेस, गोरखपुर

अंग्रेजी-ग्रन्थ

A Handbook of Vir Shaivism	:	S. C. Nandinath
A History of Indian Literature	:	Winternitz
A History of Sanskrit Literature	:	S.N. Dasgupta & S.K. De

A New History of Sanskrit Literature : K.Chaitanya
An Introduction to theStudy of English Literature : Hudson
Aspects of EarlyVaishnavism : J. Gonda
A Vedic Reader : A.A. Macdonell
Catalogue of the Sanskrit and Prakrit Manuscripts in the Library of the India House, Vol. II, Part II : Ed. by A. B. Keith
Collected Works of R. G. Bhandarakar : Poona
Cult of the Greek States : Farnel
Divine Wisdom of the Dravidian Saints : A. Govindacharya
Encyclopaedia of Religion and Ethics : Ed. by James Hastings
Essays on History, Literature and Religion of Ancient India : H. T. Colebrooke
Forms in Modern Poetry : Herbert Reed
Hinduism through the Ages : D. S. Sharma
History of Classical Sanskrit Literature : Krishnamachariar
History of Religion : G. F. Moore
History of Sanskrit Poetics : P. V. Kane
Indian Antiquary : 1905, 1917, 1918.
Indian Wisdom : M. Williams
Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society (1925) : Bombay
Lectures on Vedanta Philosophy : G. B. Mallik

Mohenjodaro and Indus Civilization	:	Marshall
Ragas and Raginis	:	O. C. Ganguly
Religion and Mythology of Rigveda	:	A. B. Keith
Religion of Babylonea and Syria	:	Zestro
Religious Sects of Hindus	:	H. H. Wilson
Select Works of Shankaracharya	:	S. B. Bhagawata
Shaiva Sidhanta	:	V. Paranjoti, 1954
Special Lectures on Shaiva Sidhanta	:	K. M. Balasubramaniam
Stotra Manuscripts in the Madras Government Oriental Manuscripts Library Vols. XVIII-XX	:	Madras
Style	:	F. C. Lucas
The Bhakti Cult in Ancient India	:	B. K. Goswami
The Early History of India	:	V. A. Smith, 1957
The Foundation of Hinduism	:	Jadunath Sinha, 1955
The History and Culture of Indian People	:	B. V. Bhawan, Bombay
The Living Religion of the Indian People	:	M. Nichol, 1934
The Lyric	:	John Drinkwater, 1902
The Origin and Development of Religion in Vedic Literature	:	P. S. Deshmukh
The Philosophy of Shrimad-bhagawat	:	S. Bhattacharya
The Problem of Style	:	M. Murrey

The Religion and Philosophy of the Atharvaveda	:	Shende
The Religion of Hindus	:	K. W. Morgan
The Religion of India	:	Max Weber
The Vedas	:	Max Muller
Vaishnavism, Shaivism And Other Minor Sects	:	R. G. Bhandarkar
Vishwa Bharati Quarterly	:	1935
Yuganaddha	:	H. V. Gunther, 1952